Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Vol. III

द्रव्यगुण विज्ञान

III

खनिज द्रव्य
जांगम द्रव्य
आहार द्रव्य

प्रियव्रत शर्मा

चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी-पटना

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Phone : 2911617
Chaukhambha Orientalia
Bungalow Road, 9 U B
(Near Kirorimal College)
DELHI-110007

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

॥ श्रीः ॥

वि० आयुर्वेद ग्रन्थमाला
३

॥ श्रीः ॥

द्रव्यगुण-विज्ञान

तृतीय भाग

(जांगम, पार्थिव औषध-द्रव्य एवं आहार-द्रव्य)

लेखक

आचार्य प्रियव्रत शर्मा

ए.एम.एस , एम.ए. (संस्कृत-हिन्दी), साहित्याचार्य
भूतपूर्व अध्यक्ष, द्रव्यगुणविभाग एवं प्रमुख, आयुर्वेद संकाय,
भूतपूर्व निदेशक, स्नातकोत्तर आयुर्वेद संस्थान,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्भा भारती अकादमी

आकार ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
पो. बॉ. नं. 1065
गोकुल भवन, के. 37/109, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी-221001 (भारत)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रकाशक : चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि० संवत् 2048
मूल्य : रूपये 100

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No. ....
Acc. No. ....4142........

© चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी
टेलीग्राम: भारतोत्सव, वाराणसी-221001
टेलीफोन : 63354

इस ग्रन्थ का परिष्कृत तथा परिवर्धित मूलपाठ एवं टीका-परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन है।

प्राप्तिस्थान
चौखम्भा ओरियन्टालिया
पो. बॉ. नं. 1032
वाराणसी-221001 (भारत)

शाखा—बंगलो रोड, 9 यू. बी., जवाहर नगर
(करोडीमल कालेज के पास)
दिल्ली-110007 (भारत)
फोन : 2911617, 238790

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

THE

V. AYURVEDA SERIES

3

डा. कविराज गौरी लाल चानना
भूतपूर्व सम्पादक एवं प्रधानमंत्री, अ.भा.आ. महासम्मेलन
के परिवार की ओर से
महासम्मेलन पुस्तकालय को सादर भेंट

DRAVYAGUNA—VIJNANA

Vol. III

(Animal Products, Minerals and Dietitic Substances)

Prof. P. V. SHARMA
A.M.S., M.A. (Sanskrit-Hindi), Sahityacharya
Formerly Head, Department of Dravya-guna;
Dean, Faculty of Indian Medicine;
Formerly Director, Postgraduate Institute of Indian Medicine,
Benaras Hindu University, Varanasi

Preface by
Prāṇācārya Goverdhana Śarmā Chāngāṇi Sitābarḍi Nagpur

CHAUKHAMBHA BHARATI ACADEMY
Publishers and Distributors of Monumental Treatises of the East
Post Box No. 1065
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane,
VARANASI (INDIA)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

©Chaukhambha Bharati Academy
Varanasi-221001
(INDIA)
THIRD EDITION 1991

Sole Distributor
CHAUKHABHA ORIENTALIA
Post Box No. 1032
Varanasi-221001 (India)

Branch—Bungalow Road, 9 U.B., Jawahar Nagar
(Near Kirorimal College)
Delhi-110007 (India)
Phones : 2911617, 238790

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राक्कथन

लगभग २४ वर्षों तक साथ रहने के बाद तृतीय भाग द्वितीय भाग से आज पृथक् हो रहा है। परिवार बढ़ने पर विभाजन स्वाभाविक होता है। द्वितीय भाग का कलेवर भी बहुत बढ़ गया और तृतीय भाग को भी और उपबृंहित होना था अतः इसे पृथक् कर उन्मुक्त अवसर देना उपयुक्त समझा गया जिससे दोनों भागों का समयानुसार संवर्धन होता रहे।

नवीन संस्करण प्रकाशित होने के पूर्व मैंने भारत के द्रव्यगुण-विशेषज्ञों से अनुरोध किया था कि नवीन संस्करण को अधिक उपयोगी बनाने के लिए अपने सुझाव देने की कृपा करें। अनेक सुझाव प्राप्त हुए जिनमें एक उल्लेखनीय सुझाव मेरे प्रिय शिष्य प्रो० राजनारायण सिंह, अध्यक्ष, राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, लखनऊ का यह था कि तृतीय भाग में आहारद्रव्यों का विवरण समाविष्ट किया जाय जिससे इस विषय की पठन-पाठन संबन्धी कठिनाई दूर हो। यह सुझाव प्रो० सिह के दीर्घकालीन अध्यापकीय अनुभव पर आधारित था। इसीसे प्रेरित होकर इस भाग में आहारद्रव्यों का पूरा विवरण दस अध्यायों में समाविष्ट किया गया। इस उपयोगी सुझाव के लिए मैं प्रो० राजनारायण सिह का आभारी हूँ।

द्रव्यों को मुख्यतः उपयोग की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया गया है—औषधद्रव्य तथा आहारद्रव्य। औषधद्रव्य वीर्यप्रधान होते हैं जो अल्प मात्रा में प्रयुक्त होकर मुख्यतः गुणात्मक परिवर्तन लाते हैं। आहारद्रव्य रसप्रधान हैं जो अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्रयुक्त होकर धातुओं में मुख्यतः द्रव्यात्मक परिवर्तन लाते हैं। आहारद्रव्यों से पोषक रस बनता है जिनसे पोष्य धातुओं का पोषण-संवर्धन होता रहता है। औषध और आहार दोनों की समान उपयोगिता को ध्यान में रख कर ही चरक ने सूत्रस्थान के सात चतुष्कों में प्रथम भेषजचतुष्क तथा अन्तिम अन्नपानचतुष्क को स्थान दिया।

औषधद्रव्य योनिभेद से तीन प्रकार के हैं—औद्भिद, जांगम और पार्थिव। आयुर्वेद में औद्भिद द्रव्यों का ही बाहुल्य से प्रयोग है अतः द्वितीय भाग में औद्भिद द्रव्यो का ही पूर्ण विवरण दिया गया है। प्रस्तुत तृतीय भाग में अवशिष्ट

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

औषधद्रव्यों (जांगम तथा पार्थिव) तथा आहारद्रव्यों का विवरण है। इस प्रकार द्वितीय तथा तृतीय भाग मिला कर औषधद्रव्यों तथा आहारद्रव्यों दोनों का विवरण पूर्ण हो जाता है।

जिस प्रकार औषधद्रव्यों का प्रायोगिक पक्ष चिकित्सा में अभिव्यक्त होता है वैसे ही आहारद्रव्यों का प्रायोगिक पक्ष पथ्यापथ्य में निर्धारित होता है। अतः नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार प्रयोगविज्ञान के अन्तर्गत औषधीय एवं आहार-द्रव्यों का व्यावहारिक उपयोगितापरक अध्ययन होना चाहिए।

आहारद्रव्यों के वर्गीकरण की अनेक शैलियाँ आचार्यों ने अपनाई हैं। आहार के लिए 'अन्न-पान' शब्द प्रचलित है जिसमें अन्न के अन्तर्गत भोज्य एवं भक्ष्य तथा पान के अन्तर्गत पेय एवं लेह्य आहार का ग्रहण होता है। इस प्रकार चतुर्विध आहार का अन्तर्भाव इसमें हो जाता है। लोकभाषा में 'खानपान' 'अन्नपान' का ही रूपान्तर है। चरक ने अन्नपानविधि अध्याय (सूत्र० २७) में ही सभी आहारद्रव्यों का वर्णन किया है—प्रारंभ में अन्नद्रव्यों का तथा बाद में द्रवद्रव्यों का किन्तु सुश्रुत ने अन्न (Food) तथा द्रवद्रव्यों (Drinks) को पृथक्-पृथक् अध्यायों (सूत्र० ४५, ४६) में वर्णित किया। अन्न और द्रव को पृथक् करने में कठिनाई यह है कि अन्न के अनेक कल्प यथा फलरस, धान्य या शाक का यूष इत्यादि का समावेश द्रववर्ग में नहीं हो पाता। दूसरी ओर, इक्षुवर्ग को द्रववर्ग में रखना पड़ता है जो (इक्षु) द्रव नहीं है। दुग्ध के कुछ विकार दधि, किलाट, कूर्चिका आदि भी द्रव नहीं हैं। इस प्रकार अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति दोषों से युक्त यह वर्गीकरण उचित नहीं प्रतीत होता। चरक का वर्गीकरण संयत है। उन्होंने यद्यपि वर्ग का नाम 'इक्षुवर्ग' दिया (क्योंकि उससे वर्ग का प्रारंभ है) किन्तु उसमें मधु का भी वर्णन कर दिया। इससे स्पष्ट है कि उनके मन में द्रवत्व का आधार नहीं था बल्कि वह मधुर द्रव्यों का वर्णन करना चाहते थे। फिर भी 'इक्षुवर्ग' शीर्षक से भ्रम हो जाता है तथा कुछ लोग जो उपर्युक्त मर्म को नहीं समझ पाते यह आपत्ति भी उठाते हैं कि इक्षु के साथ मधु का वर्णन क्यों किया ? इस समस्या के समाधान के लिए मैंने इसका शीर्षक 'इक्षुवर्ग' के स्थान पर 'मिष्टवर्ग' कर दिया जिसमें इक्षु, मधु तथा अन्य सभी मिष्ट द्रव्यों का समावेश हो जाता है तथा जो चरक के मन्तव्य को भी सुस्पष्ट कर देता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक ने तैलों को आहारयोगिवर्ग में रक्खा है जब कि सुश्रुत आदि ने तैल वर्ग पृथक् रक्खा है। आहारयोगिवर्ग में मसाले हैं, उनके साथ तैलों का वर्णन यह संकेत करता है कि आहारकल्पों के निर्माण में मसालों के साथ तैलों का प्रयोग होता था। आज भी सब्जी आदि आदि छौंकने के लिए तथा दाल-भात में भी औद्भिद तैलों का व्यवहार होता है। यह ध्यातव्य है कि चरक ने इस प्रसंग में घी का उल्लेख नहीं किया। कुछ लोग यह कहते हैं कि आहारकल्पों के निर्माण में तैलों का प्रयोग पूरब वाले करते हैं जब कि पश्चिम वाले घृत का अधिक प्रयोग करते हैं। चरकोक्त वर्णन के आधार पर यह कहाँ तक सत्य है विचारणीय है।

सुश्रुत से लेकर भाव मिश्र आदि तक आचार्यों ने दुग्ध एवं उसके विकारों के लिए पृथक्-पृथक् वर्ग निर्धारित किये यथा दुग्धवर्ग, तक्रवर्ग आदि किन्तु चरक ने गोरसवर्ग में इन सबका वर्णन किया है जो उचित है। गोरस तथा तैल आहार में स्नेह की आपूर्त्ति क प्रमुख माध्यम हैं अतः मैंने स्नेहवर्ग में इन दोनों का वर्णन किया है। जल और मद्य का प्रायः भोजनोत्तर ग्रहण किया जाता है अतः अनुपान वर्ग में इन दोनों का वर्णन किया गया है।

इस कार्य में जिन महानुभावों से सहायता मिली है उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित है। प्रकाशक महोदय हार्दिक धन्यवाद के पात्र जिन्होंने इसे तत्परता पूर्वक स्वल्प काल में प्रकाशित किया। पं० कपिलदेव गिरि जी को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इसका प्रूफ देखने तथा साज-सज्जा में सहायता प्रदान की।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

१ जुलाई १९७९

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : जाङ्गम औषधद्रव्य

अध्याय	विषय		पृष्ठ
१.	लक्षण, वर्गीकरण एवं प्रयोग	...	३–५
२.	जरायुज द्रव्य (दोष, धातु, उपधातु, मल, अगप्रत्यंग, विकार)	...	४५–५५
३.	अण्डज द्रव्य	...	५६–६८
४.	स्वेदज द्रव्य	...	६९–७०
५.	उद्भिज्ज द्रव्य	...	६९–७०

द्वितीय खण्ड : पार्थिव औषधद्रव्य

१.	सामान्य परिचय	...	७३–७६
२.	रस-उपरस	...	७७–८६
३.	धातु-उपधातु	...	८७–१०८
४.	रत्न-उपरत्न	...	१०९–११८
५.	सुधा-सिकता	...	११९–१२३
६.	लवण-क्षार	...	१२४–१३७

तृतीय खण्ड : आहार-द्रव्य

१.	आहार एवं उसका वर्गीकरण	...	१४१–१४७
२.	धान्यवर्ग	...	१४८–१८९
३.	शाकवर्ग	...	१९०–२२१
४.	फलवर्ग	...	२२२–२६१
५.	मांसवर्ग	...	२६२–२६९
६.	हरित एवं आहारयोगिवर्ग	...	२७०–२७३
७.	कृतान्नवर्ग	...	२७४–२८७
८.	मिष्टवर्ग	...	२८८–२९४
९.	स्नेहवर्ग	...	२९५–३०८
१०.	अनुपानवर्ग	...	३०९–३२०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संकेत-निर्देश

अ०	अंगरेजी
अ०	अरबी
अ० सं०	अष्टाङ्गसंग्रह
अ० हृ०	अष्टाङ्गहृदय
आ० प्र०	आयुर्वेदप्रकाश
उ०	उत्तरतन्त्र
क०	कल्पस्थान
कन्न०	कन्नड़
कै० नि०	कैयदेवनिघण्टु
क्षे० कु०	क्षेमकुतूहल
ग० नि०	गदनिग्रह
गु०	गुजराती
च०	चरकसंहिता
चक्र०	चक्रदत्त
च० वि०	चरकसंहिता, विमानस्थान
च० शा०	चरकसंहिता, शारीरस्थान
चि०	चिकित्सास्थान
ता०	तामिल
ते०	तेलुगु
द्र० गु०	द्रव्यगुणविज्ञान (प्रियव्रतशर्मकृत)
द्र० श०	द्रव्यगुणशतक (त्रिमल्लभट्टकृत)
द्र० सं०	द्रव्यगुणसंग्रह (चक्रपाणिदत्तकृत)
ध० नि०	धन्वन्तरिनिघण्टु
नि० र०	निघण्टुरत्नाकर
प० प्र०	परिभाषा-प्रदीप
पा० वा०	पाणिनीयवार्त्तिक (कात्यायनकृत)
पूर्व०	पूर्वखण्ड
फा०	फारसी
बं०	बंगला
बृ० यो० त०	बृहद्योगतरंगिणी
भा० प्र०	भावप्रकाश

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

म०	मराठी
म० नि०	मदनपालनिघण्टु
यो० र०	योगरत्नाकर
र० चू०	रसेन्द्रचूडामणि
र० त०	रसतरंगिणी
र० प्र० सु०	रसप्रकाशसुधाकर
र० मं०	रसमञ्जरी
र० र०	रसरत्नाकर
र० र० स०	रसरत्नसमुच्चय
र० वै० भा०	रसवैशेषिकभाष्य
रा० नि०	राजनिघण्टु
रा० व०	राजवल्लभनिघण्टु
लै०	लैटिन
शा०	शार्ङ्गधरसंहिता
शा० नि०	शालिग्रामनिघण्टु
शि०	शिवदत्तनिघण्टु
शो०	शोढलकृत गदनिग्रह
सं०	संस्कृत
सिं०	सिन्धी
सि०	सिद्धिस्थान
सि० भे० म०	सिद्धिभेषजमणिमाला
सु०	सुश्रुतसंहिता
सू०	सूत्रस्थान
स्व०	स्वकीय (प्रियव्रतशर्मकृत)
हि०	हिन्दी
J. P. S.	Journal of pharmaceutical sciences.
J. R. I. M.	Journal of Research in Indian Medicine.
R. Ghosh.	R. Ghosh's Materia Medica.
W. I.	Wealth of India.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्रव्यगुण-विज्ञान

तृतीय भाग

प्रथम खण्ड

जांगम औषधद्रव्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रथम अध्याय

१. लक्षण

सजीव सृष्टि के दो विभाग होते हैं :—(१) उद्‌भिद् जगत् (Vegetable Kingdom) और (२) जन्तुजगत् (Animal Kingdom)। उद्‌भिद् जगत् से प्राप्त होने वाली (औद्‌भिद या स्थावर) ओषधियों का वर्णन प्रथम खंड में किया गया है। जन्तुजगत् से प्राप्त होने वाले जिन पदार्थों का चिकित्सा में उपयोग होता है उन्हें जांगम या जान्तव द्रव्य कहते हैं यथा कस्तूरी, अंबर आदि।[1] उनका यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

२. वर्गीकरण

जन्तुजगत् भी चार वर्गों में विभाजित किया गया है :—(१) जरायुज, (२) अण्डज, (३) स्वेदज, (४) उद्‌भिज्ज। जरायुज प्राणी वे हैं जिनका गर्भाधान के पश्चात् गर्भाशय में विकास होता है यथा मनुष्य, पशु आदि। अण्डज वे कहलाते हैं जो गर्भाशय के बाहर अंडे में विकसित होते हैं यथा पक्षी, सर्प आदि। स्वेदज प्राणी निम्न श्रेणी के कृमि, कीट आदि हैं जो मनुष्य आदि प्राणियों के स्वेद में या पृथ्वी के बाष्प में विकसित होते हैं। इनमें कुछ तो अंडे देते हैं तथा कुछ का विकास अयौन पद्धति से होता है। सूक्ष्म जीवाणुओं का अन्तर्भाव इसी वर्ग में होता है। चौथा वर्ग उद्‌भिज्ज प्राणियों का है जो अपने जीवन का कुछ काल निष्क्रिय रूप से पृथ्वी के भीतर पड़े-पड़े व्यतीत करते हैं यथा मेढ़क, वीरबहूटी आदि।[2]

इन चार प्रकार के प्राणियों से प्राप्त होने वाले द्रव्य भी चार प्रकार के होते हैं और उन्हीं संज्ञाओं से अभिहित होते हैं :—(१) जरायुज–कस्तूरी, गोरोचन आदि; (२) अण्डज-अण्डा, मयूर, पारावत आदि; (३) स्वेदज–लाक्षा, कोष आदि; (४) उद्भिज्ज–वीरबहूटी, केंचुआ आदि।

३. प्रयोज्य अंग

छोटे जन्तुओं का सर्वांग औषध में लिया जाता है जिस प्रकार छोटे क्षुपों का पंचांग लिया जाता है यथा वीरबहूटी, रेगमाही आदि, किन्तु बड़े जन्तुओं के विभिन्न अंगों; दोष-धातु-मलों का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता है यथा पित्त, रक्त, मूत्र, यकृत्

---

१. 'द्रव्याणि पुनरोषधयस्तास्तु द्विविधाः स्थावराः जाङ्गमाश्च। (सू. सू. १)

२. 'जांगमाः खल्वपि चतुर्विधाः जरायुजाण्डस्वेदजोद्भिज्जाः। तत्र पशुमनुष्यव्यालादयो जरायुजाः। खगसर्पसरीसृपप्रभृतयोऽण्डजाः। कृमिकीटपिपीलिकाप्रभृतयः स्वेदजाः। इन्द्रगोपमंडूकप्रभृतयः उद्भिज्जाः।' (सु. सू. १)

'भूतानां चतुर्विधा योनिर्भवति–जरायवण्डस्वेदोद्भिदः। तासां खलु चतसृणामपि योनीनामेकैका योनिरपरिसंख्येयभेदा भवति, भूतनामाकृतिविशेषापरिसंख्येयत्वात्।' (च.शा.३)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आदि ।[१] शरीर के भीतर किसी विकार के क्रम में उत्पन्न द्रव्य का भी औषध में प्रयोग होता है । यथा मछली की आँतों में होने वाली ग्रन्थि का अम्बर के नाम से तथा बैल के पित्ताशय में होने वाली पित्ताश्मरी का गोरोचन के नाम से व्यवहार होता है ।

वर्णन की सुविधा के लिए जरायुज प्राणियों के प्रयोज्य अंगों को निम्नांकित विभागों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. दोष—पित्त आदि ।
२. धातु—रक्त, मांस, मेद आदि ।
३. उपधातु—स्तन्य आदि ।
४. मल—मूत्र, पुरीष आदि ।
५. अंग-प्रत्यंग—मुष्क, यकृत्, दन्त आदि ।
६. विकार—गोरोचन, फादजंहर हैवानी आदि ।

४. प्रयोग का सिद्धान्त

शरीर के दोषधातुमल अपने समानगुण वाले द्रव्यों से वृद्धि तथा विपरीतगुणवाले द्रव्यों से ह्रास को प्राप्त होते हैं यह आयुर्वेद का मौलिक सिद्धान्त है । इस संबन्ध में यह भी कहा है कि शरीर के जो दोष, धातु या मल क्षीण हुए हों उनकी चिकित्सा में उसी दोष, धातु या मल का प्रयोग होना चाहिए । यदि किसी कारण ऐसा संभव न हो तब समानगुण वाले औद्भिद या अन्य द्रव्यों का प्रयोग किया जाना चाहिए । यथा पित्त का क्षय होने पर पित्तपंचक का प्रयोग करना चाहिए और उसके अभाव में उष्णवीर्य पित्तवर्धक वनस्पतियों या खनिजों का प्रयोग करना उचित है । इसी आधार पर रक्तक्षय में रक्त, मांसक्षय में मांस आदि का विधान है । आभ्यन्तर अंगों की क्रिया में क्षय होने पर भी उस अङ्ग का प्रयोग करते हैं यथा यकृत् की खराबी होने पर रोगी को यकृत् खिलाते है ।[२]

---

१. 'मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जसृगामिषम् । विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थिस्नायुश्रृंगनखाः खुराः ॥ जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशा रोमानि रोचनाः ।' (च. सू. १)
'तत्र······जंगमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः ।' (सु. सू. १)

२. 'धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहारविकारैरभ्यस्यमानै-र्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति, ह्रासं तु विपरीतगुणैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्यभ्यस्यमानैः ।' सर्वधातु-गुणानां सामान्ययोगाद् वृद्धिर्विपर्ययाद् ह्रासः । तस्मान्मांसमाप्यायते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः तथा लोहितं लोहितेन, मेदो मेदसा, वसा वसया; अस्थि तरुणास्थ्ना, मज्जा मज्ज्ञा, शुक्रं शुक्रेण, गर्भस्त्वामागर्भेण । यत्र त्वेवंलक्षणेन सामान्यवतामाहारविकाराणामसान्निध्यं स्यात् सन्निहितानां वाऽप्ययुक्तत्वान्नोपयोगो घृणित्वादन्यस्माद्वा कारणात्, स च धातुरभिवर्धयितव्यः स्यात्, तस्य ये समानगुणाः स्युराहारविकारा असेव्याश्च, तत्र समानगुणभूयिष्ठानामन्यप्रकृतीनामप्याहारविकाराणामुपयोगः स्यात्,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५. जांगम द्रव्यों का संग्रह

जंगम प्राणियों से रक्त, मांस, रोम आदि द्रव्यों का संग्रह उनकी मध्यम आयु में करना चाहिए। क्षीर, मूत्र और पुरीष उनका आहार जीर्ण होने पर लेना चाहिए।[1]

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्वितीय अध्याय

जरायुज द्रव्य

वर्णन की सुविधा के लिए जरायुज द्रव्यों को दोष, धातु, उपधातु, मल, अंग-प्रत्यंग तथा विकार इन छः भागों से विभक्त किया गया है।

दोष

१. पित्त

परिचय

गण—कटुस्कन्ध (च०)

नाम—सं०-पित्त, मायु, हि०-पित्त; अ०-सफरा; अं०-बाइल (Bile)।

स्वरूप—यह गहरे पीताभ हरित वर्ण का एक द्रव होता है। इसका स्वाद तिक्त और अप्रिय होता है। यह क्षारीय है तथा जल एवं ९०% अलकोहल में विलेय है।

उत्पत्तिस्थान—यह प्राणियों के यकृत् में उत्पन्न होता है और पित्तकोष में संचित रहता है। विशेष कर यह भैंसा, सूअर, बकरा, मयूर, कृष्णसर्प, रोहूमछली और बिल्ली से प्राप्त किया जाता है। इनको पित्तगण कहते हैं।[2] मछली, गाय, घोड़ा, मनुष्य और मयूर के पित्त को पित्तपंचक कहते हैं।[3] आधुनिक चिकित्सा में शोधित वृषपित्त (Purified ox-bile) का प्रयोग होता है।

रासायनिक संघटन—पित्त में ग्लाइकोकॉलिक अम्ल (Glycocholic acid) टॉरोकॉलिक अम्ल (Taurocholic acid), लवण, कोलेस्टरीन, रञ्जक-पदार्थ (Biliverdin तथा Bilirubin) होते है।

गुण

गुण—स्निग्ध, तीक्ष्ण द्रव, सर, लघु | **रस**—कटु
विपाक—कटु | **वीर्य**—उष्ण

तद्यथा शुक्रक्षये क्षीरसर्पिषोरुपयोगो मधुरस्निग्धसमाख्यातानां चापरेषां द्रव्याणाम्... कर्मापि च यद्यद्यस्य धातोर्वृद्धिकरं तत्तदाऽऽसेव्यम्।' (च. शा. ६)

१. जंगमानां वयःस्थानां रक्तरोमनखादिकम्।
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत्॥ (सु. सू. ३७)
'मांसं वयसि मध्यमे।' (सु. सू. ४६)

२. 'महिषक्रोडमत्स्यानां छागस्य च शिखण्डिनः।
कृष्णाहिरोहितानां च मार्जारस्य च मायुभिः॥ प्रोक्तः पित्तगणः (र. चू ९)

३. 'पित्तं पञ्चविधं मत्स्यगवाश्वनरबर्हिजम्।' (रसार्णव ५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्वितीय अध्याय

कर्म

दोषकर्म—कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—इसका लेप लेखन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह तीक्ष्णता के कारण तमोदोष को दूर करता है तथा आक्षेपहर है।

पाचनसंस्थान—यह दीपन है। यह पित्तनिःसारक है और इससे पित्त के ठोस और द्रव दोनों भागों का स्राव बढ़ता है। यह अग्न्याशय के मेदोविश्लेषक तत्त्व को बढ़ाता है और इस प्रकार मेद के पाचन और शोषण में सहायक होता है। क्षारीय होने से यह पाचनसंस्थान की अम्लता को दूर करता है। पित्तगत अम्ल वृहदन्त्र की श्लेष्मल कला को उत्तेजित करते हैं तथा उसकी परिसरण-गति को बढ़ाते हैं। इससे अन्त्रगत जीवाणु और तज्जन्य विष भी नष्ट होते हैं।

श्वसनसंस्थान—यह कफघ्न है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

प्रजननसंस्थान—यह आर्त्तवजनन है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—विषघ्न और कटुपौष्टिक है।

नेत्र—चक्षुष्य है।

शोषण और उत्सर्ग—अन्त्र से शोषित होकर यह यकृत् में जाता है। वहाँ से पित्त के साथ उत्सृष्ट होता है। कुछ अम्ल मूत्र के साथ निकलते हैं।

प्रयोग

दोषप्रयोग—इसका कफवातज रोगों में प्रयोग होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—श्वित्र, कुष्ठ और अर्श में इसका लेप किया जाता है। कर्णपाली के उत्पुटक नामक उपद्रव में बाराह, गौ तथा हरिण के पित्त से सिद्ध तैल लगाया जाता है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—उन्माद और अपस्मार में इसका अञ्जन, सेक, नस्य, धूम और प्रधमन करते हैं। विशेषतः कुत्ते के पित्त का अञ्जन और धूपन अपस्मार में विहित है। अपस्मार में गोह, नकुल, हाथी, हरिण, रीछ और गाय के पित्त से सिद्ध तैल का पान और अभ्यङ्ग करते हैं। बालग्रहों में भी पित्त का अञ्जन, नस्य, अभ्यङ्ग, सेक आदि किया जाता है।

पाचनसंस्थान—यह अग्निमांद्य, यकृद्विकार, जीर्ण विबन्ध और कृमि में प्रयुक्त होता है। विशेषतः जब यकृत् की क्रिया मन्द होने से पित्त का स्राव कम होता है और स्नेहपदार्थों का पाचन कम होने लगता है तब इसका प्रयोग करते हैं। जीर्ण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विबन्ध तथा बद्धगुदोदर में इसकी बस्ति भी देते हैं। अन्त्रस्थ विषों में भी यह लाभकर है।

श्वसनसंस्थान—फुफ्फुसशोथ में भालू के पित्त का प्रयोग करते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है।

प्रजननसंस्थान—रजोरोध में इसका प्रयोग करते हैं। इसमें गोपित्त और मत्स्यपित्त का पिचु योनि में धारण कराते हैं।

तापक्रम—जीर्ण विषमज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—विषों में अगद तथा लेप के रूप में अनेक पित्तों का प्रयोग है। सुश्रुतोक्त 'आर्षभ अगद' (क० ६) में अनेक पित्त हैं। लेप द्वारा प्रयुक्त विष को दूर करने के लिए रीछ के पित्त का लेप करते हैं। कटुपौष्टिक होने से पाण्डुरोग में लाभकर है।

नेत्र—कूर्म, रोहित के पित्त का अञ्जन पित्तविदग्ध दृष्टि में करते हैं।

मात्रा—१–३ ग्रा०; सत्त्व–$\frac{1}{4}$–१ ग्रा०।

विशिष्ट योग—ज्वरनागमयूर चूर्ण, आर्षभ अगद।

प्रयोगविधि—इसके अप्रिय स्वाद को दूर करने के लिए इसकी गोली बना किसी आवरण में लपेट कर प्रयोग करते हैं। पाचनसंस्थान के विकारों में भोजन के दो घण्टे बाद दिया जाता है। जल अधिक पिलाना चाहिए।

× × × ×

'मूत्रं पित्तं क्षारः पालाशः कुष्ठहा लेपः।' (च. चि. ७.)

'वर्तिः स्यान्मरिचार्धांशा पित्ताभ्यां गोशृगालयोः। तयाऽञ्जयेदपस्मारभूतोन्मादज्वरार्दितान्॥
भूतार्त्तानमरार्तांश्च नरांश्चैव हगामये।' (च. चि. ९)

'पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम्।' (च. चि. १०)

'वाराहं गव्यमैणेयं पित्तं सर्पिश्च संसृजेत्। लेपमुत्पुटके दद्यात्तैलमेभिश्च साधितम्॥'
(सु. सू. १६)

'कुक्कुटपुरीषगुञ्जाहरिद्राविप्पलीचूर्णमिति गोमूत्रपित्तपिष्टो द्वितीयः (आलेपः अर्शसाम्)'
(सु. चि. ६)

वर्त्ति कृत्वा तां गवां पित्तपिष्टां, लेपः कार्यः श्वित्रिणां श्वित्रहारी।
लेपात् पित्तं शैखिनं श्वित्रहारि' (सु. चि. ९)

'चूर्णान्यथैषां निहितानि शृंगे न्यसेच्च पित्तानि समाक्षिकाणि।
वराहगोधाशिखिशल्लकीनां मार्जारजं पार्षतनाकुले च॥
यस्यागदोऽयं सुकृतो गृहे स्यान्नाम्नार्षभो नाम नरर्षभस्य।' (सु. क. ६)

'गोधानकुलमार्जारऋक्षपित्तप्रभावितान्। नस्याभ्यञ्जनसेकेषु विदध्याद्योगतत्त्ववित्॥'
(सु. उ. ६०)

'गोधानकुलनागानां पृषतर्ष्यगवामपि। पित्तेषु सिद्धं तैलं च पानाभ्यंगेषु पूजितम्॥'
(सु. उ. ६१)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२. पाचक किण्वतत्त्व (Digestive enzymes)

आमाशयिक किण्वतत्त्व (पेप्सिन-Pepsin)

परिचय

यह आमाशयिक रस का एक पाचक तत्त्व है जो मांसतत्त्व के पाचन में विशेषरूप से सहायक होता है। यह प्राणियों के आमाशय से प्राप्त किया जाता है।

स्वरूप—यह वर्णरहित, मांसगन्धि चूर्ण या कणों के रूप में होता है। जल में किंचित् विलेय है तथा अलकोहल में १ प्रतिशत घुलता है।

गुण

गुण—लघु, तीक्ष्ण **रस**—अम्ल, लवण
विपाक—अम्ल **वीर्य**—उष्ण

कर्म

संस्थानिक कर्म-पाचनसंस्थान—यह प्रोटीन को पेप्टीन में बदल देता है अतः मांसतत्त्व के पाचन में सहायक होता है। यह इतना शक्तिशाली है कि अपने से २५०० गुना अधिक अंडे के अलब्यूमिन को गला देता है।

प्रयोग

संस्थानिक प्रयोग-पाचनसंस्थान—यह अग्निमांद्य विशेषतः मांसतत्त्व के अपचन में दिया जाता है। आहार द्रव्यों को पूर्वपक्व बनाने के लिए भी इसका प्रयोग होता है और इस प्रकार पूर्वपक्व आहार ऐसे अग्निमांद्य के रोगियों को मुख या गुदा द्वारा दिया जाता है। निम्नाङ्कित कारणों से उत्पन्न अग्निमांद्य में यह विशेष उपयोगी है :—

१. आमाशय का क्षय या विस्तार।
२. श्लेष्मा का अधिक स्राव।
३. रक्तसंवहन की अल्पता यथा पाण्डु, दौर्बल्य, बार्धक्य आदि।
४. आमाशयिक व्रण आदि।

इसके अतिरिक्त यह बालकों के अजीर्णजन्य वमन और अतिसार में प्रयुक्त होता है।

प्रयोगविधि—इसका चिरकाल तक प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे आमाशय की प्राकृत शक्ति का क्षय होने लगता है। पेप्सिन भोजन के साथ या तुरन्त बाद तनु लवणाम्ल के साथ देना चाहिए।

मात्रा—$\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ ग्रा०।

अग्न्याशयिक किण्वतत्त्व (पैंक्रियाटिन-Pancreatin)

परिचय

यह प्राणियों के अग्न्याशय से प्रस्तुत एक पदार्थ है जिसमें अग्न्याशय के तीनों (ट्रिप्सिन, एमाइलेज और लाइपेज) किण्वतत्त्व वर्तमान होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप—यह वर्णरहित, मांसगंधि एक चूर्ण है। जल में विलेय तथा अलकोहल में अविलेय।

गुण

गुण—लघु, तीक्ष्ण **रस**—कटु
विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

कर्म

संस्थानिक कर्म-पाचनसंस्थान—यह दीपन, पाचन एवं ग्राही है। अग्न्याशय की क्रिया को उद्दीप्त करता है।

प्रयोग

संस्थानिक प्रयोग-पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार, ग्रहणी में यह प्रयुक्त होता है। आहार के पूर्व-पाचन के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसकी गोली बनाकर स्वर्जिक्षार के साथ भोजन से दो घण्टे बाद देते हैं। अग्न्याशय को उद्दीप्त करने के कारण प्रमेह में भी लाभकर है।

मात्रा—$\frac{१}{४}$-$\frac{१}{२}$ ग्रा०।

३. लाला

परिचय

नाम—सं०-लाला; हि०-लार, थूक; अं०-सेलाइवा (Saliva)।
स्वरूप—यह एक श्वेतवर्ण जलीय तथा पिच्छिल तरल पदार्थ है।
उत्पत्तिस्थान—यह शिरोभाग में स्थित लाला ग्रन्थियों से निःसृत होता है।

गुण

गुण—मृदु, स्निग्ध, पिच्छिल **रस**—मधुर
विपाक—मधुर **वीर्य**—शीत

कर्म

यह चक्षुष्य और विषघ्न है।

प्रयोग

अश्व की लाला का अञ्जन नेत्ररोगों में करते हैं। मनुष्य की लाला के साथ जयपाल को घिसकर सर्पविष में अञ्जन करते हैं।[१]

---

१. 'जयपालभवां मज्जां भावयेन्निम्बुकद्रवैः। एकविंशतिवेलं तु ततो वर्त्तिं प्रकल्पयेत्॥ मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तयाऽञ्जयेत्। सर्पदष्टविषं जित्वा संजीवयति मानवम्॥' (शा.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(ख) धातु

४. रक्त

परिचय

नाम—सं०-रक्त, रुधिर, लोहित, शोणित, असृक्; हि०-लहू, अ०-दम; फा०-खून; अं०-ब्लड (Blood)।

स्वरूप—यह शरीर का एक रक्तवर्ण द्रव धातु है। जीवन के लिए प्रमुख रूप से आवश्यक होने से इसे जीवरक्त भी कहते हैं इसमें रक्तकण, श्वेतकण तथा रक्तचक्रिकायें ये तीन प्रकार के कण और रक्तमस्तु होता है। रक्तमस्तु में रक्तरस तथा रक्तस्कन्दक भाग होते हैं। रक्तकण में लौहित्य हीमोग्लोबिन नामक रञ्जक द्रव्य के कारण होता है।

रासायनिक संघटन—रक्त में मुख्यतः लोह का अंश होता है। प्राच्य दृष्टि से जीवरक्त पाञ्चभौतिक तथा आर्त्तवरक्त आग्नेय होता है।

गुण

गुण—लघु, स्निग्ध **रस**—मधुर, लवण

विपाक—मधुर **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक और पित्तवर्धक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह कुष्ठघ्न और सवर्णीकरण है। आभ्यन्तर कृमियों को बाहर निकलता है।

आभ्यन्तर-रक्तवहसंस्थान—यह हृद्य और शोणितास्थापन है।

प्रजननसंस्थान—आर्त्तवजनन है।

सात्मीकरण—बल्य और विपन्न है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह कफवातविकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—वराह और गौ के रक्त का लेप कुष्ठ और श्वित्र में करते हैं। कृमिज शिरोरोग में रक्त का नस्य देते हैं। इससे कृमि आकर्षित होकर बाहर निकलते हैं और फिर उसकी गन्ध से मूर्च्छित हो जाते हैं।

आभ्यन्तर-रक्तवहसंस्थान—हृद्दौर्बल्य में तथा किसी कारण से अतिरक्तस्राव होने पर प्राणियों का ताजा रक्त रोगी को पिलाते हैं। आधुनिक चिकित्सा में ताजे रक्त का सिराओं द्वारा अन्तःक्षेप (Blood Tronsfusion) करते हैं। ऐसी स्थिति में बस्ति द्वारा भी रक्त देते हैं।

प्रजननसंस्थान—रजोरोध में मृग, अज, अवि तथा वराह के रक्त से सिद्ध घृत के सेवन का विधान है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सात्मीकरण—दौर्बल्य विशेषतः रक्ताल्पताजन्य में यह अतीव उपयोगी है। मत्स्यविष तथा अन्य विषों में छाग आदि का रक्त पिलाते हैं।

मात्रा—ताजा रक्त–१०–२० मि० लि०; रक्तरञ्जक द्रव्य–३–६ ग्रा०।

× × × ×

'लोहितं लोहितेन'। (च. शा. ६)

'धन्वजानामसृग्लिह्यान्मधुना मृगपक्षिणाम्। सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते॥' (च. चि. ४)

'रुधिरं मार्गमाजं वा घृतभृष्टं प्रशस्यते।' (च. चि. १९)

'मृगाजाविवराहासृग् दध्यम्लफलसर्पिषा। असृजस्का पिबेत्॥' (च. चि. ३०)

'मृगगोमहिषाजानां सद्यस्कं जीवतामसृक्। पिबेज्जीवाभिसंधानं जीवं तद्ध्याशु गच्छति॥

तदेव दर्भमृदितं रक्तं बस्तिं प्रदापयेत्।' (च. सि. ६)

'शशैणदक्षमार्जारमहिषाप्यजशोणितैः।

सद्यस्कैर्मृदितैर्बस्तिर्जीवादाने प्रशस्यते॥' (च. सि. १०)

'अतिप्रवर्तमाने रक्ते······एणहरिणोरभ्रशशमहिषवराहाणां रुधिरं क्षीरयूषरसैः सुस्निग्धैश्च अश्नीयात्।' (सु. सू. १५)

'अतिनिःस्रुतरक्तो वा भिन्नकोष्ठः पिबेदसृक्।' (सु. चि. २)

'अतिनिःस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृ–।

यकृद्वा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम्॥' (सु. उ. ४५)

'वमनातियोगे प्रवृद्धे···तमजासृक्चन्दनोशीराञ्जनलाजचूर्णैः सशर्करोदकैर्मन्थं पाययेत्।' (सु. चि. ३४)

'वाराहमाहिषौरभ्रबैडालैणेयकौक्कुटम्।

सद्यस्कमसृगण्डं वा देयं पिच्छिलबस्तिषु॥ (सु. चि. ३८)

नस्यं हि शोणितं दद्यात्तेन मूर्च्छन्ति जन्तवः। मत्ताः शोणितगन्धेन समायान्ति पयस्ततः॥ तेषां निर्हरणं कार्यं ततो मूर्धविरेचनैः।' (सु. उ. २६)

५. मांस

परिचय

नाम—सं०–मांस, आमिष; हि०–मांस; अ०–लहम; फा०–गोश्त; अं०–मीट (Meat)।

स्वरूप—यह शरीर का एक प्रसिद्ध पार्थिव धातु है।

रासायनिक संघटन—मांस में प्रोटीन विशेष रूप से उपलब्ध होता है।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध	रस—मधुर
विपाक—मधुर	वीर्य—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—मधुर-स्निग्ध होने से यह वातपित्तशामक और कफवर्धक है।

स्थानिक कर्म-बाह्य—स्नेहन, स्वेदन, कुष्ठघ्न, व्रणोत्सादन और संधानीय है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह नाडीबल्य है।

प्रजननसंस्थान—यह वृष्य और क्षीरजनन है।

सात्मीकरण—यह विशेष रूप से मांसवर्धक है, अतः बृंहणीय द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मांसरस तर्पणीय द्रव्यों में सर्वोत्तम माना गया है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातपैत्तिक विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—वातव्याधि में उष्ण मांस का प्रदेह तथा शाल्वण-स्वेद प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त, मांस पिण्डस्वेद, प्रस्तरस्वेद तथा अवगाहस्वेद के रूप में विभिन्न वातविकारों से प्रयुक्त होता है। व्रणों में इसका प्रयोग करते हैं। भग्न में भी प्रयुक्त होता है। कुष्ठ में मांसपोट्टली से स्वेदन करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—वातव्याधि तथा नाडीदौर्बल्य में दिया जाता है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरणार्थ और स्तन्यवृद्धयर्थ देते हैं।

सात्मीकरण—कृशता, दौर्बल्य, क्षय और शोष में मांस परमोपयोगी है। शोष में मांसाहारी प्राणियों का मांस विहित है। बलवृद्धयर्थ यापन बस्तियों में भी मांस का प्रयोग होता है।

विशिष्ट योग—छागलाद्य घृत।

वक्तव्य—विशेषतः वराहमांस चक्षुष्य, माहिषमांस वृष्य तथा गोमांस विषम-ज्वरघ्न है। मांस का प्रयोग विशेषतः आहारद्रव्य के रूप में होता है। अतः मांस-वर्ग का विशेष विवरण इसी भाग के तृतीय खण्ड में देखें।

× × × ×

मांसं बृंहणीयानाम्।' रसस्तर्पणीयानाम्। क्रव्यादरसाभ्यासो ग्रहणीदोषशोषार्शोघ्नानाम्॥
(च. सू. २५)

'शरीरबृंहणे नान्यदाद्यं मांसाद् विशिष्यते।' (च. सू. २७)

'क्षये मांसरसः परम्।' (च. सू. २७)

'तस्मान्मांसमाप्यायते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः।' (च. शा० ६)

'गत्वा स्नात्वा पयः पीत्वा रसं चानु शयीत ना।
तथाऽस्याप्यायते भूयः शुक्रं च बलमेव च॥' (च. चि. २)

'शुष्यते क्षीणमांसाय कल्पितानि विधानवित्। दद्यान्मांसादमांसानि बृंहणानि विशेषतः॥'
'मांसेनोपचितांगानां मांसं मांसकरं परम्। तीक्ष्णोष्णलाघवाच्छस्तं विशेषान्मृगपक्षिणाम्॥'
'मांसमेवाश्नतः शोषो माध्वीकं पिबतोऽनु च। नियतानल्पचित्तस्य चिरं काये न तिष्ठति॥'
(च. चि. ८)

'बर्हितित्तिरिदक्षाणां हंसानां शूकरोष्ट्रयोः। खरगोमहिषाणां च मांसं मांसकरं परम्॥'
(च. चि. ८)

मांसाशिनां च मांसानि भक्षयेद् विधिविन्नरः। विशुद्धमनसस्तस्य मांसं मांसेन वर्धते॥'
(सु. चि. १)

'गोधारसः सलवणो दारु च मूत्रं च मण्डलनुत्।' (च. चि. ७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

६. मेद एवं वसा

परिचय

गण—मधुरवर्ग (सु०) मधुरस्कन्ध (च०)।

नाम—सं०-वसा; हि०-चर्बी; अ०-शहम; अं०-फैट (Fat)।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध, मृदु | रस—मधुर

विपाक—मधुर | वीर्य—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह प्रमुख वातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—स्नेहन, संधानीय बल्य और वेदनास्थापन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—नाडीबल्य और वेदनास्थापन है।

पाचनसंस्थान—स्नेहन एवं अनुलोमन है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरण है।

सात्मीकरण—बृंहण और बल्य है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातव्याधि में यह सभी स्नेहों में श्रेष्ठ माना गया है। पक्षाघात, अर्दित आदि वातविकारों में वह बहुशः प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—वातव्याधि, भग्न, क्षत, ध्वजभंग आदि में इसका अभ्यंग करते हैं। अर्श में कृष्णसर्प, वराह, उष्ट्र तथा बिडाल की वसा का लेप और धूपन करते हैं। कर्णपालीवर्धन के लिए गोधा प्रतुद, विष्किर, आनूप तथा औदक प्राणियों की वसा का अभ्यंग करते हैं। निरुद्धप्रकश में वराहवसा का परिषेक करते हैं। तिमिररोग में गृध्र, सर्प तथा कुक्कुट की वसा का अंजन विहित है। कर्णरोगों में कुक्कुटवसा से कर्णपूरण करते हैं। विषमज्वर में व्याघ्र की वसा का नस्य देते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—वातव्याधि में नक्र, मत्स्य, कूर्म, वराह आदि की वसा का पान तथा कोष्ठगत रौक्ष्य एवं विबन्ध में प्रयोग करते हैं।

प्रजननसंस्थान—ध्वजभंग में वराहवसा का पान कराते हैं। वातप्रदर में वराह की वसा तथा महायोनि में वराह एवं कुक्कुट की वसा का प्रयोग करते हैं।

सात्मीकरण—कृशता और दौर्बल्य में उपयोगी है।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'मेदो मेदसा ।' (च. शा. ६)
'मूत्रवातस्वजामेदः सुराभृष्टं ससैन्धवम् ।
वामः पीनः चतोरस्कत्वनिद्रः सबलेऽनिले ॥
शृतक्षीररसेणाजाद् सक्षौद्रघृतशर्करम् ।' (च. चि. ११)

'ग्राम्यानूपौदकायाश्च वसामेदो मज्जानो गुरूष्णमधुराः वातघ्नाः जांगलैकशफक्रव्यादादीनां लघुशीतकषाया रक्तपित्तघ्नाः, प्रतुदविष्किराणां श्लेष्मघ्नाः । तत्र घृततैलवसामेदोमज्जानो यथोत्तरं गुरुविपाका वातहराश्च ।' (सु. सू. ४५)

'वसा वसया ।' (च. शा. ६)

'जंगमात्मकस्तु वसा, मज्जा सर्पिरिति । तेषां यथापूर्वं श्रेष्ठं वातश्लेष्मविकारेषु, यथोत्तरं पित्तविकारेषु सर्व एव वा सर्वेष्वपि च विकारेषु योगमायान्ति संस्कारविशेषात् ।' (च. चि. ८)

'सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्नेहो दृष्टश्चतुर्विधः । पानाभ्यञ्जनवस्त्यर्थं नस्यार्थं चैव योगतः ॥' (च. सू. १)

'विद्धभग्नाहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि । पौरुषोपचये स्नेहे व्यायामे चेष्यते वसा ॥' (च. सू. १३)

'वातातपसहा ये च रूक्षा भाराध्वकर्शिताः । संशुष्करेतोरुधिरा निष्पीतकफमेदसः ॥
अस्थिसन्धिसिरास्नायुमर्मकोष्ठमहारुजः । बलवान्मारुतो येषां खानि चावृत्य तिष्ठति ॥
महच्चाग्निबलं येषां वसासात्म्याश्च येनराः । तेषां स्नेहयितव्यानां वसापानं विधीयते ॥' (च.सू. १३)

'व्यायामकर्शिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः । महाग्निमारुतप्राणाः वसायोग्या नराः स्मृताः ॥' (सु. चि. ३१)

'गव्यं सर्पिर्वराहस्य कुलिंगस्य वसामपि ।'
एषां प्रयोगाद् भक्ष्याणां स्तब्धेनापूर्णरेतसा । शेफसा वाजिवद् याति यावदिच्छं स्त्रियो नरः ॥ (च. चि. २)

'तिलचूर्णं दधि घृतं फाणितं शौकरी वसा । क्षौद्रेण संयुतं पेयं वातासृग्दरनाशनम् ॥' (च. चि. ३०)

'वराहकुक्कुटवसा घृतं च मधुरैः शृतम् । पूरयित्वा महायोनिं बध्नीयात् क्षौमलक्तकैः ॥' (च. च. ३०)

'कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतुकावृषदंशजाम् । वसामभ्यञ्जने दद्यात् धूपनं चार्शसां हितम् ॥' (च. चि. १४)

७. अस्थि

परिचय

नाम—सं०–अस्थि । हि०–हड्डी; अं०–वोन (Bone) ।

स्वरूप—यह एक श्वेतवर्ण कठिन धातु है ।

रासायनिक संघटन—इसमें कैल्शियम तथा स्फुरक अधिक परिमाण में होते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, कठिन **रस**—मधुर

विपाक—मधुर **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—इसका लेप लेखन है।

आभ्यन्तर-श्वसनसंस्थान—श्वासहर तथा हिक्कानिग्रहण है।

मूत्रवहसंस्थान—अश्मरीभेदन और मूत्रल है।

सात्मीकरण—विषघ्न और अस्थिवर्धक है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातिक विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—गर्दभास्थि को जलाकर श्वित्र में लेप करते हैं। अपस्मार में कुक्कुर तथा गर्दभ की अस्थि का नस्य, धूपन और प्रदेह देते हैं। अर्श में गजास्थि का लेप करते हैं।

आभ्यन्तर-श्वसनसंस्थान—अस्थि की भस्म श्वास और हिक्का में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—क्रौञ्च, उष्ट्र तथा गर्दभ की अस्थि अश्मरीरोग में देते हैं। सारस की अस्थि कफज मूत्रकृच्छ्र में प्रयुक्त होती है। हस्तिमेह में हस्ती, अश्व, शूकर, गर्दभ तथा उष्ट्र की अस्थि की क्षार मधु के साथ देते हैं।

सात्मीकरण—अस्थिदौर्बल्य में प्रयुक्त होता है। विष में बलाका की अस्थि का धूम देते हैं।

× × × ×

'अस्थि तरुणास्थनां।' (च. शा. ६)

'शुनःस्कन्धास्थिनखरान् पशुंकांश्चेति पेषयेत्। बस्तमूत्रेण पुष्यर्क्षे प्रदेहः स्याद् सधूपनः॥'
'खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथा गोपुच्छलोमभिः। कपिलानां गवां मूत्रं नावनं परमं हितम्॥'
(च. चि. १०)

'प्रलेपः स्यात् गजास्थीनि निम्बो भल्लातकानि च।' (च. चि. १४)

'एकद्विशफशृंगाणि चर्मास्थीनि खुरांस्तथा। सर्वाण्येकैकशो वापि दग्ध्वा क्षौद्रघृतान्वितम्॥
चूर्णं लिहन् जयेत् कासं हिक्कां श्वासं च दारुणम्।' (च. चि. १७)

'शिखिबर्हबलाकास्थीनि सर्षपाश्चन्दनं च घृतयुक्तम्।
धूमो गृहशयनासनवस्त्रादिषु शस्यते विषनुत्॥' (च. चि. २३)

'क्रौञ्चोष्ट्ररासभास्थीनि श्वदंष्ट्रा तालमूलिका। अजमोदा कदम्बस्य मूलं नागरमेव च॥
पीतानि शर्करां भिन्द्युः सुरयोष्णोदकेन वा।' (सू. चि. ७)

'हस्तिमेहिनं……मधुमिश्रं हस्त्यश्वशूकरखरोष्ट्रास्थिक्षारं चेति।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

८. मज्जा

परिचय

यह अस्थियों के भीतर रहने वाला स्नेह भाग है। नलकास्थियों के मध्य भाग में पीतमज्जा तथा उनके प्रान्तभाग और अन्य अस्थियों में रक्तमज्जा होती है। औषध में रक्तमज्जा का प्रयोग होता है।

गण—मधुरस्कन्ध (च०); मधुरवर्ग (सु०)।

नाम—सं०–मज्जा; अं०–रेड बोन मैरो (Red bone-marrow)।

स्वरूप—यह रक्तवर्ण गाढ़ा स्नेह पदार्थ है। ग्लिसरीन के साथ मिला कर इसे द्रव रूप में रक्खा जाता है।

रासायनिक संघटन—इसमें ९० प्रतिशत स्नेह होता है जिसमें लेसिथिन अधिक होता है। इसके अतिरिक्त, सेन्द्रिय लौह तथा कोलेष्टरोल होता है।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध	**रस**—मधुर
विपाक—मधुर	**वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह वातशामक एवं कफवर्धक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—स्नेहन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—नाडीबल्य और वातशामक है।

प्रजननसंस्थान—वृष्य है।

सात्मीकरण—यह विशेषतः रक्त, मेद, अस्थि और मज्जा धातुओं को बढ़ाता है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातव्याधि में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—वातव्याधि में इसका बाह्य प्रयोग करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—वातव्याधि में मज्जापान, नस्य एवं बस्ति का प्रयोग करते हैं। महास्नेह का प्रयोग सिरामज्जास्थिगत वात में करते हैं।

प्रजननसंस्थान—शुक्रदौर्बल्य में प्रयोग होता है।

सात्मीकरण—पाण्डु, हलीमक, रक्तपित्त, अस्थिवक्रता तथा कृशता में यह अतीव उपयोगी है।

मात्रा—३–६ ग्रा०; घनमज्जा–$\frac{1}{4}$–$\frac{1}{2}$ ग्रा०।

विशिष्ट योग—मज्जागुटिका।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'मज्जा मज्ज्ञा ।' (च. शा. ६)
'बलशुक्ररसश्लेष्ममेदोमज्जाविवर्धनः ।
मज्जा विशेषतोऽस्थ्नां च बलकृत् स्नेहने हितः ॥' (च. सू. १३)
दीप्ताग्नयः क्लेशसहाः घस्मराः स्नेहसेविनः ।
वातार्त्ताः क्रूरकोष्ठाश्च स्नेह्या मज्जानमाप्नुयुः ॥' (च. सू. १३)

'जन्वानूपौदकानां तु भित्त्वाऽस्थीनि पचेज्जले । तं स्नेहं दशमूलस्य कषायेण पुनः पचेत् ॥
तस्सिद्धं नावनाभ्यंगात् तथा पानानुवासनात् । सिरापर्वास्थिकोष्ठस्थं प्रणुदत्याशु मारुतम् ॥
ये स्युः प्रक्षीणमज्जानः क्षीणशुक्रौजसश्च ये । बलपुष्टिकरं तेषामेतत् स्यादमृतोपमम् ॥'
(च. चि. २८)

९. शुक्र

परिचय

यह शरीर का चरम धातु है जो सन्तानोत्पत्ति के कार्य में आता है ।

नाम—सं०—शुक्र, रेत; अ०—मनी; अं०—सीमन (Semen) ।

स्वरूप—यह स्फटिक के समान अर्धद्रव धातु है जो अण्डकोष में उत्पन्न होकर शिश्नमार्ग से बाहर निकलती है ।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल
रस—मधुर
विपाक—मधुर
वीर्य—शीत

कर्म-प्रयोग

यह विशेषतः शुक्रवर्धक है । महिष, वृषभ, बस्त, चटक, हंस, मयूर, नक्र आदि प्राणियों के शुक्र का पान या उसकी पूपलिका शष्कुली आदि बना कर भक्षण शुक्रदौर्बल्य के रोगियों को कराते हैं । इन सबमें नक्र (घड़ियाल) का रेत सर्वोत्तम माना जाता है ।

× × × ×

'शुक्रं शुक्रेण ।' (च. शा. ६)
'नक्ररेतो वृष्याणाम् ।' (च. सू. २५)
'चटकानां सहंसानां दक्षाणां शिखिनां तथा ।
शिशुमारस्य नक्रस्य भिषक् शुक्राणि संहरेत् ॥
पश्चिः पूपलिकाः कार्याः शष्कुल्यो वर्तिकास्तथा ।
पूपा धानाश्च विविधाः भक्ष्याश्चान्ये पृथग्विधाः ॥
एषां प्रयोगाद् भक्ष्याणां स्तब्धेनापूर्णरेतसा ।
शेफसा वाजिवद्याति यावदिच्छं स्त्रियो नरः ॥' (च. चि. २)
'न ना स्वपिति रात्रीषु नित्यस्तब्धेन च शेफसा ।
तृप्तः कुक्कुटमांसानां भृष्टानां नक्ररेतसि ॥' (च. चि. २)
'म हिषवृषभबस्तानां पिबेच्छुक्राणि वा नरः ।' (सु. चि. २६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(ग) उपधातु

१०. स्तन्य

परिचय

स्तन्य एक श्वेतवर्ण प्रसिद्ध द्रव पदार्थ हैं जो प्राणियों के स्तन से निकलता है। स्तन से निकलने के कारण इसे 'स्तन्य' कहते हैं।

गण—मधुर वर्ग (सु०)।

नाम—सं०-दुग्ध, क्षीर, पय, स्तन्य; हि०-दूध; सि०-खीर; ता०-पाल; अ०-लबून; फा०-शीर; लै०-लैक्टस (Lactus); अं०-मिल्क (Milk)।

जाति—औषध में गौ, महिषी, बकरी, भेंड़ी, घोड़ी, गदही, हथिनी, ऊँटनी और नारी इनका दुग्ध प्रयुक्त होता है। इसे क्षीराष्टक कहते हैं। इनमें गोदुग्ध सबमें उत्कृष्ट तथा भेंड़ी का दूध निकृष्ट माना गया है।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध, मृदु, पिच्छिल **रस**—मधुर

विपाक—मधुर **वीर्य**—शीत

कर्म

दोषकर्म—यह वातपित्तशामक और कफवर्धक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह स्नेहन, सन्धानीय, रोपण और बलवर्धक है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मेध्य, निद्राजनन और नाडीबल्य है।

पाचनसंस्थान—स्नेहन, अनुलोमन और मृदुरेचन है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य, शोणितस्थापन और शोथहर है।

श्वसनसंस्थान—हिक्कानिग्रहण तथा कास श्वासहर है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रजनन, शुक्ररेचन, गर्भस्थापन, गर्भवृद्धिकर एवं स्तन्यजनन है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

त्वचा—त्वग्दोषहर और वर्ण्य है।

तापक्रम—ज्वरघ्न और दाहप्रशमन है।

सात्मीकरण—जीवनीय, बृंहणीय, श्रमहर, संतर्पण और बल्य है। ओज के दसो गुण गोदुग्ध में होने के कारण यह विशेष रूप से ओजोवर्धक है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातपैत्तिक रोगों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिकप्रयोग-बाह्य—मुखपाक में दुग्ध का कवलग्रह करते हैं। शोष के रोगी को क्षीरकोष्ठ में अवगाहन कराते हैं। नारीस्तन्य का नस्य, हिक्का और तृष्णा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

में देते हैं। पित्ताभिष्यन्द में नारीस्तन्य नेत्र में डालते हैं। सद्योव्रण तथा भग्न में भी प्रयोग करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कदौर्बल्य, मदात्यय, अनिद्रा तथा नाडी-दौर्बल्य में लाभकर है। महिषीक्षीर सर्वोत्तम निद्राजनन माना गया है।

पाचनसंस्थान—अम्लपित्त, गुल्म, उदर और विबन्ध में इसका प्रयोग करते हैं। अजाक्षीर रक्तातीसार एवं ग्रहणी में देते हैं। उदररोग में उष्ट्रीक्षीर अधिक लाभकर है। अत्यग्नि में नारीस्तन्य के साथ उदुम्बरत्वक् का प्रयोग करते हैं।

रक्तवहसंस्थान—हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, रक्तविकार, पांडु तथा शोथ में उपयोगी है।

श्वसनसंस्थान—हिक्का, कास और श्वास में देते हैं। उरःक्षत तथा वातज कास में विशेषरूप से लाभकर है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रदौर्बल्य, शुक्राश्मरी, गर्भपात तथा स्तन्याल्पता में इसका प्रयोग करते हैं। गर्भपोषण के लिए गर्भिणी स्त्रियों को इसका सेवन विशेष कराते हैं। प्रदर में भी उपयोगी है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में देते हैं। भेंड़ी का दूध अश्मरीरोग में विशेष हितकर है।

त्वचा—चर्मरोगों तथा वर्णविकारों में लाभकर है।

तापक्रम—जीर्णज्वर, विषमज्वर में इसका प्रयोग होता है। पञ्चगव्य, पञ्चाज, पञ्चमहिष, पञ्चाविक तथा पञ्चसार का प्रयोग विषमज्वर में निर्दिष्ट है।

सात्मीकरण—कार्श्य और दौर्बल्य में यह प्रयुक्त होता है। बालरोगों में विशेषतः बालशोष में गदही का दूध दिया जाता है।

× × × ×

'क्षीरं जीवनीयानाम्।' क्षीरघृताभ्यासो रसायनानाम् (च. सू. २५)
'अजाक्षीरं शोषघ्नस्तन्यसात्म्यसांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्। 'महिषीक्षीरं स्वप्नजननानाम्।' अविक्षीरं श्लेष्मपित्तजननानाम्' (च. सू. २५)
'गोक्षीरं क्षीराणाम् (हिततमम्), अविक्षीरं क्षीराणाम् (अहिततमम्)' (च. सू. २६)

'प्रायशो मधुरं स्निग्धं शीतं स्तन्यं पयो मतम्। प्रीणनं बृंहणं वृष्यं मेध्यं बल्यं मनस्करम्॥
जीवनीयं श्रमहरं श्वासकासनिबर्हणम्। हन्ति शोणितपित्तं च सन्धानं विहतस्य च॥
सर्वप्राणभृतां सात्म्यं शमनं शोधनं तथा। तृष्णाघ्नं दीपनीयं च श्रेष्ठं क्षीणक्षतेषु॥
पाण्डुरोगेऽम्लपित्ते च शोषे गुल्मे तथोदरे। अतिसारे ज्वरे दाहे श्वयथौ च विशेषतः॥
योनिशुक्रप्रदोषेषु मूत्रेषु प्रदरेषु च। पुरीषे ग्रथिते पथ्यं वातपित्तविकारिणाम्॥
नस्यलेपावगाहेषु वमनास्थापनेषु च। विरेचने स्नेहने च पयः सर्वत्र युज्यते॥'
(च. सू. १)

'तत्र सर्वमेव क्षीरं सर्वप्राणभृतामप्रतिषिद्धं जातिसात्म्यत्वात्, वातपित्तशोणितमानसेष्वपि विकारेष्वविरुद्धं, जीर्णज्वरकासश्वासशोषक्षयगुल्मोन्मादोदरमूर्च्छाभ्रममदाहपिपासाहृद्बस्तिदोषपाण्डुरोगग्रहणीदोषार्शःशूलोदावर्तातिसारप्रवाहिकायोनिरोगगर्भास्राव-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्तपित्तश्रमक्लमहरं पाप्मापहं बल्यं वृष्यं वाजीकरणं रसायनं मेध्यं वयःस्थापनमायुष्यं जीवनं बृंहणं संधानं वमनविरेचनास्थापनं तुल्यगुणत्वाच्चौजसो वर्धनं बालवृद्धक्षत-क्षीणानां क्षुद्व्यवायव्यायामकर्शितानां च पथ्यतमम्।' (सू. सु. ४५)

'स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्। गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥ तदेवंगुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्। प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥' (च. सू. २७)

'उपवासाध्वभाष्यस्त्रीमारुतातपकर्मभिः। क्लान्तानामनुपानार्थं पयः पथ्यं यथामृतम्॥' (च. सू. २७)

'केवलं तु पयस्तस्याः शृतं वाऽशृतमेव वा। सर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्युक्तं तद् वृष्यमुत्तमम्॥' (च. चि. २)

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्। पेयं तदुष्णं शीतं वा यथास्वं भेषजैः शृतम्॥ (च. चि. ३)

'पयसः प्रयोगो विषमज्वरे।' (च. चि. ३)

नारीस्तन्य का नेत्ररोगों में अधिक प्रयोग है। (देखें सु. उ. ९-१०)

(घ) मल

११. मूत्र

परिचय

गण—कटुकस्कन्ध (च०), शिरोविरेचन (सु०)।

नाम—सं०-मूत्र, प्रस्राव; हि०-पेशाब, मूत; अ०-बोल; अं०-युरिन (Urine)।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण   **रस**—कटु, लवण

विपाक—कटु   **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक तथा पित्तसंशोधन है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह शोथहर, वेदनास्थापन, विषघ्न और लेखन है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक और कृमिघ्न है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य, रक्तशोधक, रक्तवर्धक तथा शोथहर है।

प्रजननसंस्थान—आर्त्तवजनन है।

मूत्रवहसंस्थान—इससे मूत्र का प्रमाण बहुत बढ़ता है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—यह लेखन, विषघ्न तथा रसायन है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातज विकारों में तथा पैत्तिक रोगों में संशोधनार्थं मूत्र का प्रयोग करते हैं।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—शोथ, वीसर्प, कुष्ठ, विष आदि में मूत्र का परिषेक, उत्सादन आदि करते हैं। सशूल अर्श तथा कष्टार्त्तव में गोमूत्र में अवगाहन करते हैं। नाडीस्वेद में मूत्र का प्रयोग होता है। उन्माद में गोमूत्र का सेक, अञ्जन, नस्य, धूम आदि देते हैं। कर्णशूल में मूत्राष्टक से कर्णपूरण करते हैं।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—उदररोग, अर्श, पाण्डु, कामला तथा कृमि में गोमूत्र का पान कराते हैं। उदररोग में मूत्र की बस्ति भी देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—हृद्रोग, रक्तविकार, रक्ताल्पता तथा शोथ में यह उपयोगी है।

प्रजननसंस्थान—रजोरोध, कष्टार्तव में मूत्र का प्रयोग करते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है।

त्वचा—वीसर्प आदि त्वग्रोगों में लाभकर है।

तापक्रम—विषमज्वर एवं जीर्णज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—विषों में, मेदोरोग में तथा रसायन के रूप में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—२५-५० मि० लि०।

वक्तव्य—गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, हाथी, घोड़ा, गदहा, ऊँट इन आठ प्राणियों का मूत्र (मूत्राष्टक) व्यवहृत होता है। इन सबमें गोमूत्र सर्वोत्तम है। अजामूत्र राजयक्ष्मा में, हस्तिमूत्र कुष्ठ में, उष्ट्रमूत्र कासश्वास में तथा खर (गर्दभ) मूत्र अपस्मार-उन्माद आदि मानस रोगों में विशेष लाभकर है।

कैयदेव ने नरमूत्र मिलाकर 'मूत्रनवक' कहा है। आजकल अनेक व्यक्ति स्वमूत्र का प्रयोग रसायन के रूप में करते हैं और इसे शिवाम्बु नाम देते हैं। सर्पविष में भी नरमूत्र का प्रयोग कराते हैं।

× × × ×

उष्णं तीक्ष्णमथो रूक्षं कटुकं लवणान्वितम्। मूत्रमुत्सादने युक्तं युक्तमालेपनेषु च॥
युक्तमास्थापने मूत्रं युक्तं चापि विरेचने। स्वेदेष्वपि च तद् युक्तमानाहेष्वगदेषु च॥
उदरेष्वथ चार्शःसु गुल्मकुष्ठकिलासिषु। तद् युक्तमुपनाहेषु परिषेके तथैव च॥
दीपनीयं विषघ्नं च क्रिमिघ्नं चोपदिश्यते। पाण्डुरोगोपसृष्टानामुत्तमं शर्म चोच्यते॥
श्लेष्माणं शमयेत् पीतं मारुतं चानुलोमयेत्। कर्षेत् पित्तमधोभागमित्यस्मिन् गुणसंग्रहः॥
(च. सू. १.)

'शूलगुल्मोदरानाहविरेकास्थापनादिषु। मूत्रप्रयोगसाध्येषु गव्यं मूत्रं प्रयोजयेत्॥
अर्शोघ्नं कारभं मूत्रं मानुषं च विषापहम्। (सु. सू. ४५)
नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद् रसायनम्। रक्तपामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम्॥
गोजाविमहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते। खरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम्॥
(भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१२. पुरीष

परिचय

नाम—सं०-पुरीष, शकृत्, विट्; हि०-गोबर, लीद, बिट; अं०-फीसेज (Faeces)।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण **रस**—कटु
विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—त्रिदोषशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—स्वेदन, वेदनास्थापन, क्रिमिघ्न, कुष्ठघ्न, लेखन, दारण, सवर्णीकरण और शिरोविरेचन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह तीक्ष्ण और लेखन होने से उत्तम संज्ञा-प्रबोधन है।

पाचनसंस्थान—छर्दिनिग्रहण, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक और कृमिघ्न है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तशोधक और रक्तपित्तशामक है। शोथहर भी है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न, हिक्कानिग्रहण और श्वासहर है।

मूत्रवहसंस्थान—प्रमेहघ्न है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—कटुपौष्टिक और विषघ्न है।

नेत्र—चक्षुष्य है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—त्रिदोषज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—गो, खर, उष्ट्र, वराह और अश्व के पुरीष पिण्ड; प्रस्तर आदि स्वेदनकर्म में प्रयुक्त होते हैं। अर्श में गो, खर, अश्व शकृत् के पिण्ड से स्वेदन; वराह, वृष एवं हस्ती के पुरीष से धूपन तथा कुक्कुटपुरीष और पारावतविट् का लेप करते हैं। कुष्ठ में गोमय से घर्षण करते हैं। श्वित्र में गृहकुक्कुटपुरीष तथा गजपुरीष का लेप करते हैं। व्रणों के दारण के लिए कपोत और गृध्र के पुरीष का लेप करते हैं। सवर्णीकरण के लिए गोमय का लेप किया जाता है। नेत्ररोगों में छागलपुरीष का अञ्जन देते हैं। गोशकृद्रस कफज शिरोरोगों में नस्यार्थ व्यवहृत होता है। कपोतविट् का लेप कफज अर्बुद में करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—उन्माद और अपस्मार में पुरीष का प्रयोग बहुत मिलता है। उन्माद में उलूक, मार्जार, शृङ्गाल और बस्ति के पुरीष का सेक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अञ्जन, प्रधमन, धूम और नस्य दिया जाता है। पक्षियों के विट् तथा गोपुरीष का धूपन, लेप, अभ्यंग, स्नान और उत्सादन अपस्मार में करते हैं। जलौका-पुरीष को जला कर उसका नस्य अपस्मार में देते हैं। नकुल, उलूक, मार्जार, गृध्र, सर्प और काक के तुण्ड, पक्ष और पुरीष का धूपन अपस्मार में विहित है। खर, अश्व, गृध्र, उलूक आदि प्राणियों के पुरीष का धूपन तथा इनसे सिद्ध तैल का नस्य, अभ्यंग, सेक बालग्रहों में लाभप्रद है। पंचगव्य घृत अपस्मार में एक प्रसिद्ध फलप्रद योग है।

पाचनसंस्थान—छर्दिरोग में मक्षिकाविट् का प्रयोग करते हैं। उदररोग, पांडु, कामला और कृमि में पुरीष प्रयुक्त होता है। कृमिरोग में अश्वपुरीष लाभकर है। अश्व, गर्दभ का पुरीषरस उदावर्त्त में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—रक्तविकार में पुरीष देते हैं। रक्तपित्त में गो, अश्व तथा पारावत का पुरीष मधु और घृत से प्रयुक्त होता है। मक्षिकाविट् भी चीनी, चन्दन और मधु में मिला कर रक्तपित्त में देते है। गलगंड में गोमयभस्म का सेवन कराते हैं।

श्वसनसंस्थान—गोशकृद्रस का प्रयोग मधु के साथ कास में करते हैं। हिक्का में गौ, अश्व एवं मक्षिका शकृत् का नस्य देते हैं। खर, अश्व, उष्ट्र, वराह, मेष और हस्ती का पुरीष कफप्रधान श्वास में हितकर है।

मूत्रवहसंस्थान—प्रमेह में उष्ट्र, अश्वतर, खर तथा अन्य मृगों के पुरीष का चूर्ण प्रयुक्त होता है।

त्वचा—कुष्ठ में प्रयुक्त होता है।

तापक्रम—विषमज्वर में उपयोगी है। विषमज्वर में बिडालशकृत् का धूपन भी करते हैं।

सात्मीकरण—अजा, अश्व, गौ आदि के पुरीष से सिद्ध घृत का प्रयोग यक्ष्मा तथा शोष में करते हैं। विष में गोमयस्वरस का लेह और अंजन करते हैं।

नेत्र—गोशकृद् दृष्टिवर्धक होने से इसका तिमिर रोग में नस्य देते हैं तथा नक्तान्ध्य में पान कराते है।

विशिष्ट योग—पञ्चगव्य घृत।

× × × ×

'अथाश्वशकृदाहृत्य महति किलिञ्जके प्रस्तीर्यातपे शोषयित्वोदूखले क्षोदयित्वा···तेषां तु खलु चूर्णानां पाणितलं चूर्णं यावद्वा साधु मन्येत, तत् क्षौद्रेण संसृज्य कृमिकोष्ठाय लेढुं यच्छेत्।' (च. चि. ७)

'युक्तं वा मधुसर्पिर्भ्यां लिह्याद् गोश्वशकृद्रसम्।' (च. चि. ४)

'सक्षौद्रं ग्रथितं रक्तं लिह्यात् पारावतं शकृत्।' (च. चि. ४)

'गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम्। सिद्धं पिबेदपस्मारकामलाज्वरनाशनम्॥'
(च. चि. १०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'खराश्वोष्ट्रवराहाणां मेषस्य च गजस्य च। शकृद्रसं बहुकफे चैकैकं मधुना पिबेत् ॥'
(च. चि. १७)

कपोतगृध्रकंकाणां पुरीषाणि च दारणम्।' (सु. सू. ३७)
'गोश्वाव्यजेभैणखरोष्ट्रजातैः शकृद्रसक्षीररसप्रतोयैः।
द्राक्षाश्वगन्धामगधासिताभिः सिद्धं घृतं यक्ष्मविकारहारि ॥ (सु. उ. ४१)
'अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः।
स्नानादिनानाविधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम् ॥' (सु. उ. ४१)

(च) अङ्ग-प्रत्यङ्ग

१३. मुष्क

परिचय

नाम—सं०–मुष्क, वृषण, अण्ड; हि०–आँड़, अं०–टेस्टिकल (Testicle)।

स्वरूप—वृषणों का बहिःस्राव शुक्र होता है तथा एक अन्तःस्राव होता है जिससे मूँछ, दाढ़ी आदि पुंस्त्व के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

गुण-कर्म

वृषण के सेवन से शुक्र की वृद्धि होती है तथा पुंस्त्वव्यञ्जक चिह्नों के उद्‌गम में सहायता मिलती है। शुक्रदौर्बल्य तथा क्लैव्य में वृषणों का सेवन कराते हैं। विशेषतः बकरे, भेड़, वृषभ, वानर तथा विडाल के वृषण का प्रयोग होता है।

मात्रा—चूर्ण–½–१ ग्रा०।

× × × ×

'पिप्पलीलवणोपेतं बस्ताण्डं क्षीरसर्पिषा। साधितं भक्षयेद् यस्तु स गच्छेत् प्रमदाशतम् ॥'
(सु. चि. २६)

'घृतं माषान् सबस्ताण्डान् साधयेन्माहिषे रसे। भर्जयेत्तं रसं पूतं फलाम्लं नवसर्पिषि ॥
ईषत्सलवणं युक्तं धान्यजीरकनागरैः। एष वृष्यश्च बल्यश्च बृंहणश्च रसोत्तमः ॥' (च.चि.२)

१४. जुन्दबेदस्तर

परिचय

नाम—सं०–गन्धमार्जार; हि०–गन्धबिलाव; अ०–जुंद, जुन्दबेदस्तर; फ्रा०–गुन्दबेदस्तर; लै०–कैस्टोरियम (Castorium); अं०–बीवर (Beaver)।

स्वरूप—यह खरगोश की जाति के कैस्टर फाइबर या बीवर (Castor fiber or Beaver) नामक प्राणी के त्वचारहित वृषण हैं। ये २–३ इञ्च लम्बे, गहरे भूरे रंग या श्यामवर्ण होते हैं तथा इनसे कस्तूरी की सी गन्ध आती है। यह ईथर और मद्य में विलेय है।

जाति—वर्ण भेद से तीन प्रकार का है—(१) पीत (२) रक्त और (३) कृष्ण। पीत सर्वोत्तम तथा कृष्ण निकृष्ट है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संघटन—इसमें एक उड़नशील तैल (जिसमें कार्बोलिक अम्ल होता है), राल १५–५८% तथा कैस्टोरिन (Castorine), कोलेस्टरीन; सैलिसीन आदि सत्व पाये जाते हैं।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष
रस—कटु, तिक्त
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातप्रशमन है।
संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह उत्तेजक, शोथहर, वेदनास्थापन, शीतप्रशमन है।
आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—नाडीवल्य, आक्षेपहर तथा वातशामक है।
श्वसनसंस्थान—कासहर एवं श्वासहर है।
प्रजननसंस्थान—वाजीकरण और आर्त्तवजनन है।
मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।
तापक्रम—शीतप्रशमन और उष्णताजनन है।
सात्मीकरण—विषघ्न है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—शोथ-वेदनायुक्त विकारों में, पक्षाघात, अर्दित आदि वातविकारों तथा कफज शिरोरोगों में इसका लेप करते हैं। ध्वजभंग में इसका पतला लेप शिश्न पर करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—नाडीदौर्बल्य, आक्षेपक, अपस्मार, अपतन्त्रक, पक्षाघात आदि रोगों में प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—कास, कुकुरखांसी और श्वास में लाभकर है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरणार्थ तथा रजोरोध में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में प्रयुक्त होता है।

तापक्रम—शैत्य और अवसाद में दिया जाता है।

सात्मीकरण—अहिफेन-विष और वृश्चिक-विष में उपयोगी है।

मात्रा—२००–५०० ग्रा०।

अहित प्रभाव—अधिक मात्रा में लेने पर व्यग्रता, मुखशोष, भ्रम, रक्तपित्त, विस्फोट आदि पित्तप्रधान उपद्रव होते हैं।

निवारण—पुदीना, श्लेष्मातक और सोये का काढ़ा मधु मिला कर पिलावे। वमन होने के बाद अम्ल फल, आसव-अरिष्ट या गर्दभीदुग्ध पिलावे।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१५. गन्धमार्जारवीर्य

परिचय

नाम—सं०-गन्धमार्जारवीर्य; मलाबार-पुनुगु; अ०-जबाद; अं०-सिवेट (Civet)।

स्वरूप—यह गन्धमार्जार (पूतिघास-मुश्कबिल्ली) का शुक्र है। यह पीताभ श्वेत, मृदु, स्निग्ध और मधु के सदृश गाढ़ा होता है।

परीक्षा विधि—सुतली के सिरे पर लगा कर आग के पास रखने पर यदि पिघल जाय तो कृत्रिम और चिपका रहे तो असली समझना चाहिए।

रासायनिक संघटन—इसमें अमोनिया, वसा, राल तथा उड़नशील तैल होते हैं।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष **रस**—कटु, तिक्त
विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह लेखन, व्रणपाचन, दुर्गन्धनाशन, कण्डूघ्न एवं उत्तेजक है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह इन्द्रियबलप्रद, सौमनस्यजनन और उत्तेजक है।

पाचनसंस्थान—यह दीपन, अनुलोमन और शूलप्रशमन है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य है।

श्वसनसंस्थान—श्वासहर है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरण है। गर्भाशयोत्तेजक भी है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—शोथवेदनायुक्त विकारों में इसका मर्दन करते हैं। व्रण, कण्डू तथा अन्य चर्मरोगों में लगाते हैं। वाधिर्य में इसे बादाम के तेल में घोंट कर कान में डालते हैं। प्रतिश्याय, शिरःशूल, हृद्द्रव तथा श्वास में इसका नस्य देते हैं। कामोत्तेजना के लिए शिश्न पर लेप करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कदौर्बल्य, उन्माद, मूर्च्छा में इसका प्रयोग करते हैं।

पाचनसंस्थान—उदावर्त्त, उदरशूल में प्रयुक्त होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्तवहसंस्थान—हृद्दौर्बल्य में देते हैं।

श्वसनसंस्थान—श्वास में उपयोगी है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरणार्थ तथा कष्टप्रसव में दिया जाता है।

मात्रा—१–२ ग्रा०।

× × × ×

महामूषिकवृक्षशायिकावकुशपूतिघासवानरप्रभृतयः पर्णमृगाः।
मधुराः गुरवो वृष्याश्चक्षुष्याः शोषिणे हिताः।
सृष्टमूत्रपुरीषाश्च कासार्शःश्वासनाशनाः॥ (सु. सू. ४६)

पूतिघासो वृक्षबिडालः सुगन्धिवृषणः 'कर्पूरक' इति लोके। (डल्हण)
गन्धमार्जारवीर्यन्तु वीर्यकृत् कफवातहृत्।
कण्डूकुष्ठहरं नेत्र्यं सुगन्धं स्वेदगन्धनुत्॥ (भा. प्र.)

१६. कस्तूरी

परिचय

नाम—सं०—कस्तूरी, मृगनाभि, मृगमद, सहस्रभित्; हि०—कस्तूरी; अ०—मिस्क; फा०—मुश्क; अं०—मस्क (Musk)

स्वरूप—नर कस्तूरीमृग[१] (Moschus moschiferus) की नाभि के पास एक अंडाकार कोश होता है। इसके ऊपर सफेद बाल रहते हैं और बीच में एक छिद्र होता है। इस कोश के भीतर एक कृष्णवर्ण या रक्ताभ कृष्ण, दानेदार, उग्रग्रन्थि पदार्थ भरा रहता है। यही कस्तूरी है। १–२ वर्ष की आयु तक कस्तूरी श्वेत तरल के रूप में होती है किन्तु क्रमशः वह कृष्णाभ और ठोस हो जाती है।

जाति—भावमिश्र ने वर्ण और उत्पत्तिस्थान के भेद से तीन प्रकार की कस्तूरी बतलाई हैः—(१) कामरूपीय, (२) नैपाली और (३) काश्मीरी। कामरूपीय कस्तूरी कृष्णवर्ण और सर्वश्रेष्ठ होती है। नैपाली नीलवर्ण और मध्यम होती है। काश्मीरी कस्तूरी कपिलवर्ण और निकृष्ट मानी गई है।

उत्पत्तिस्थान—रूस, चीन, मध्य एशिया, तिब्बत, नेपाल, भूटान, आसाम, काश्मीर आदि हिमालयप्रदेश में ७–८ हजार फीट की ऊँचाई पर घने जंगलों में कस्तूरीमृग मिलता है। उसे मार कर नाभ्यंड से कस्तूरी प्राप्त की जाती है।

रासायनिक संघटन—इसमें अमोनिया, ओलीन, कोलेस्टरीन, वसा, मोम, जिलेटिनयुक्त द्रव्य, अल्ब्युमिनयुक्त पदार्थ तथा भस्म होती हैं। भस्म में पोटाशियम, सोडियम और कैल्शियम क्लोराइड होते हैं। तिर्यक् पातन से इसके द्वारा एक गाढ़ा वर्णरहित तैल प्राप्त होता है जिसे मस्कोन (Muskone) कहते हैं।

१, कस्तूरीमृग को प्राचीन संहिताओं में 'कराल' कहा गया है। इसकी व्याख्या करते हुए डल्हण लिखते हैं—'करालोऽधोनिष्क्रान्तदन्तो हिमवदादिपर्वतेषु 'कस्तूरीमृग' इति लोके। (सु. सू. ४६।५४)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

परीक्षा—जो कस्तूरी पिङ्गलाभ कृष्ण, सुगन्धि, जल में अविलेय हो तथा आग में रखने पर पूरा नहीं जले बल्कि उससे चमड़े की गन्ध आवे वह उत्तम मानी जाती है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण　　**रस**—तिक्त, कटु
विपाक—कटु　　**वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—दुर्गन्धनाशन और शीतप्रशमन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह नाडीबल्य, मस्तिष्कबल्य, आक्षेपहर तथा वातशामक है।

पाचनसंस्थान—दीपन और अनुलोमन है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न और श्वासहर है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरण है।

तापक्रम—ज्वरघ्न हैं।

सात्मीकरण—विषघ्न है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातज विकारों में प्रयुक्त होती है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—दुर्गन्ध, शैत्य और अवसाद में प्रयुक्त होती है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कदौर्बल्य, उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक, संन्यास, पक्षाघात तथा अन्य वातिकविकारों में अतीव लाभंकर है।

पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य और शूल में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—हृदौर्बल्य में दिया जाता है।

श्वसनसंस्थान—कास, कुकुरखाँसी, श्वास में देते हैं।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरणार्थ प्रयुक्त होता हैं।

तापक्रम—सन्निपात ज्वर में इसका प्रयोग अत्यन्त प्रसिद्ध है। इससे ज्वर शान्त होता है तथा मस्तिष्क और हृदय सुरक्षित रहते हैं।

सात्मीकरण—विषों में दिया जाता है।

मात्रा—६०-१२० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—कस्तूरीभैरव, कस्तूरीभूषण, मृगमदासव।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'कामरूपोद्भवा कृष्णा नैपाली 'नीलवर्णयुक्।
काश्मीरे कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता॥
कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत्। काश्मीरदेशसंभूता कस्तूरी ह्यधमा स्मृता।
कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः। कफवातविषच्छर्दिशीतदौर्गन्ध्यशोषहृत्॥'
(भा. प्र.)

'या गन्धं केतकीनां वहति भृशतरं वर्णतः पिंगलाभा।
स्वादे तिक्ता कटूष्णा लघु परितुलिता मर्दिता चिक्कणा स्यात्॥
दग्धा नो याति भस्म चिमचिमीकुरुते चर्मगन्धा हुताशे,
सा शुद्धा शोभनीया वरमृगतनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा॥'
'करतलजलमध्ये स्थापनीया महद्भिः पुनरपि यदवश्यं चिन्तनीयं मुहूर्त्तम्॥
यदि भवति च रक्तं तज्जलं पीतवर्णं न भवति मृगनाभिः कृत्रिमोऽयं विकारः॥ (कै. नि.)

१७. यकृत्

परिचय

नाम—सं०—यकृत्; अ०—कबिद; फा०—जिगर; अं०—लिवर (Liver)।

स्वरूप—यकृत् प्राणिशरीर का एक प्रमुख अंग है। आहार के पाचन, शर्करा के सात्मीकरण तथा रक्तनिर्माण में यह महत्त्वपूर्ण योग देता है।

गुणकर्म

यह यकृत् की क्रियाओं को उत्तेजित करता है। अतः यकृत् की क्रिया मन्द पड़ने से जो विकार ग्रहणी, पाण्डु आदि होते हैं उनमें प्राणियों के यकृत् का सेवन कराया जाता है। शंखिया और बिस्मथ के विषाक्त प्रभावों को दूर करने के लिए भी प्रयुक्त होता है। रक्तस्तम्भन होने से रक्तपित्त और रक्तार्श में लाभकर है। यकृद्दाल्युदर तथा जलोदर में भी प्रतिदिन २५० ग्रा० ताजा यकृत् खिलाने का विधान है। विशेषतः अजा के यकृत् का प्रयोग होता है। नक्तान्ध्य में गोधा तथा अजा के यकृत् का अञ्जन करते हैं।

मात्रा—चूर्ण—½–१ ग्रा०; तरलसार—५–१० मि० लि०।

विशिष्ट योग—यकृच्चूर्ण, यकृत्सत्वपानक (Extractus hepatis liquidum)।

× × × ×

'अतिनिःस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक्। यकृद्वा भक्षयेदाममामं पित्तसमायुतम्॥'
(सु. उ. ४५)

'हरेणुमगधाजास्थिमज्जैलाकृदन्वितम्। शकृद्रसेनाञ्जनं वा श्लेष्मोपहतदृष्टये॥'
विपाच्य गोधायकृदर्धपाटितं सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना।
निषेवितं तद्यकृदञ्जनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु॥
तथा, यकृच्छागभवं हुताशने विपाच्य सम्यङ् मगधासमन्वितम्।
प्रयोजितं पूर्ववदाश्वसंशयं जयेत् क्षपान्ध्यं सकृदञ्जनान्नृणाम्॥' (सु. उ. १७)
'सर्वप्राणिनां सर्वशरीरेभ्यः प्रधाना भवन्ति यकृत्प्रदेशवर्त्तिनस्तानाददीत। (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१८. प्लीहा

नाम—सं०–प्लीहा; अ०–तिल्ली; अं०–स्प्लीन (Spleen)।

प्लीहा का प्रयोग नक्तान्ध्य में करते हैं। यह भी यकृत् के समान रक्तनिर्माण का कार्य करता है। श्वेतकणों का निर्माण होने से यह शरीर को रोगों से बचाता भी है। अतः पाण्डु, क्षय, सन्निपातज्वर, विषमज्वर आदि में प्रयुक्त होता है। खटिक के सात्मीकरण में सहायक होने से यह यक्ष्मा में दिया जाता है। रक्तस्तम्भन होने से रक्तप्रदर में लाभकर है।

मात्रा—चूर्ण–¼–½ ग्रा०; तरलसत्त्व ½–१ मि० लि०।

विशिष्ट योग—प्लीहा, प्लीहाचूर्ण (Desiccated Spleen), प्लीहा सत्त्वपानक (Syrup haemolin)।

× × × ×

'प्लीहा यकृच्चाप्युपभक्षिते उभे प्रकल्प्य शूल्ये घृततैलसंयुते।
ते सार्षपस्नेहसमायुतेऽशनं नक्तान्ध्यमाश्वेव हतः प्रयोजिते॥' (सु. उ. १७)

१९. आमाशय

परिचय

यह प्राणियों के पाचनसंस्थान का प्रमुख अंग है।

नाम—सं०–आमाशय; अं०–स्टमक (Stomach)

गुणकर्म

इससे मुख्यतः मांसतत्त्व का पाचन होता है तथा रक्तनिर्माण में सहायता मिलती है। इससे एक ऐसा स्राव निकलता है जो अस्थि की लालमज्जा पर क्रिया कर रक्तकणों का निर्माण उचित रूप से करने में सहायक होता है। इसके अभाव में पाण्डुरोग हो जाता है। अतः घातक पाण्डु, ग्रहणी तथा गर्भावस्था की रक्ताल्पता आदि में इसका प्रयोग होता है।

मात्रा—५–१० ग्रा० चूर्ण।

विशिष्ट योग—आमाशयचूर्ण (Desiccated Stomach)।

२०. अग्न्याशय

परिचय

नाम—सं०अग्न्याशय; अं०–पेंक्रियाज (Pancreas)।

स्वरूप—यह पाचनसंस्थान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इससे एक बहिःस्राव निकलता है जो पित्त के साथ मिलकर आहार के पाचन में योग देता है तथा दूसरा अन्तःस्राव होता है जो यकृत् द्वारा निर्मित शर्करा की मात्रा को नियमित रखता है। इस अन्तःस्राव का नाम अंशलीन (Insulin) है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म

यह दीपन, पाचन होने से पाचनसंबन्धी विकारों तथा ग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य आदि में प्रयुक्त होता है। अंशुलीन का प्रयोग मधुमेह में होता है।

मात्रा—चूर्ण-$\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ ग्रा०, द्रवसत्त्व-$\frac{1}{2}$-१ मि० लि०।

विशिष्ट योग—अग्न्याशयचूर्ण (Pancreatin), अग्न्याशय-तरलसत्त्व (Liquor Pancreatis)।

× × × ×

२१. निःस्रोत या अन्तःस्रवा ग्रन्थियाँ

(Ductless or Endocrine glands)

शरीर में कुछ ग्रंथियाँ ऐसी भी हैं जिनका स्राव बाहर प्रत्यक्ष न होकर भीतर ही भीतर रक्त में मिलकर शरीर के अंगों पर कार्य करता है। इन्हें निःस्रोत ग्रन्थियाँ कहते है। अवटु, उपावटु, पोषणक, बालग्रैवेयक तथा अधिवृक्क ग्रन्थियाँ ऐसी ही हैं। ये विशेषतः सात्मीकरण क्रियाओं से संबन्ध रखती हैं और शरीर के विकास में विभिन्न रूप से सहायक होती हैं। आधुनिक चिकित्सा में इन ग्रन्थियों का अत्यधिक महत्त्व है और विभिन्न रोगों में इनका प्रयोग किया जाता है।

(क) अवटु ग्रन्थि (Thyroid gland)

परिचय

यह ग्रन्थि अवटुतरुणास्थि के भीतर ग्रीवा में रहती है।

स्वरूप—इसका चूर्ण पीताभ श्वेतवर्ण होता है। इसकी गन्ध और स्वाद मांस के समान होता है।

रासायनिक संघटन—इसमें आयोडिन का अंश अधिक होता है। मनुष्य की ग्रन्थि में सामान्यतः १० मिलीग्राम आयोडिन होता है।

गुणकर्म

नाडीसंस्थान—यह नाडीसंस्थान को उत्तेजित करता है, फलतः इसके अति प्रयोग से कम्प, व्यग्रता, अनिद्रा आदि उपद्रव होते हैं।

पाचनसंस्थान—यह अग्नि तथा पाचनशक्ति को बढ़ाता है। अनुलोमन है।

रक्तवहसंस्थान—अधिक काल तक प्रयोग करने से नाडी की तीव्रता, हृद्द्रव; हृत्स्पन्दन की दुर्बलता आदि लक्षण होते हैं। रक्तभार कम हो जाता है तथा श्वेतकणों की संख्या बढ़ती है। शोथहर तथा रक्तशोधक है।

प्रजननसंस्थान—गर्भाशय को शक्ति प्रदान करता है तथा स्तन्यजनन है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

त्वचा—त्वग्दोषहर तथा केश्य है।

तापक्रम—यह तापक्रम को बढ़ाता है।

सात्मीकरण—यह मांसतत्त्व, स्नेह तथा शाकतत्त्व के सात्मीकरण की प्रक्रिया को उत्तेजित करता है। विशेषतः इससे मांसतत्त्व का उत्सर्ग अधिक होता है और शरीर की स्थूलता और भार कम होता है। यह अस्थिसन्धानीय भी है।

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग मुख्यतः मूत्र द्वारा होता है।

प्रयोग

अवटु ग्रन्थि का प्रयोग उसके क्षयजन्य विकारों श्लैष्मिकशोथ (Myxoedema), अस्थिवक्रता (Cretinism) क्षादि में करते हैं।

नाडीसंस्थान—सहज मूढता, रजःक्षयज मनोविभ्रम तथा शिरःशूल में इसका प्रयोग करते हैं।

पाचनसंस्थान—पाचनसम्बन्धी विकार तथा जीर्णविबन्ध में उपयोगी है।

रक्तवहसंस्थान—हृच्छूल, सन्धिवात, विविध रक्तविकार, गलगण्ड तथा शोथ में प्रयुक्त होता है।

प्रजननसंस्थान—आसन्न गर्भस्राव में तथा स्तन्यवृद्धयर्थं में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—बालकों के शय्यामूत्र में उपयोगी है।

त्वचा—विचर्चिका, पामा, खालित्य आदि में लाभकर है।

सात्मीकरण—क्षय तथा बच्चों का विकास समुचित न होने पर इसका प्रयोग करते हैं। मेदोरोग में भी देते हैं। अस्थिभग्न में इससे लाभ होता है।

मात्रा—३०–२४० मि० ग्रा० (चूर्ण), (अधिक से अधिक ३६० मि० ग्रा० प्रतिदिन)।

विशिष्ट योग—अवटुचूर्ण (Desiccated Thyroid), तरलसत्त्व (Liguor Thyroid)–५–१५ बूंद।

तीव्र विषाक्त लक्षण—इसके अतियोग से तीव्र नाड़ी, ज्वर, शिरःशूल, मूर्च्छा, अतिसार, व्यग्रता, वेदना, कण्डू और कभी-कभी प्रलाप ये लक्षण होते हैं।

जीर्ण विषाक्त लक्षण—शरीर भार की कमी, पेशीक्षय, केशपतन, नेत्रविस्फार और अन्त में क्षय से मृत्यु हो जाती है।

(ख) उपावटु ग्रन्थि (Parathyroid glands)

परिचय

ये संख्या में चार और अवटुग्रन्थि में संलग्न रहती हैं। इनका कार्य शरीर में खटिक का सात्मीकरण, शारीर विषों का निराकरण तथा मूत्र में स्फुरक के उत्सर्ग को बढ़ाना है। खटिक के समुचित सात्मीकरण से नाडीसंस्थान पर शामक प्रभाव

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होता है। इस ग्रन्थि के निकाल देने पर नाडीसंस्थान की उत्तेजनीयता बढ़ जाती है और कम्पवात (Tetany) नामक रोग हो जाता है।

गुणकर्म

नाडीसंस्थान—यह आक्षेपशामक है।

पाचनसंस्थान—यह उदरस्थ अङ्गों में रक्तसंवहन बढ़ाता है तथा आमाशय, अन्त्र की गति को भी बढ़ा देता है।

रक्तवहसंस्थान—इससे नाडी की गति कम होती है। रक्तशोधक है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

सात्मीकरण—खटिक के सात्मीकरण में सहायता देता है।

प्रयोग

नाडीसंस्थान—कम्पवात, आक्षेपक, अपतन्त्रक आदि आक्षेपप्रधान वातविकारों में प्रयुक्त होता है।

पाचनसंस्थान—आमाशयिक तथा ग्रहणी के व्रणों में इसका प्रयोग लाभकर है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तविकारों में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात में प्रयुक्त होता है।

सात्मीकरण—रक्त में खटिक की कमी होने से इसका प्रयोग करते हैं।

मात्रा—चूर्ण–३–६ मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—उपावटु चूर्ण (Desiccated Parathyroid gland)।

× × × ×

(ग) बालग्रैवेयक (Isthmus)

गुणकर्म और प्रयोग

इसका प्रयोग बच्चों के पोषण सम्बन्धी विकारों में करते हैं।

मात्रा—१–२ रत्ती (वटी के रूप में)।

(घ) पोषणक ग्रन्थि (Pituitary gland)

यह ग्रंथि मस्तिष्क के तलदेश में स्थित है। इसके तीन भाग हैं—(१) अग्रिम पिण्ड (Anteior lobe) (२) मध्यम पिंड (Pars intermedia) तथा (३) पश्चिम पिण्ड (Posterior lobe)।

१. पश्चिम पिण्ड

रासायनिक संघटन—इसमें मुख्यतः दो तत्त्व होते हैं:—१. ऑक्सिटॉसिन (Oxytocin) या पिटॉसिन (Pitocin)-यह गर्भाशय संकोचक है। २. वेजोप्रेसिन (Vasopressin) या पिट्रेसिन (Pitressin)-यह रक्तभार को बढ़ाता है। इसके अन्तःस्राव का नाम 'पिट्वीटरीन' (Pituitarin) है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संस्थानिक कर्म

पाचनसंस्थान—यह लाला, आमाशयिक, अग्न्याशयिक तथा आंत्रिक स्रावों को कम करता है। अन्त्र की परिसरणगति को भी बढ़ाता है।

रक्तवहसंस्थान—यह रक्तभार को वढ़ाता है तथा हृदय को मन्द करता है।

प्रजननसंस्थान—यह तीव्र गर्भाशयसंकोचक है। इसकी क्रिया अर्गट की अपेक्षा शीघ्र किन्तु कम समय तक रहने वाली होती है। लगभग २½ मिनट में इसकी क्रिया प्रारंभ होती है और १ घंटे से कम रहती है। गर्भाशय की पेशियों को संकुचित करने से यह क्रिया होती है। यह स्तन्यजनन भी है। स्तन्य का परिमाण इससे नहीं बढ़ता किन्तु स्तन्यग्रन्थियों के संकोच से स्तन्य के निस्सरण में सहायता मिलती है।

मूत्रवहसंस्थान—यह पहले मूत्र को बढ़ाता है किन्तु शीघ्र ही मूत्र का परिमाण कम हो जाता है जो चिरस्थायी होता है। यह मूत्र में क्लोराइड का उत्सर्ग वढ़ाता है।

शोषण—त्वचा से इसका शोषण नहीं होता। मुख के द्वारा देने पर भी यह आमाशयिक पाचक रसों द्वारा नष्ट हो जाता है। गुदा द्वारा तथा नस्य द्वारा देने से इसका प्रभाव स्पष्ट होता है।

प्रयोग

पाचनसंस्थान—आध्मान, आन्त्रिक पक्षाघात, आमाशयिक व्रण तथा अम्लपित्त में दिया जाता है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तभारवर्धक होने के कारण यह स्तब्धता (Shock) के प्रतिषेध और निवारण में विशेषतः शल्यकर्म में संज्ञानाश के समय प्रयुक्त होता है।

प्रजननसंस्थान—यह कष्टप्रसव में गर्भाशय के संकोच को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त होता है। प्रसवोत्तर रक्तस्राव में भी दिया जाता है।

मूत्रवहसंस्थान—बहुमूत्र में प्रयुक्त होता है।

सात्मीकरण—मेदोरोग में देते हैं। इसके अतिरिक्त, बहिर्नेत्रिक गलगण्ड (Exophthalmic goitre), दानवास्थि (Gigantism) आदि रोगों में भी प्रयुक्त होता है।

मात्रा—२-५ युनिट (सत्त्व); चूर्ण-६०-१२० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—पोषणकसत्त्व (Pituitary extract) चूर्ण (Desiccated pituitary)।

२. अग्रिम पिण्ड (Anteior lobe)

इसमें दो प्रकार के कोषाणु होते हैं। एक प्रकार के कोषाणुओं (Chromophobe Cells) से यौन लक्षणों (मूंछ, दाढ़ी आदि) के विकसित होने में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सहायता मिलती है और दूसरे प्रकार के कोषाणुओं (Chromophyl Cells) से शरीरवर्धक स्राव तथा यौन क्रियाओं के उत्तेजक स्राव निकलते हैं। अवटु, उपावटु तथा अधिवृक्क ग्रन्थियों को भी इससे उत्तेजना मिलती है।

प्रयोग

प्रजननसंस्थान—वन्ध्यात्व, यौन लक्षणों का समय पर तथा उचित विकास न होना, रजोरोध, कष्टार्त्तव आदि लक्षणों में अग्रिम पिण्ड के यौनस्राव (जो ऐनट्वीट्रीन–Antuitrin के नाम से मिलता है) का प्रयोग करते हैं। अधिक मात्रा में यह रक्तप्रदर, आसन्न गर्भस्राव तथा रजःक्षयज प्रदर में प्रयुक्त होता है।

सात्मीकरण—मेदोरोग, शिथिलता, दौर्बल्य तथा क्लैब्य में यह प्रयुक्त होता है।

मात्रा—शुष्कग्रन्थि (चूर्ण)–½–१ ग्रा०।

विशिष्ट योग—चूर्ण, सत्त्व।

(च) अधिवृक्क ग्रन्थि (Suprarenal or Adrenal gland)

परिचय

यह वृक्कों के ऊपर रहने वाली ग्रन्थि है। इसके दो भाग होते हैं। बहिर्भाग से एक अन्तःस्राव निकलता है जो यौन तथा मानसिक विकास में योग देता है। अंतःभाग से जो स्राव निकलता है उसका नाम अद्रिनिलीन (Adrenaline) है। इसका स्वतन्त्र नाडीमण्डल से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह साम्वेदनिक नाडीमण्डल को उत्तेजित करता है। फलतः समस्त शरीर पर कुछ न कुछ कार्य करता है।

१. अन्तःभाग

गुणकर्म

बाह्य—यह रक्तरोधक है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—यह लालास्राव को बढ़ाता है, आमाशय और अन्त्र की परिसरणगति को बढ़ाता है किन्तु बृहदन्त्र एवं गुदा की संकोचक पेशियों को संकुचित करता है। यकृत् की शर्कराजनन क्रिया असंतुलित हो जाने से रक्त तथा धातु में शर्करा की मात्रा अधिक हो जाती है और मूत्र में भी उसका निर्गम होने लगता है।

रक्तवहसंस्थान—हृदय पहले तीव्र, फिर मन्द और अन्त में पुनः तीव्र हो जाता है। सूक्ष्मधमनियों के संकोच से रक्तभार बढ़ जाता है।

श्वसनसंस्थान—यह श्वासनलिकीय पेशियों को प्रसारित करने के कारण श्वासहर हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रजननसंस्थान—यह गर्भाशय को संकुचित करता है तथा गर्भाशयगत रक्तवह स्रोतों को भी संकुचित करता है।

मूत्रवहसंस्थान—वृक्कगत रक्तवाहिनियों के संकुचित होने से पहले तो मूत्र कम होता है किन्तु बाद में रक्तभार बढ़ने तथा रक्तवाहिनियों के पुनः प्रसारित होने के कारण मूत्र अधिक आने लगता है तथा उसमें शर्करा भी आती है।

सात्मीकरण—यह शरीर की सात्मीकरण क्रिया को २० प्रतिशत बढ़ा देता है।

नेत्र—नेत्र में इसका द्रव डालने से नेत्रगोलक बाहर की ओर निकल आते हैं। कनीनिका भी विस्फारित हो जाती है।

विषाक्त लक्षण—हृदयप्रसार, शोथ, हृद्द्रव, श्वासकष्ट, रक्तभाराधिक्य, कम्प, हृल्लास, वमन, भ्रम तथा अवसाद ये लक्षण होते हैं।

प्रयोग

बाह्य—यह विविध रक्तस्राव को रोकने के लिए दिया जाता है।

आभ्यन्तर-रक्तवहसंस्थान—यह हृदयावसाद तथा स्तब्धता को दूर करने के लिए विसूचिका आदि में प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—हिक्का और श्वास में देते हैं।

प्रजननसंस्थान—यह रक्तप्रदर में प्रयुक्त होता है।

मूत्रवहसंस्थान—इन्सुलीन के प्रयोग से उत्पन्न शर्करालपता में यह प्रयुक्त होता है।

प्रयोगविधि—यह मुख के द्वारा तथा अधस्त्वक् या अन्तःसिरीय निक्षेप से दिया जाता है। आकस्मिक हृदयावरोध में अन्तर्हार्दिक भी देते हैं।

प्रयोगनिषेध—यह धमनीकाठिन्य, फुफ्फुसीय या मस्तिष्कगत रक्तस्राव तथा फुफ्फुसीय शोथ में नहीं देना चाहिए।

मात्रा—चूर्ण-$\frac{1}{8}$–$1\frac{1}{2}$ ग्रा०; सत्त्व (Adrenaline) १०–२० बूंद।

विशिष्ट योग—चूर्ण (Desiccated Suprarenal gland), सत्त्व (Extract)।

× × × ×

२. बहिर्भाग

गुणकर्म

जीवन की सात्मीकरण-क्रियाओं को सन्तुलित रखना इसका प्रधान कर्म है। इसके निकाल देने पर शिथिलता, क्षय, रक्तभार में कमी, त्वचा में नीलिमा, वमन तथा अन्त में मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त, इसके अभाव में शरीर की सात्मीकरणक्रिया २५ प्रतिशत कम हो जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बहिर्भाग का सम्बन्ध यौन ग्रन्थियों से भी है। इसकी वृद्धि से स्त्रीप्रजननग्रन्थियों तथा स्तन्यग्रन्थियों का विकास रुक जाता है।

प्रयोग

इसका प्रयोग ऐडिसन के रोग (Addison's disease) में होता है। इसके अतिरिक्त, नाडीदौर्बल्य, रक्तभाराल्पता, रक्तगतशर्करा का क्षय तथा ताप की कमी को दूर करने के लिए देते हैं।

(छ) बीजकोश (Ovary)

बीजकोश शरीर में अनेक महत्वपूर्ण कार्य करता है। इसके तीन प्रमुख अन्तः-स्राव होते हैं :—१. ईस्ट्रीन (Oestrin), २ प्रोजेस्टिन (Progestin)–यह बीज-कोशस्थ पीतबिन्दु का अन्तःस्राव है। ३. आभ्यन्तरिक स्राव (Interstitial hormone) यह पोषणक ग्रन्थि के पश्चिम पिंड के स्राव को उत्तेजित करता है।

१. ईस्ट्रीन (बीजकोशज स्राव)

परिचय

यह बीजकोश, पीतबिन्दु, अपरा, जरायु, गर्भोदक तथा गर्भिणी स्त्रियों के मूत्र में उपस्थित होता है।

गुणकर्म

यह स्त्रियों के यौन लक्षणों के विकास में योग देता है। इसके कारण मासिक आर्त्तवस्राव नियमित रूप से होता है तथा गर्भाधान होने पर गर्भ का पोषण और स्थैर्य होता है।

प्रयोग

इसका प्रयोग रजोरोध, अनियमित आर्त्तव, रजःक्षयज उपद्रव, गर्भिणीवमन; बन्ध्यात्व तथा यौन लक्षणों के पूर्ण विकास न होने पर किया जाता है। मुख, सूचीवेध तथा योनिवर्त्ति के द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—बीजकोशचूर्ण $\frac{1}{2}$–५ ग्रा०।

विशिष्ट योग—बीजकोशचूर्ण (Desiccated ovary)।

२. प्रोजेस्टिन (पीतबिन्दुज स्राव)

कर्म

इसका कर्म ईस्ट्रिन के विपरीत है। यह गर्भाशय के संकोच को रोकता है, बीजाणुओं को स्थिर करने में योग देता है तथा गर्भावस्था में स्तन्यग्रन्थियों की वृद्धि में सहायक होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग

गर्भस्राव, काकवन्ध्या आदि व्यापदों में इसका प्रयोग होता है।

मात्रा—$\frac{१}{२}$–५ ग्रा०।

विशिष्ट योग—चूर्ण।

(ज) स्तन्यग्रन्थि (Mammary glands)

प्रयोग

यह रक्तप्रदर, रजःक्षयज रक्तस्राव तथा स्तन्याल्पता में प्रयुक्त होती है।

मात्रा—१–२$\frac{१}{२}$ ग्रा०।

विशिष्ट योग—चूर्ण।

(झ) अपरा (Placenta)

इसका प्रयोग प्रोजेस्टिन के समान तथा स्तन्यवृद्धचर्थ करते हैं।

(ट) पौरुषग्रन्थि (Prostate-glands)

यह नाडीदौर्बल्य में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—१२०–२४० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—चूर्ण।

२२. मस्तिष्क और सुषुम्ना (Brain & Spinal Cord)

बाह्य या आभ्यन्तरिक रक्त-स्राव, मस्तिष्कदौर्बल्य, अपस्मार तथा वातव्याधि में इनके तरलसत्व का प्रयोग करते हैं। सूचीवेध द्वारा भी दिया जाता है।

मात्रा—३–६ ग्रा०।

२३. दन्त (Teeth)

कर्म

यह लेखन है और विशेषतः इसका बाह्य प्रयोग होता है।

प्रयोग

गोदन्त अग्निकर्म के उपकरण में आता है। कुत्ता, गौ, अश्व, वराह, उष्ट्र के दांतो का लेप कुष्ठ में करते हैं। शूकर की दंष्ट्रा का लेप नीलिका में उपयोगी है। हस्तिदन्त की भस्म रोमसंजनन है। गोदन्तमसी लेखयाञ्जन के रूप में पित्त और कफ से विदग्ध दृष्टि में प्रयुक्त होता है।

× × × ×

'हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यं चैव रसाञ्जनम् । रोमाण्येतेन जायन्ते लेपात् पाणितलेष्वपि ॥'

(सु. चि. १.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'एडगजः सविडंगो मूलाम्यारग्वधस्य कुष्ठानाम् ।
उद्दालनं श्वदन्ता गोश्ववराहोष्ट्रदन्ताश्च ॥' (च; चि. ७)
'लोहचूर्णानि सर्वाणि धातवो लवणानि च ।
रत्नानि दन्ताः शृंगाणि गणश्चाप्यवसादनः ॥' (च. उ. १२)
'गैरिकं सैन्धवं कृष्णा गोदन्तस्य मसी तथा । चत्वार एते योगाः स्युरुभयोरञ्जने हिताः ॥'
(सु. उ. १७)

२४. नख

गुणकर्म

प्राणियों का नख लेखन और विषघ्न है ।

प्रयोग

उन्माद में उलूक, मार्जार, शृगाल तथा बस्त के नख का सेक, अञ्जन, धूप और नस्य विहित है । अपस्मार में हस्तिनख की भस्म का नस्य देते हैं तथा कुक्कुरनख का प्रदेह और धूपन करते हैं । स्कन्दापस्मार में हस्तिनख का धूपन उपयोगी है । व्याघ्र का नख तण्डुलोदक से पीस कर समस्त विषों में देते हैं ।

× × × ×

'शल्लकोलूकमार्जारजम्बूकवृकबस्तजैः ।......नखैश्चर्मभिरेव च ॥
सेकाञ्जनं प्रधमनं नस्यं धूमं च कारयेत् ।' (च. चि. ९)
'शुनः स्कन्धास्थिनखरान् पशुर्क्काश्चेति पेषयेत् । बस्तमूत्रेण पुष्यर्क्षे प्रदेहः स्यात् सधूपनः ॥
(च. चि. १०)
'शार्दूलस्य नखश्चैव सुपिष्टं तण्डुलाम्बुना । हन्ति सर्वविषाण्येव वज्रिवज्रमिवासुरान् ॥
(च. चि. २३)

२५. खुर

गुणकर्म–प्रयोग

ग्राम्य—आनूप पशुओं के खुर की भस्म का लेप व्रणों में पाण्डुकरणार्थ करतेहैं । खुर की भस्म श्वास और हिक्का में भी देते हैं । रोमसंजनन के लिए भी प्रयुक्त होता है ।

× × × ×

'एकद्विशफश्रृङ्गाणि चर्मास्थीनि खुरांस्तथा । सर्वाण्येकैकशो वापि दग्ध्वा क्षौद्रघृतान्वितम् ॥
चूर्णं लिहन् जयेत् कासं हिक्कां श्वासं च दारुणम् । (च. चि. १७)
'ग्राम्यानूपशफान् दग्धान् सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । तैलेनानेन संसृष्टं शुक्लमालेपयेद् व्रणम् ॥'
(सु. चि. १)

२६. शृङ्ग

गुणकर्म–प्रयोग

पशुओं के शृङ्ग की भस्म; कास, श्वास और हिक्का में मधु-घृत के साथ देते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हिक्का, श्वास में धूम्रपान भी करते हैं। मृगश्रृङ्ग को घिस कर फुफ्फुसशोथ; पार्श्वशूल तथा अन्य शोथवेदनायुक्त विकारों में लगाते हैं। इसका आभ्यन्तर प्रयोग भस्म के रूप में हृदयशूल, ग्रन्थिशोथ; वातव्याधि, कास, श्वास, क्षय तथा पिष्टमेह में किया जाता है। लेख्याञ्जन के रूप में इसका नेत्र में भी प्रयोग होता है। रोमसञ्जनन के लिए भी प्रयुक्त होता है।

मात्रा—मृगश्रृङ्गभस्म २–८ ग्रा० (मधु या घी के साथ)।

× × ×

'एकद्विशफश्रृङ्गाणि........। सर्वाण्येकैकशो वापि दग्ध्वा क्षौद्रघृतान्वितम् ॥
चूर्णं लिहन् जयेत् कासं हिक्कां श्वासं च दारुणम्।' (च. चि. १७)
'युञ्ज्याद् धूमं शालनिर्यासजातं नैपालं वा गोविषाणोद्भवं वा।' (सु. उ. ५०)

२७. स्नायु

गुणकर्म-प्रयोग

गौ आदि पशुओं की स्नायु का धूम्रपान श्वासरोग में करते हैं।

× × × ×

'मधूच्छिष्टं सार्जरसं घृतं मल्लकसंपुटे। कृत्वा धूमं पिबेच्छृङ्गं वालं वा स्नायु वा गवाम् ॥'
(च. चि. १७)

२८. चर्म

गुणकर्म-प्रयोग

स्वेदनीय रोगों में सरोम-चर्म से उपनाह करते हैं। उन्मादाधिकार के लशुनाद्यघृत में गोचर्म-मसी का योग है। उलूक, मार्जार, श्रृगाल आदि के चर्म का सेक; अञ्जन, धूम, नस्य और प्रधमन उन्माद में किया जाता है। विडालचर्म का धूपन अर्श में करते हैं। श्वित्र में सिंह या हाथी का चर्म लेप करते हैं। व्रणों में रोमसञ्जनार्थ भी पशुओं के चर्म का लेप करते हैं। विषमज्वर में बकरी और भेड़ के चर्म का धूपन किया जाता है। पशुओं के चर्म की भस्म श्वासरोग में देते हैं।

× × × ×

'चर्मभिश्चोपनद्धव्यः सलोमभिरपूतिभिः।
उष्णवीर्यैरलाभे तु कौशेयाविकशाटकैः ॥' (च. सू. १४)
'शल्लकोलूकमार्जारजम्बूकवृकबस्तजैः। मूत्रपित्तशकृल्लोमनखचर्मभिरेव च ॥
सेकाञ्जनं प्रधमनं नस्यं धूमं च कारयेत्।' (च. चि. ९)
'नृकेशाः सर्पनिर्मोको वृषदंशस्य चर्म च।
अर्कमूलं शमीपत्रमर्शोघ्नो धूपनं हितम् ॥' (च. चि. १४)
'एकद्विशफश्रृङ्गाणि चर्मास्थीनि खुरास्तथा। सर्वाण्येकैकशो वापि दग्ध्वा क्षौद्रघृतान्वितम्॥
चूर्णं लिहन् जयेत् कासं हिक्कां श्वासं च दारुणम्।' (च. चि. १७)
'चतुष्पदानां त्वग्रोमखुरश्रृङ्गास्थिभस्मना।
तलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥' (सु. चि. १)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'द्वैपं वाघं चर्म मातंगजं वा भिन्ने स्फोटे तैलयुक्तं प्रलेपः ।' (सू. चि. ९)
'अजाव्योश्चर्मरोमाणि वचा कुष्ठं पलंकषा । निम्बपत्रं मधुयुतं धूपनं तस्य दापयेत् ॥
(सु. उ. १९)

२९. केश-रोम

गुणकर्म-प्रयोग

उलूक, मार्जार, शृगाल, बस्त आदि का रोम उन्माद में सेक, अञ्जन, नस्य, धूम और प्रधमन के रूप में व्यवहृत होता है। गोपुच्छलोम तथा बस्तलोम को जला कर अपस्मार में नस्य देते हैं। मनुष्य के केशों से अर्श में धूपन करते हैं। गोरोम का धूमपान श्वास में लाभकर है। उष्ट्र, अजा, भेंड़, तथा गौ के रोम का धूपन स्कन्दग्रह में और वृषभरोम तथा नृकेश का धूपन स्कन्दापस्मार में करते हैं। अजा और भेंड़ के रोम का धूपन विषमज्वर में किया जाता है। पशुओं के चर्म, रोम, खुर, शृङ्ग और अस्थि की भस्म तैल के साथ रोमसंजननार्थं लगाते हैं। मेष, गौ आदि के रोम को अन्तर्धूम भस्म मधु-घृत के साथ हिक्का में प्रयुक्त होती है। भेंड़ की ऊन का प्रयोग स्वेदन के लिए करते हैं तथा उसकी अन्तर्धूम भस्म कष्टार्त्तव में लाभकर होती है।

× × × ×

'जलौकः शकृता तद्वद् वाघैर्वा बस्तलोमभिः । खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथा गोपुच्छलोमभिः ॥
कपिलानां गवां मूत्रं नावनं परमं हितम् ।' (च. चि. १०)
'उष्ट्राजाविगवां चैव रोमाण्युद्धूपनं शिशोः ।' (सु. उ. २८)
'तद्वच्छ्वाविन्मेषगोशल्यकानां रोमाण्यन्तर्धूमदग्धानि चात्र ।
मध्वाज्याक्तं बर्हिपत्रप्रसूतमेवं भस्मौदुम्बरं तैवकं वा ॥
..................हन्ति लीढ्वाशु हिक्काम् ।' (सु. उ. ५०)
'चतुष्पदानां त्वग्रोमखुरशृङ्गास्थिभस्मना ।
तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥' (सु. चि. १)

(छ) विकार

३०. गोरोचन

परिचय

नाम—सं–गोरोचना, रोचना; हि०–गोरोचन; अ०–हज़रुल्बकर; फा०–संगगाव; उ०–गावरोहन।

स्वरूप—यह गाय या बैल के पित्ताशय में संचित पित्त या उससे उत्पन्न अश्मरी है। इसका वर्ण धूसरपीत होता है। कुछ सुगंध भी होती है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष
रस—तिक्त
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह लेखन और शोथहर है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह मेध्य और संज्ञाप्रबोधन है।

पाचनसंस्थान—यह दीपन, अनुलोमन तथा पित्तसारक है।

रक्तवहसंस्थान—शोथहर है।

प्रजननसंस्थान—आर्त्तवजनन है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल और अश्मरीनाशन है।

सात्मीकरण—कटुपौष्टिक है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातविकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—श्वित्र, नीलिमा आदि तथा अर्श में लेप करते हैं। नेत्ररोगों में इसका अञ्जन करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—२ ग्रा० गोरोचन अर्क गुलाब में घिस कर प्रतिदिन पिलाने से अपस्मार में लाभ होता है और उसका आक्रमण पुनः नहीं होता।

पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, यकृद्विकार, पाण्डु, कामला तथा जीर्ण विबन्ध में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—शोथ और गलगण्ड में प्रयुक्त होता है।

प्रजननसंस्थान—रजःकष्ट एवं रजोरोध में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी में प्रयुक्त होता है।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, बालशोथ में दिया जाता है।

मात्रा—२–६ ग्रा०।

विशिष्ट योग—बालार्क रस।

× × × ×

'कासीसतुत्थे च ततोऽत्र देये चूर्णीकृते रोचनया समेते।' (सु. उ. १९)

३१. फादजहर हैवानी

परिचय

नाम—अ०–फादजहर हैवानी (प्राणिज प्रतिविष); फा०–बादजहर हैवानी; अं०–बेंझोर (Bezoar)।

स्वरूप—यह पहाड़ी हरिण, बकरी, नीलगाय, ऊँट आदि पशुओं के आमाशय या अंत्र में होने वाली एक पथरी है। यह गोल या लम्बगोल, धूसर मटमैले रंग का, पर्त्तदार होता है। वजन १ से १५ मि० लि० तक होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्तिस्थान—यह तैलंगाना, मैसूर, अरब और ईरान में अधिक पाया जाता है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष | **रस**—कटु, तिक्त
विपाक—कटु | **वीर्य**—उष्ण

कर्म

बाह्य—शोथहर और विषघ्न है।
आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कबल्य है।
पाचनसंस्थान—यकृद्बल्य है।
रक्तवहसंस्थान—हृद्य है।
प्रजननसंस्थान—वाजीकरण है।
तापक्रम—शीतप्रशमन है।
सात्मीकरण—बल्य और विषघ्न है।

प्रयोग

बाह्य—शोथ, प्लेग की ग्रंथि तथा जांगम विषों में इसे लगाते हैं।
आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कदौर्बल्य में देते हैं।
पाचनसंस्थान—यकृद्विकार में उपयोगी है।
रक्तवहसंस्थान—हृद्दौर्बल्य में लाभकर है।
प्रजननसंस्थान—क्लैब्य में देते हैं।
तापक्रम—प्लेग और विसूचिका में प्रयुक्त होता है।
सात्मीकरण—दौर्बल्य और विषों में देते हैं।
मात्रा—१-२ ग्रा०।
अहित प्रभाव—अतिमात्रा में देने से दाह और रक्तपित्त होते हैं।
निवारण—पित्तशामक द्रव्य देना चाहिए।

३२. सीरम और वैक्सीन

आधुनिक चिकित्सा में रोग के जीवाणुओं, उनके विषों तथा उनसे ग्रस्त प्राणी की रक्तलसिका का प्रयोग विशिष्ट रोगों के प्रतिषेध और निराकरण के लिए किया जाता है। यथा मसूरिका, जलसंत्रास आदि वैक्सीन और डिफ्थीरिया, टिटेनस आदि का सीरम। इनके विस्तृत विवरण के लिए आधुनिक आकरग्रन्थों का अवलोकन करें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तृतीय अध्याय

अण्डज द्रव्य

१. पित्त

अण्डज प्राणियों में मयूर, कच्छप तथा मत्स्य के पित्त का प्रयोग चिकित्सा में अधिक होता है। इनका वर्णन जरायुज प्राणियों के पित्त के प्रकरण में किया गया है, वहीं देखें।

२. धातु

रक्त, मांस आदि धातुओं का भी सामान्य वर्णन प्रसंगतः जरायुज द्रव्यों के साथ कर दिया गया है।

३. मल

मलों में पुरीष का प्रयोग अधिक होता है। इनमें भी कपोत, कुक्कुट, पारावत, गृध्र, काक और उलूक के पुरीष का प्रयोग अधिक मिलता है। इनका वर्णन भी जरायुज प्राणियों के मल के प्रकरण में किया गया है।

४. पिच्छ

अण्डज प्राणियों के पिच्छ (बर्ह-पंख) का प्रयोग औषध में होता है। शुकबर्ह का प्रयोग प्रयोगिकी धूमवर्ति में है। गृध्र और काक के पक्ष का धूपन अपस्मार में किया जाता है। मयूरपिच्छ की भस्म हिक्का में लाभकर है। मयूर और कुक्कुट के पंख का धूम वृश्चिकविष में देते हैं।

× × × ×

'नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः। तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद् भिषक्॥'

(च. चि. १०)

'शिखिकुक्कुटबर्हाणि सैन्धवं तैलसर्पिषी। धूमं हन्ति प्रयुक्तोऽयं शीघ्रं वृश्चिकजं विषम्॥'

(सु. क. ८)

'मध्वाज्याक्तं बर्हिपत्रप्रसूतमेवं भस्म······।······हन्ति लीढ्वाशु हिक्काम्॥' (सु. उ. ५०)

५. अण्ड

पक्षियों के अंडे आहार और औषध में प्रयुक्त होते हैं। संप्रति विशेषतः कुक्कुटाण्ड का प्रयोग देखा जाता है।

स्वरूप—अण्डा एक प्रकार का आमगर्भ है। इसके तीन भाग होते हैं:—(१) पीत भाग (जर्दी), (२) श्वेतभाग (सफेदी) और (३) कपाल या त्वक्

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(छिलका)। श्वेतभाग प्रत्येक अंडे में १५ या० के लगभग होता है। ये तीनों भाग औषध में प्रयुक्त होते हैं ?

रासायनिक संघटन—(Ovi albumen) में अलब्युमिन १५–१८ प्रतिशत, श्लेष्मा, वसा, शर्करा, सत्वद्रव्य, लेसिथिन और भस्म जिसमें क्षारीय लवण एवं जल ८२–८५% होते हैं। यह अलब्युमिन ईथर से जमता है। पीतभाग (Yolk–ovi vitellus) में जल ५०% व्हिटेलिन १६% अकार्बनिक लवण १.५%, तैलबिन्दु, वसा ३०%, गंधक तथा फास्फोरस होते हैं। यह ताप तथा मद्यसार से जमता है। कपालभाग (Ovi testa) में कैलशियम कार्बोनेट, फास्फेट, गंधक, लौह, कार्बनिक द्रव्य १–५% तथा पोटाशियम, मैगनिशियम और कैल्शियम के क्लोराइड, आयोडाइड, सलफेट और फास्फेट होते हैं।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध **रस**—मधुर

विपाक—मधुर **वीर्य**—पीतभाग उष्ण तथा श्वेतभाग शीत होता है। अण्डकपाल रूक्ष तथा शीत होता है।

कर्म

दोषकर्म—अण्डा वातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—पीतभाग वेदनास्थापन, वातहर; श्वेतभाग दाहप्रशमन तथा कपालभाग व्रणावसादन और लेखन है।

पाचनसंस्थान—कपाल स्तम्भन है।

आभ्यन्तर-रक्तवहसंस्थान—हृद्य और रक्तवर्धक है। कपाल शोथहर और रक्तस्तम्भन है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न है।

प्रजननसंस्थान—अंडा वृष्य और गर्भपोषक है।

तापक्रम—श्वेतभाग दाहप्रशमन है।

सात्मीकरण—वल्य है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातव्याधि में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—अंडे की जर्दी तथा उससे उत्पन्न तैल का पक्षाघात, अर्दित आदि वातविकारों में मालिश करते हैं। श्वेतभाग को दाह में लगाते हैं। अण्डकपाल का चूर्ण नेत्ररोगों में लेख्याञ्जन के रूप में तथा व्रणों में लेखन के रूप में प्रयुक्त होता है। सुखावती वर्त्ति, दृष्टिप्रदा वर्ति में कुक्कुटाण्डकपाल का योग है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अण्डत्वक् की भस्म अतिसार में देते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्तवहसंस्थान—हृद्रोग में अंडे का प्रयोग करते हैं। रक्तपित, उरःक्षत में कपालभस्म देते हैं।

श्वसनसंस्थान—अण्डत्वक्भस्म जीर्ण कास, श्वास तथा यक्ष्मा में देते हैं। अण्डे का तैल न्यूमोनिया में देते हैं।

प्रजननसंस्थान—नपुंसकता में तथा गर्भपोषणार्थ अण्डा या उसका तैल देते हैं। श्वेतप्रदर तथा शुक्रमेह में कपालभस्म अतीव उपयोगी है।

मूत्रवहसंस्थान—प्रमेह, इक्षुमेह में त्वक्भस्म प्रयुक्त होती है।

तापक्रम—दाहप्रशमनार्थ श्वेतभाग का प्रयोग होता है।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, क्षय में दिया जाता है। बल्य, वृष्य यापनाबस्तियों में अण्डे का प्रयोग है।

मात्रा—त्वक्भस्म-२-४ ग्रा०।

× × × ×

'नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च।
वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम्॥' (भा. प्र.)

'धार्तराष्ट्रचकोराणां दक्षाणां शिखिनामपि।
चटकानां च यानि स्युरण्डानि च हितानि च॥
क्षीणरेतःसु कासेषु हृद्रोगेषु क्षतेषु च।
मधुराण्यविदाहीनि सद्योबलकराणि च॥' (च. सू. २७)

'गर्भस्त्वामगर्भेण।' (च. शा. ६)

'निःस्राव्य मत्स्याण्डरसं भृष्टं सर्पिषि भक्षयेत्।
हंसबर्हिणदक्षाणां चैवमण्डानि भक्षयेत्॥' (च. चि. १.)

'तप्ते सर्पिषि नक्राण्डं ताम्रचूडाण्डमिश्रितम्।
युक्तं षष्टिकचूर्णेन सर्पिषाऽभिनवेन च॥
पक्वा पूपलिकाः खादेद् वारुणीमण्डपो नरः।
य इच्छेदश्ववद् गन्तुं प्रसेक्तुं गजवच्च यः॥' (च. चि. २)

'रक्तेऽतिवृत्ते दक्षाण्डं यूषैस्तोयेन ना पिबेत्।
चटकाण्डरसं वापि रक्तं वा छागजांगलम्॥' (च. चि. ११)

'कुलीरकूर्मनक्राणामण्डान्येवं तु भक्षयेत्।' (सु. चि. २६)
नक्रमूषिकमंडूकचटकाण्डकृतं घृतम्।
पादाभ्यङ्गेन कुरुते बलं भूमिं तु न स्पृशेत॥' (सु. चि. २६)

'कुक्कुटाण्डकपालानि सुमनोमुकुलानि च।
व्रणेषूत्सन्नमांसेषु प्रशस्तान्यवसादने॥' (सु. सू. ३६)
'कुक्कुटाण्डकपालानि लशुनं कटुकत्रयम्।
करञ्जबीजमेला च लेख्याञ्जनमिदं स्मृतम्॥' (सु. उ. १२)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

६. कच्छप

गुणकर्म

कच्छपमांस स्निग्ध, मधुररस, मधुरविपाक तथा शीतवीर्य है। यह वातपित्त-शामक, कफवर्धक, मेध्य; चक्षुष्य, पुरीषजनन, बल्य और वृष्य है। कच्छपपृष्ठ की भस्म कासहर, रक्तपित्तशामक और बल्य है। इसमें खटिक का अंश अधिक होता है।

प्रयोग

कच्छपमांस मानसिक विकारों में तथा नेत्ररोग, पुरीषक्षय, दौर्बल्य, शोषरोग और शुक्रमेह में प्रयुक्त होता है। शीतमधुर होने से रक्तपित्त में भी लाभकर है। मांसरस की बस्ति भी दौर्बल्य में देते हैं।

कच्छपपृष्ठ की भस्म कास, श्वास, रक्तपित्त, उरःक्षत, यक्ष्मा और शोष में अतीव उपयोगी है। इसकी वैक्सीन का प्रयोग भी यक्ष्मा में होता है।

मात्रा—कच्छपपृष्ठ भस्म–२–८ ग्रा०।

× × × ×

'बल्यो वातहरो वृष्यश्चक्षुष्यो बलवर्धनः।
मेधास्मृतिकरः पथ्यः शोषघ्नः कूर्म उच्यते ॥' (च. सू. २७)
'शङ्खकूर्मादयः स्वादुरसपाका मरुन्नुदः।
शीताः स्निग्धा हिताः पित्ते वर्चस्याः श्लेष्मवर्धनाः ॥' (सु. सू. ४६)
'रसाश्च पारावतशङ्खकूर्मजास्तथा यवाग्वोऽभिहिता घृतोत्तराः ॥' (सु. उ. ४५)

७. कर्कटक

परिचय

नाम—सं०–कर्कटक, कुलीर; हि०–केकड़ा; बं०–कांकड़ा; म०–खेंकड़ा; गु०–करचलो; फा०–पञ्जपाय; अ०–सरतान; लै०–सिल्ला सिरेटा (Seilla serrata)।

स्वरूप—यह पङ्कयुक्त जल में रहने वाला एक छोटा प्राणी है।

जाति—वर्णभेद से यह श्वेत और कृष्ण दो प्रकार का होता है। मीठे, बहते हुए पानी में रहने वाला (सरतान नहरी) बड़ा केकड़ा औषध के लिए लेना चाहिए।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध **रस**—मधुर
विपाक—मधुर **वीर्य**—शीत

कर्म

दोषकर्म—यह वातपित्तशामक और कफवर्धक है।

संस्थानिक कर्म-नाडीसंस्थान—यह वातशामक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पाचनसंस्थान—यह अनुलोमन और मृदुरेचन है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तपित्तशामक है।

श्वसनसंस्थान—बल्य और कफनिःसारक है।

प्रजननसंस्थान—वृष्य है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

सात्मीकरण—बल्य, बृंहण और सन्धानीय हैं।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातपैत्तिक विकारों में यह प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-नाडीसंस्थान—वातव्याधि, आक्षेपक तथा पूतना में कर्कटास्थि का धूपन करते हैं। वातिक शिरोरोगों में इससे सिद्ध तैल का नस्य देते हैं।

पाचनसंस्थान—विबन्ध में उपयोगी है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तपित्त में देते हैं।

श्वसनसंस्थान—उरःक्षत, जीर्णकास एवं यक्ष्मा में इसका प्रयोग करते हैं। इन रोगों में केकड़े की कृष्णभस्म (मसी) भी प्रयुक्त होती है। यह मसी हकीमों के यहाँ 'सरतान मुहरक' के नाम से प्रचलित है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रदौर्बल्य में इसका प्रयोग करते हैं। बस्ति भी देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में लाभकर है।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, शोष में देते हैं।

मात्रा—कर्कटभस्म–२–४ ग्रा०।

× × × ×

'कृष्णकर्कटकस्तेषां बल्यः कोष्णोऽनिलापहः।
शुक्लः सन्धानकृत् सृष्टविण्मूत्रोऽनिलपित्तहा॥' (सु. सू. ४६)
'कर्कटो बृंहणो वृष्यः शीतलोऽसृग्गदापहः।' (ध. नि.)
'कर्कटकरसघटकाण्डरसयुक्तः समधुघृतशर्करो बस्तिः' इत्येते बस्तयः परमवृष्याः।' (च. सि. १२)

'कर्कटास्थि घृतं चैव धूपनं सर्षपैः सह।' (सु. उ. ३२)

८. कुक्कुट

नाम—सं०–कुक्कुट, ताम्रचूड़, चरणायुध; हि०–मुर्गा; अं०–कॉक (Cock)।

गुण

गुण—लघु, स्निग्ध **रस**—मधुर
विपाक—मधुर **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह वातशामक है।

संस्थानिक कर्म-नाड़ीसंस्थान—नाड़ीबल्य है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्वसनसंस्थान—कण्ठ्य है।
प्रजननसंस्थान—वृष्य है। गर्भस्पन्दन है।
मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।
त्वचा—स्वेदजनन है।
तापक्रम—विषमज्वरघ्न है।
सात्मीकरण—बल्य, बृंहण है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातविकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-नाडीसंस्थान—नाडीदौर्बल्य तथा तज्जनित वातव्याधि में उपयोगी है। कुक्कुटसिद्ध घृत ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में देते हैं।

श्वसनसंस्थान—स्वरभेद तथा कास में लाभकर है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रदौर्बल्य और क्लैब्य में देते हैं। शुक्रप्रतिघात तथा शुक्राश्मरी में भी देते हैं। गर्भ जब स्पन्दनहीन होता है तब कुक्कुट का प्रयोग करते हैं। योनिशूल में भी देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्राघात में कुक्कुटमांस खिलाते हैं तथा कुक्कुटवसा की उत्तरबस्ति देते हैं।

त्वचा—त्वग्दोष में हितकर है।

तापक्रम—कुक्कुटमांस मद्य के साथ विषमज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, क्षय में प्रयुक्त होता है।

× × × ×

'कुक्कुटवसा विष्किरशकुनिवसानाम्।' (च. सू. २६)
'कुक्कुटो बल्यानाम्।' (च. सू. २७)
'स्निग्धाश्चोष्णाश्च वृष्याश्च बृंहणाः स्वरबोधनाः। बल्याः परं वातहराः स्वेदनाश्चरणायुधाः॥' (च. सू, २७)

'स्निग्धोष्णोऽनिलहा वृष्यः स्वेदस्वरबलापहः।
बृंहणः कुक्कुटो वन्य स्तद्वद् ग्राम्यो गुरुस्तु सः॥
वातरोगक्षयवमीविषमज्वरनाशनः।' (सु. सू. ४६)
'न ना स्वपिति रात्रीषु निस्तब्धेन च शेफसा। तृप्तः कुक्कुटमांसानां भृष्टानां नक्ररेतसि॥' (च. चि. २)

'सुरां समण्डां पानार्थे भक्ष्यार्थे चरणायुधान्। तित्तिरींश्च मयूरांश्च प्रयुञ्ज्याद् विषमज्वरे॥' (च. चि. ३)

'कुक्कुटाश्च मयूराश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकाः। शालयो मदिरा सर्पिर्वातगुल्मभिषग्जितम्॥' (च. चि. ५)

'कार्या वातरुगार्त्तायाः सर्वा वातहरी पुनः। घृततैलावसेकांश्च तित्तिरींश्चरणायुधान्॥' (च. चि. ५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

९. पारावत

नाम—सं०-पारावत, गृहकपोत; हि०-परेवा, कबूतर; बं०-पायरा; अं०-पिजियन (Pigeon), डव (Dove)

गुण

गुण—लघु, विशद, रूक्ष **रस**—कषाय, मधुर
विपाक—मधुर **वीर्य**—शीत

कर्म

दोषकर्म—कफपित्तशामक है।

संस्थानिक कर्म-रक्तवहसंस्थान—यह रक्तपित्तशामक है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफपैत्तिक विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-रक्तवहसंस्थान—रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तप्रदर तथा गर्भस्राव में प्रयुक्त होता है।

× × × ×

'कषायमधुराः शीता रक्तपित्तनिबर्हणाः। विपाके मधुराश्चैव कपोता गृहवासिनः॥'
(च. सू. २७)

'रक्तपित्तप्रशमनः कषायविशदोऽपि च। विपाके मधुरश्चापि गुरुः पारावतः स्मृतः॥'
(सु. सु. ४६)

'योषितः सततं यस्या गर्भवत्याः स्रवत्यसृक्। पारावतपुरीषं तं पाययेत्तण्डुलाम्बुना' ॥
(ग. नि.)

१०. सर्प

गुणकर्म

सर्पमांस मधुर, मेध्य, दीपन, अर्शोघ्न, कृमिघ्न, दूषीविषहर तथा चक्षुष्य होता है। राजयक्ष्मा में सर्पमांस खिलाने का विधान है। सर्प की वसा का अञ्जन तिमिर रोग में करते हैं। कृष्णसर्पविष उदररोग में अन्तिम औषध है। ऐसा लिखा है कि यदि सन्निपातिक उदर में सब औषधियाँ असफल हो जायँ तो अन्त में फल या इक्षुकाण्ड को कृष्णसर्प से दष्ट करा के रोगी को खिलावे। कृष्णसर्प की अन्तर्धूम दग्ध (मसी) बहेड़े के तेल के साथ श्वित्र में लगाया जाता है। सर्पशिर का धूम विष में देते हैं। सर्पनिर्मोक (केंचुल) का धूपन अर्श में तथा स्कन्दग्रह में करते हैं। प्रसव के बाद जब अपरा नहीं निकलती है तब सर्पनिर्मोक से योनिधूपन करते हैं। वस्त्रों का धूपन भी इससे करते हैं।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'दुर्नामानिलदोषघ्ना कृमिदूषीविषापहाः। चक्षुष्या मधुराः पाके सर्पा मेधाग्निवर्धनाः॥'
(सु. सू. ४६)

'वसाथ कृष्णोरगताम्रचूडजा सदा प्रशस्ता मधुकान्विताञ्जने।' (सु. उ. १७)

'वीर्यंशब्देन चोरगान्।' (च. चि. ८)

'कृष्णस्य सर्पस्य मसी सुदग्धा बैभीतकं तैलमथ द्वितीयम्।
एतत् समस्तं मृदितं प्रलेपाच्छ्वित्राणि सर्वाण्यपहन्ति शीघ्रम्॥' (सु. चि. ८)

'यस्मिन् वा कुपितः सर्पो योजयेद्धि फले विषम्। भोजयेत्तदुदरिणं प्रविचार्यं भिषग्वरः॥
(च. चि. १३)

'इक्षुकाण्डानि वा कृष्णसर्पेण दंशयित्वा भक्षयेत्।' (च. चि. १४)

'भूर्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मोकैश्चास्या योनिं धूपयेत्।
धूपनानि पुनर्वाससां शयनास्तरणप्रावरणानां च···सर्पनिर्मोकाणि घृतयुक्तानि स्युः।'
(च. शा. ८)

११. मयूर

मयूरमांस स्निग्ध, उष्ण तथा मेधा, चक्षु, श्रोत्र, अग्नि, स्वर मांस, शुक्रबल और आयु को बढ़ाने वाला, वातशामक तथा स्वेदजनन है। इसका प्रयोग विशेषतः वाजीकरणार्थं तथा विषमज्वर और विषों में होता है। मयूर के पादनाल की भस्म मधु से कास, श्वास और हिक्का में देते हैं। मयूरपिच्छभस्म छर्दि और हिक्का में उपयोगी है। विष में मयूरपिच्छ का धूम देते हैं। मायूरघृत शिरोरोग, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग तथा स्वरभेद में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—मांस, पिच्छ, पादनाल।

मात्रा—पिच्छ और पादनाल भस्म—$\frac{1}{4}$—$\frac{1}{2}$ ग्रा०।

विशिष्ट योग—मायूरघृत, महामायूरघृत।

× × × ×

'दर्शनश्रोत्रमेधाग्निवयोवर्णस्वरायुषाम्। बर्ही हिततमो बल्यो वातघ्नो मांसशुक्रलः॥'
(च. सू. २७)

'मयूरः स्वरमेधाग्निदृक्श्रोत्रेन्द्रियदार्ढ्यकृत्। स्निग्धोष्णोऽनिलहा वृष्यः स्वेदस्वरबलावहः।'
(सु. सू. ४६)

'मयूरपादनालं वा······दग्ध्वा क्षौद्रघृतान्वितम्।
चूर्णं लिहन् जयेत् कासं हिक्कां श्वासं च दारुणम्॥' (च. चि. १७)
'······दग्धाः सघृतक्षौद्रशर्कराः' श्वासकासहराः बर्हिपादौ वा क्षौद्रसर्पिषा॥'
(च. चि. १८)

'मयूरपक्षं निर्दह्य तद्भस्म मधुमिश्रितम्। लीढा निवारयत्याशु छर्दिं सोपद्रवामपि'॥
(यो. र.)

'शिखिपिच्छभस्मकृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं मुहुर्लीढम्।
हिक्कां हरति प्रबलां श्वासं चैवातिदुस्तरं छर्दिम्॥' (यो. र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१२. मत्स्य

मत्स्य मधुर, उष्ण, कफपित्तवर्धक होते हैं। स्थिर जल में होने वाला मत्स्य अत्यग्नि में लाभकर है। घृतभृष्ट मत्स्यमांस वृष्य है। गर्भ की गति मन्द या बन्द होने पर मत्स्य का प्रयोग करते हैं। रजोरोध तथा रक्तगुल्म में उपयोगी है। रक्तगुल्म तथा पिच्छिल योनि में सुधाक्षीर और क्षार से भावित कटुक मत्स्य योनि में रखते हैं। नाभिस्थ वात में मत्स्य का प्रयोग करते हैं। सशूल व्रण में मछली की वसा लगाई जाती है। पूतिमत्स्य का धूम कृमिज शिरोरोग में करते हैं। कृमि तथा कुष्ठ में मछली निषिद्ध हैं। सब मछलियों में रोहित श्रेष्ठ तथा चिलचिम निकृष्ट है। बालुकामत्स्य (रेगमाही) नाड़ीबल्य तथा वाजीकरण है।

कॉड नामक मछली के यकृत् से निकला हुआ तैल (Cod–liver oil) बल्य, बृंहण और जीवनीय है। इसमें जीवनीय द्रव्य ए और बी, वसाम्ल, कोलेष्टरॉल, पित्ताम्ल, आयोडिन, ब्रोमिन, सोडियम, कैल्शियम, पोटाशियम, लौह, फास्फरस, अनेक क्षारतत्त्व, राल तथा रंजक द्रव्य होते हैं। इसका प्रयोग बाह्य और आभ्यन्तर रूप से जीर्ण, कास, क्षय, शोष, गलगण्ड आदि में करते हैं। अजीर्ण, छर्दि, अतिसार, तीव्रज्वर, तीव्र रक्तपित्त में इसका प्रयोग निषिद्ध है। ३–६ ग्रा० की मात्रा में दुग्ध, फलरस या मधु के साथ भोजन के बाद देना चाहिए।

हैलिबट नामक मछली के यकृत् का तैल (Halibut–liver oil) भी चिकित्सा में व्यहृत होता है। इसमें जीवनीय द्रव्य अधिक परिमाण में होते हैं। २–३ बूंद यह तैल उपर्युक्त तैल के एक चम्मच के बराबर होता है। इसका स्वाद भी उतना अप्रिय नहीं होता।

× × × ×

'कफपित्तकराः मत्स्याः।' (भा. प्र.)

'गुरूष्णा मधुरा बल्या बृंहणाः पवनापहाः। मत्स्याः स्निग्धाश्च वृष्याश्च बहुदोषाः प्रकीर्तिताः॥
शैवलाहाररूपोजित्वात् स्वप्नस्य च विवर्जनात्। रोहितो दीपनीयश्च लघुपाको महाबलः॥'
(च. चि. २७)

'नादेया मधुरा मत्स्या गुरवो मारुतापहाः। रक्तपित्तकराश्चोष्णा वृष्याः स्निग्धाल्पवर्चसः॥'
'कषायानुरसस्तेषां शष्पशैवालभोजनः। रोहितो मारुतहरो नात्यर्थं पित्तकोपनः॥'
'सामुद्रा गुरवः स्निग्धा मधुरा नातिपित्तलाः। उष्णा वातहरा वृष्या वर्चस्या श्लेष्मवर्धनाः॥
बलावहा विशेषेण मांसाशित्वात् समुद्रजाः।' (सु. सू. ४६)

'रोहितो मत्स्यानाम् (हिततमः), चिलचिमो मत्स्यानाम् (अहिततमः)' (च. सू. [illegible])

'बालुकासंभवं मत्स्यं सुपक्वं भक्षयेद् घृतैः।
षण्ढोऽपि जायते कामी वीर्यस्तम्भः प्रजायते॥' (र. र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१३. अम्बर

नाम—सं०–अग्निजार, तुन्दामय; अ०, हि०–अम्बर; फा०–शाहबू; अं०–अम्बर ग्रिस् (Ambergris)।

स्वरूप—यह कैंचलॉट या स्पर्मह्वेल नामक जलजन्तु के महास्रोत में उत्पन्न होने वाला एक मोमसदृश पदार्थ है। यह पाचननलिका से बाहर निकल कर समुद्र लहरों पर तैरती हुई किनारे आ जाता है। इसीका संग्रह और व्यवहार अम्बर के नाम से होता है। उस प्राणी का शिकार कर महास्रोत से भी प्राप्त होता है।

ताजे अम्बर में पुरीष के समान दुर्गन्ध होती है किन्तु धूप में सूखने पर उसमें हलकी भीनी सुगन्ध आ जाती है। इसका रंग धूसर, पीला, सफेद या काला होता है। यह ६० सें० ताप पर पिघल जाता है। यह जल में अविलेय, किन्तु ईथर, क्लोरोफार्म और स्नेह में विलेय है। गरम अलकोहल में मिलाने पर अम्बरीन (Amberein) नामक ८५% श्वेत दानेदार सत्त्व प्राप्त होता है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष **रस**—कटु
विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह त्रिदोषघ्न विशेषतः कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-नाडीसंस्थान—यह मस्तिष्क-ज्ञानेन्द्रिय एवं नाडियों के लिए बल्य और आक्षेपशामक है।

पाचनसंस्थान—दीपन, पाचन, अनुलोमन और ग्राही है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरण है।

तापक्रम—शीतप्रशमन है।

सात्मीकरण—बल्य है।

प्रयोग

दोषकर्म—त्रिदोषज विकारों, विशेषतः कफवातप्रधान रोगों में इसका प्रयोग करते हैं।

संस्थानिक कर्म-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कदौर्बल्य, नाडीदौर्बल्य, पक्षाघात, अर्दित, धनुःस्तंभ, उन्माद, अपस्मार, अपतंत्रक, मूर्च्छा आदि में देते हैं।

पाचनसंस्थान—उदरशूल तथा ग्रहणी में उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्तवहसंस्थान—हृद्दौर्बल्य में लाभकर है।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरणार्थ प्रयुक्त होता है।

तापक्रम—शीतप्रधान रोग, जीर्ण प्रतिश्याय आदि में उपयोगी है।

सात्मीकरण—दौर्बल्य में देते हैं।

मात्रा—१-३ ग्रा०।

× × × ×

'अग्निजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत्। वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा॥'
(र. र. स.)

'स्यादग्निजारः कटुरुष्णवीर्यस्तुन्दामयो वातकफापहश्च।
पित्तप्रदः सोऽधिकसन्निपातशूलार्तिशीतामयनाशनश्च॥' (रा. नि.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चतुर्थ अध्याय

स्वेदज द्रव्य

१. मुक्ता

गण—नवरत्न (भा०)।

नाम—सं०-मुक्ता, मौक्तिक, शुक्तिज; हि०-म०-गु०-मोती, अ०-लूलू; फा०-मरवारीद; अं०-पर्ल (Pearl)।

स्वरूप—मुक्ता श्वेत, चमकदार, भारी, स्निग्ध, छिद्ररहित तथा सुडौल होती हैं। इसका निर्माण मुक्ताशुक्ति के भीतर संप्राप्त किसी बाह्य पदार्थ या पराश्रति के कारण उत्पन्न विक्षोभ से प्राकृतिक सुरक्षा के निमित्त खटिकीय संघात से होता है। इसकी संरचना अनेक स्तरों से होती है।

प्राप्तिस्थान—यह फारस की खाड़ी, लंका तथा सौराष्ट्र (जामनगर) में पाया जाता है। समुद्र में होने वाली शुक्ति में यह उत्पन्न होता है और समुद्र-तटवर्त्ती देशों में एकत्रित होता है।

रासायनिक संघटन—इसमें कैलशियम कार्बोनेट ९०-९२%, कार्बनिक पदार्थ ४-६%तथा जल २-४% होता है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष	**रस**—मधुर
विपाक—मधुर	**वीर्य**—शीत

कर्म

दोषकर्म—यह त्रिदोषघ्न है। गुण से कफ, रसविपाक से वात तथा वीर्य से पित्त को शान्त करता है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह लेखन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मेध्य और नाडीबल्य है।

पाचनसंस्थान—दीपन, यकृद्बल्य तथा ग्राही है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य और शोणितस्थापन है। शोथहर भी है।

श्वसनसंस्थान—कफनिःसारक है।

प्रजननसंस्थान—वृष्य है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

त्वचा—स्वेदापनयन है।

तापक्रम—ज्वरघ्न और दाहप्रशमन है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सात्मीकरण—जीवनीय और सन्धानीय है। विषघ्न भी है।

नेत्र—चक्षुष्य है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—त्रिदोषज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—मुक्ता, प्रवाल आदि का चूर्ण मधु के साथ नेत्र रोगों में लेख्याञ्जन के रूप में व्यवहृत होता है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—स्मृतिदौर्बल्य, उन्माद, अपस्मार तथा कम्पवात आदि वातविकारों में प्रयुक्त होता है। शिरःशूल में भी देते हैं।

पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, यकृद्विकार तथा रक्तातिसार, रक्तार्श और ग्रहणी में दिया जाता है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्द्रव, रक्तपित्त तथा शोथ में देते हैं।

श्वसनसंस्थान—कास, श्वास, उरःक्षत, पार्श्वशूल और यक्ष्मा में लाभकर है। यक्ष्मा में इससे ज्वर कम होता है, भूख बढ़ती, रात्रिस्वेद बन्द होता तथा शरीर का भार बढ़ता है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रमेह तथा श्वेत और रक्तप्रदर में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में लाभकर है।

त्वचा—स्वेदाधिक्य तथा अवसाद में देते हैं।

तापक्रम—ज्वर और दाह में दिया जाता है।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, क्षय, शोष, अस्थिभग्न में उपयोगी है। विषों में विशेषतः सीसविष में प्रयुक्त होता है। विशेषकर यह प्रदर, पांडु, व्रण, अतिसार से उत्पन्न दौर्बल्य में दिया जाता है।

नेत्र—दृष्टिदौर्बल्य में देते हैं।

मात्रा—पिष्टि या भस्म १२०–२४० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—मुक्तापंचामृत, मुक्ताद्यचूर्ण, वसन्तकुसुमाकर।

× × × ×

'मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम् ।' (भा. प्र.)

'मौक्तिकं सुमधुरं सुशीतलं दृष्टिरोगशमनं विषापहम् ।
राजयक्ष्मपरिकोपनाशनं क्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्धनम् ॥' (रा. नि.)

'कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमांद्यनुत् ।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥' (र. चू.)

२. शुक्ति

गण—उपरत्न (भा०)।

नाम—सं०-शुक्ति; हि०-सीप; अं०-ऑयस्टर (oystrs)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप—यह श्वेत, बड़ी चमकदार होती है।

जाति—समुद्र में होने वाली शुक्ति जिससे मोती निकलता है मुक्ताशुक्ति (Pearl-oysters) कहलाती है। नदियों तथा गढ़ों में पाया जाने वाला तत्सदृश द्रव्य शुक्ति या क्षुद्रशुक्ति (हि० सितुहा, सितुही) कहा जाता है। मुक्ताशुक्ति Pinctada जाति की पाँच प्रजातियों में आती है जिनमें Pinctada-vulgaris प्रमुख है।

प्राप्तिस्थान—मुक्ताशुक्ति समुद्र में तथा क्षुद्रशुक्ति (Crassostrea madrasensis) नदियों और तालाबों में पाई जाती है।

रासायनिक संघटन—इसमें कैल्शियम कार्बोनेट होता है।

गुणकर्म

इसके गुणकर्म मोती के समान किन्तु उससे न्यून होते हैं। मोती के प्रतिनिधि रूप में इसका प्रयोग करते हैं।

× × × ×

३. प्रवाल

परिचय—यह एक कीड़े का खटिकीय कंकाल है जो समुद्रतल में पड़ा-पड़ा कठिन हो जाता है। लाली भी इसमें धीरे-धीरे प्रौढ़ होने पर आती है। नीचे का ठोस, स्थूल भाग प्रवाल मूल तथा ऊपर की पतली शाखायें 'प्रवाल शाखा' कहलाती है।

गण—महारत्न (भा०)।

नाम—स०-प्रवाल, विद्रुम; हि०-मूँगा; बं०-पला; म०-पोंवलें; गु०-परवाला; अ०-मर्जा (प्रवाल शाखा); बुसुद (प्रवालमूल); फा०-काम: मर्जा, मर्गां; लै०-कोरेलियम रुब्रम (Corallium rubrum); अं०-कोरल् (Coral)।

स्वरूप—उत्तम प्रवाल पक्व बिम्बीफल के सदृश रक्तवर्ण, गोलाकार, सरल, स्निग्ध, अक्षत तथा स्थूल होता है। कसौटी पर घिसने पर इसका रंग ज्यों का त्यों रहता है। इसके विपरीत जो पाण्डुर, धूसर, रूक्ष, क्षतयुक्त, खोखला, हलका और पलता हो, वह प्रवाल निकृष्ट है।

जाति—इसकी अनेक जातियाँ पाई जाती हैं जिनमें एक कृष्ण प्रवाल (Black Coral) है।

प्राप्तिस्थान—उत्तम कोटि का प्रवाल भूमध्यसागर तथा जापान और किंचित् मलयेशिया के समुद्रों में पाया जाता है। कृष्णप्रवाल भारत की खाड़ी, अन्दमान, लक्षद्वीप तथा श्रीलंका में मिलता है।

रासायनिक संघटन—इसमें कैलशियम कार्बोनेट ८६.६७४, मैगनीशियम कार्बोनेट ६.८०४, कैलशियम सलफेट १.२७१, फैरस ऑक्साइड १.७२०, कार्बनिक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पदार्थ १.३५०, जल ०.५५०, फास्फरिक अम्ल, सिलिका आदि १.३३१ प्रतिशत होते हैं।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष **रस**—मधुर, किंचित् अम्ल
विपाक—मधुर **वीर्य**—शीत

कर्म

दोषकर्म—यह त्रिदोषहर है। विशेषतः कफवातघ्न है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह लेखन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह मेध्य और नाड़ीबल्य है।

पाचनसंस्थान—अम्लतानाशक, दीपन, पाचन और ग्राही है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य और शोणितास्थापन है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न है।

प्रजननसंस्थान—वृष्य है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

त्वचा—स्वेदापनयन है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—बल्य और विषघ्न है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—त्रिदोषज, विशेषतः कफवातिक विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—नेत्ररोगों में इसका चूर्ण लेख्यांजन के रूप में देते हैं। व्रणों के अवसादन के लिए भी इसका चूर्ण डालते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कदौर्बल्य तथा नाडीदौर्बल्य में देते हैं।

पाचनसंस्थान—अम्लपित्त, उदरशूल, रक्तातिसार, रक्तार्श और अन्त्रज व्रण में प्रयुक्त होता है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार तथा रक्तपित्त में देते हैं।

श्वसनसंस्थान—जीर्ण प्रतिश्याय, कास, श्वास एवं यक्ष्मा में प्रयुक्त होता है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रमेह में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में प्रयुक्त होता है।

त्वचा—अतिस्वेद तथा रात्रिस्वेद को रोकने के लिए दिया जाता है।

तापक्रम—ज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, क्षय तथा विष में दिया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मात्रा—१२०-३६० मि० ग्रा० (पिष्टि या भस्म) ।

विशिष्ट योग—प्रवालपंचामृत ।

× × × ×

'पक्वबिम्बीफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् । स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥
पाण्डुरं धूसरं रूक्षं सव्रणं कोरकान्वितम् । निर्भारं च तथा सूक्ष्मं प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा ॥'
(र. चू.)

'जालार्ककिरणारक्ता सागरसलिलोद्भवा लता यास्ति ।
न त्यजति निजरुचिं निकषे घृष्टापि सा स्मृता जात्या ॥' (भा. प्र.)

'प्रवालं सुमृतं क्षारं मधुरं लघु शीतलम् । दीपनं पाचनं चैव दृष्टिरोगनिषूदनम् ॥
त्रिदोषशमनं बल्यं विशेषात् कफवातनुत् । क्षयकासहरं चैव रक्तपित्तप्रणाशनम् ॥
स्वेदातिनिर्गमहरं रात्रिस्वेदहरं परम् । विषघ्नं भूतशमनं वीर्यवर्णविवर्धनम् ॥' (र. त.)

४. शंख

परिचय—यह एक समुद्री जन्तु का बाह्य कोश है ।

गण—उपरत्न (भा०) ।

नाम—सं०-शंख, कम्बु; हि०-शंख; ता०-संगु; लै०-Turbinella pyrum. अं०-Sacred chank.

स्वरूप—उत्तम शंख बड़ा गुरु, श्वेत एवं अछिद्र होता है । इसके विपरीत लक्षण वाला शंख त्याज्य है ।

प्राप्तिस्थान—यह समुद्र में प्राप्त होता है ।

रासायनिक संघटन—इसमें कैल्शियम, फास्फरस तथा लौह होते हैं ।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण
रस—कटु
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण (शीतस्पर्श)

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है ।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह लेखन है ।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अम्लतानाशन, दीपन, पाचन, गुल्मभेदन, ग्राही है ।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न है ।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है ।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—नेत्ररोगों में लेख्याञ्जन के रूप में प्रयुक्त होता है शंखचूर्ण और हरताल मिलाकर रोमशातन के लिए लेप करते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, अजीर्ण, उदरशूल, अम्लपित्त, गुल्म ग्रहणी, यकृत्प्लीहावृद्धि में इसका प्रयोग लाभकर है।

श्वसनसंस्थान—कासश्वास में देते हैं।

मात्रा—$\frac{1}{4}$–$\frac{1}{2}$ ग्रा०।

विशिष्ट योग—शंखवटी, चन्द्रोदया वर्त्ति, कफकेतु।

× × × ×

'शंखः क्षारो हिमो ग्राही ग्रहणीरोगनाशनः। नेत्रपुष्पहरो वर्ण्यस्तारुण्यपिटिकाप्रणुत्॥'

(भा. प्र.)

५. कपर्दिका

परिचय—यह एक समुद्री जन्तु का अस्थिमय कोश है।

नाम—सं०–कपर्दिका, वराटिका; हि०–कौड़ी, अ०–वद्अ; फा०–कजक, खरमोहरा; लै०–साइप्रिया मोनेटा (Cypraea moneta Linn)।

स्वरूप—उत्तम कौड़ी पीताभ, पृष्ठभाग पर ग्रन्थिल, दीर्घवृन्तयुक्त तथा ३–४ ग्रा० वजन की होती है। इसके विपरीत लक्षणवाली अग्राह्य है।

रासायनिक संघटन—इसमें कैलशियम फास्फेट, कार्बोनेट, फ्लोराइड, मैगनीशियम फास्फेट, मैंगनीज और सोडियम क्लोराइड होते हैं।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण **रस**—कटु, तिक्त

विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह लेखन और शोथहर है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—दीपन, पाचन, भेदन तथा ग्राही है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—यह नेत्ररोगों में लेख्याञ्जन तथा चर्मरोगों में लेप के रूप में प्रयुक्त होता है। व्रण, कर्णशूल आदि में भी डालते हैं।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, अजीर्ण, परिणामशूल, ग्रहणी, गुल्म में प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—कास में देते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मात्रा—२–४ ग्रा० ।

विशिष्ट योग—बृहल्लोकनाथ रस ।

× × × ×

'कपर्दः कटुतिक्तोष्णः कर्णशूलव्रणापहः। गुल्मशूलामयघ्नश्च नेत्रदोषनिकृन्तनः॥' (ध. नि.)
'परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी। कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा॥'
(र. चू.)

६. शम्बूक

परिचय—यह गढ़ों में एकत्रित जल में होता है तथा एक कीट का शंखाकार कोश है।

नाम—सं०–शम्बूक। हि०–घोंघा। अं०–Snail.

स्वरूप—यह कठिन, बाहर की ओर धूसर वर्ण, रेखांकित तथा भीतर की ओर श्वेत होता है।

प्राप्तिस्थान—भारत में सर्वत्र प्राप्त होता है। विशेषतः आनूप प्रदेशों में होता है।

रासायनिक संघटन—इसमें कैल्शियम कार्बोनेट ८५–९५%, कैल्शियम, मैगनीशियम फास्फेट और सलफेट, लौह; स्फटिका तथा सिलिका होते हैं।

गुण-कर्म

शम्बूक कटु, उष्ण, दीपन, पाचन, अनुलोमन है। अजीर्ण, परिणामशूल तथा गुल्म की प्रसिद्ध औषध है। शम्बूककीट तथा कोशस्थ जल बालशोष में अतीव लाभकर है।

मात्रा—२–४ ग्रा०।

विशिष्ट योग—शम्बूकादि गुटिका।

७. समुद्रफेन

परिचय—यह एक समुद्रज जन्तु की अस्थि है। फेनवत् श्वेत तथा समुद्र की लहरों पर तैरने के कारण इसे 'समुद्रफेन' संज्ञा दी गई है।

नाम—सं०–समुद्रफेन; हि०–समुन्दरफेन, समुन्दरझाग; अ०–ज़ुब्दुल् बहर; फा०–कफे दरिया। अं०–Cuttlefish.

स्वरूप—यह फेनवत् श्वेतवर्ण, ५–१० इञ्च लम्बा, चपटा, खुरदरा, हलका एवं भङ्गुर होता है।

प्राप्तिस्थान—समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—इसमें कैल्शियम कार्बोनेट ८०–८५% और कैल्शियम फास्फेट सलफेट और सिलिका होते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण

गुण—लघु, रूक्ष **रस**—कषाय
विपाक—कटु **वीर्य**—शीत

कर्म

दोषकर्म—कफपित्तशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—लेखन, स्तम्भन और शोथहर है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—दीपन, पाचन और अनुलोमन है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तपित्तशामक है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफपित्तज रोगों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—तिमिर, काच, नेत्रकण्डू आदि नेत्ररोगों में इसका चूर्णांजन करते हैं। कर्णस्राव में इसका चूर्ण कान में डालते हैं। विषों में इसका लेप करते हैं। रक्तस्राव को रोकने के लिए भी इसका चूर्ण छिड़कते हैं। शोथ, चर्मरोग तथा दन्तरोगों में लगाते हैं।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, शूल, गुल्म, यकृत्प्लीहा में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—रक्तपित्त में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—$\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ ग्रा०।

विशिष्ट योग—सुखावती वर्त्ति, ज्वरधूमकेतु।

× × × ×

'समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलस्तथा। कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफहृल्लघुः॥'
(भा. प्र.)

समुद्रफेनः शिशिरः कर्णपाकनिवारणः। लेखनो नेत्ररोगाणां हितो विषविनाशनः॥
चक्षुष्यो रक्तपित्तघ्नः गुल्मप्लीहहरः स्मृतः।' (ध. नि.)

'समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलः सरः। कर्णस्रावरुजागुल्महरः पाचनदीपनः॥
(भा. प्र.)

'अथातिप्रवृत्ते (रक्ते)...समुद्रफेनलाक्षाचूर्णैर्वा यथोक्तैर्व्रणबन्धनद्रव्यैर्वा बध्नीयात्॥'
(सु. सू. १४)

८. नख

परिचय—यह एक समुद्री जन्तु के मुख का नखसदृश आवरण है।

गण—एलादि (सु०)।

नाम—सं०–नख, हि०–नख, अ०–अज्फारुत्तिब; फा०–नाखूनपरियाँ। लै०–Achatina fulica Fer.

स्वरूप—यह गहरे भूरे रंग का तथा अनेक पर्त्तों का बना होता है। यह दुर्गन्धि होता है किन्तु तैल के साथ पकाने पर तैल सुगन्धित होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जाति—यह दो प्रकार का होता है :—(१) बड़ा और (२) छोटा । बड़े को व्याघ्रनख और छोटे को नख कहते हैं ।

प्राप्तिस्थान—समुद्रवर्ती प्रदेशों में पाया जाता है ।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष
रस—कटु, मधुर
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है ।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह वर्ण्य, व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, शोथघ्न और विषघ्न है ।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह आक्षेपहर है ।

पाचनसंस्थान—दीपन, पाचन, अनुलोमन और यकृदुत्तेजक है ।

प्रजननसंस्थान—वृष्य और आर्त्तवजनन है ।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है ।

त्वचा—कुष्ठघ्न है ।

तापक्रम—ज्वरघ्न है ।

सात्मीकरण—विषघ्न है ।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है ।

संस्थानिकप्रयोग-बाह्य—वर्णविकार, व्रण, कुष्ठ, कण्डू, शोथ, वातरक्त और विषों में लेप और धूपन करते हैं । इससे सिद्ध तैल का अभ्यंग भी करते हैं ।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—अपस्मार, अपतंत्रक और मूर्च्छा में प्रयुक्त होता है ।

पाचनसंस्थान—उदरशूल, अर्श और यकृद्विकार में लाभकर है ।

प्रजननसंस्थान—वाजीकरणार्थ तथा कष्टार्त्तव और योनिशूल में देते हैं ।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में देते हैं ।

त्वचा—त्वग्दोषों में प्रयुक्त होता है ।

तापक्रम—ज्वर में उपयोगी है ।

सात्मीकरण—विष में प्रयुक्त होता है ।

मात्रा—२-३ ग्रा० ।

विशिष्ट योग—शैलेयकादि तैल, अमृतादि तैल, महासुगंधहस्ती अगद ।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'नखाद्यं ग्रहश्लेष्मवाताखज्वरकुष्ठनुत्। लघूष्णं शुक्लं वर्ण्यं स्वादु व्रणविषापहम्॥'(भा.प्र.)
'नखः स्यादुष्णकटुको विषं हन्ति प्रयोजितः। कण्डूकुष्ठव्रणघ्नश्च भूतविद्रावणः परः॥(रा.नि.)

९. जलौका

नाम—सं०–जलौका, जलायुका, हि०–जोंक; अं०–लीच (Leech)।

जाति—इसकी अनेक जातियाँ होती हैं। सुश्रुतसंहिता के जलौकावचारणीय अध्याय में इनका विवरण किया है। वैज्ञानिक दृष्टि से भारत में मुख्यतः Hirudinaria, Haemadipsa, Hirudo तथा Dinobdella जातियों की जलौका मिलती है।

प्राप्तिस्थान—यह तालाबों में प्राप्त होता है।

गुणकर्म

यह पित्तदुष्ट शोणित को निकालने (अवसेचन) के लिए सुकुमार व्यक्तियों में शल्यकर्म के प्रकरण में व्यवहृत होती है। एक जलौका प्रायः ३–६ ग्रा० रक्त चूसती है। इसके शिर से हिरुडिन (Hirudin) नामक पदार्थ निकलता है जो रक्त के स्कन्दन को रोकता है। अपस्मार में जलौका के पुरीष को गोमूत्र के साथ नस्य देते हैं।

× × × ×

'नृपाढ्यबालस्थविरभीरुदुर्बलनारीसुकुमाराणामनुग्रहार्थं परमसुकुमारोऽयं शोणितावसेचनोपायोऽभिहितो जलौकसः।'
'शीताधिवासा मधुरा जलौका वारिसंभवा। तस्मात् पित्तोपसृष्टे तु हिता सा त्ववसेचने॥'
(च. सू. १३)
'जलौकः शकृता तद्वद्दग्धैर्वा बस्तलोमभिः। कपिलानां गवां मूत्रं नावनं परमं हितम्॥'
(च. चि. १०)

१०. लाक्षा

परिचय—वट, पीपल आदि वृक्षों में लैकिफर लक्का (Laecifer lacca (Kerr)) नामक कीट के द्वारा यह उत्पन्न होता है।

गण—लाक्षादि (सु०)।

नाम—सं०–लाक्षा, वृक्षामय, जतु; हि०–लाख, लाह; अ०–लुक; फा०–लाक; अं०–लैक (Lac)।

स्वरूप—यह लाल रंग का एक पदार्थ है जिससे महावर, रंग आदि बनाये जाते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह विशेषतः जांगलप्रदेश में होता है। राँची में इसका बड़ा उत्पादन एवं अनुसन्धान केन्द्र है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण

गुण—लघु, स्निग्ध **रस**—कषाय
विपाक—कटु **वीर्य**—शीत

कर्म

दोषकर्म—यह कफपित्तशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह स्तम्भन, सवर्णीकरण, सन्धानीय और कुष्ठघ्न है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—स्तम्भन और कृमिघ्न है।

रक्तवहसंस्थान—शोणितस्थापन है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न है।

त्वचा—त्वग्दोषहर है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफपित्तज विकारों में देते हैं।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—रक्तस्राव, सद्योव्रण, भग्न, कुष्ठ, दद्रु, नीलिका, विवृता योनि, मुखरोग तथा व्रणों में सवर्णीकरणार्थ लेप करते हैं। ज्वर में इससे सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग करते हैं।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अतिसार, प्रवाहिका और कृमि में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—रक्तपित्त में प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—हिक्का, कास, उरःक्षत में देते हैं।

त्वचा—कुष्ठ और विसर्प में उपयोगी है।

तापक्रम—ज्वर में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—५-१० ग्रा०।

विशिष्ट योग—लाक्षादि तैल।

× × × ×

लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः।
अनुष्णा कफपित्तास्रहिक्काकासज्वरप्रणुत्।
व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठगदापहा।' (भा. प्र.)

११. कोश

परिचय—यह रेशम के कीड़े (कोशकार) का बाह्य कोश है जिसे वह स्वयं बनाता है और उसी के भीतर बन्द होकर मर जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—सं०–कोश; हि०–रेशम का कोया, कोसा; अ०–इबरेशम; फा०–अबरेशम; अं०–सिल्कपॉड (Silk pod)।

स्वरूप—यह पीताभ श्वेत अण्डाकार कोश होता है जिसे कैंची से कतर, भीतर से कीड़ा निकाल कर चूर्ण किया जाता है। चूर्ण को हकीम लोग 'अबरेशम मुकर्रज़' कहते हैं।

प्राप्तिस्थान—यह कश्मीर, बिहार, बंगाल, मैसूर आदि स्थानों में पाया जाता है।

गुणकर्म

यह रूक्ष, उष्ण, मस्तिष्क, हृदय, यकृत्, फुफ्फुस और आमाशय को बल देने वाला, वर्ण्य, दोषविलयन, कफनिःसारक है। इसकी भस्म लेखन, रक्तस्तम्भन तथा व्रणरोपण है। मस्तिष्कदौर्बल्य, हृद्रोग, कासश्वास में दिया जाता है। इसकी भस्म रक्तस्राव, व्रण तथा नेत्ररोगों में लगाते हैं।

मात्रा—१–३ ग्रा०।

१२. मक्षिका

मक्षिकाविट् का मधु के साथ प्रयोग छर्दि रोग में करते हैं।

× × × ×

'स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्जचूर्णानि लिह्यान् मधुनाभयां वा।
कोलास्थिमज्जाञ्जनमक्षिकाविड्लाजासितामागधिकाकणान् वा॥' (च. चि. २०)

१३. तैलमक्षिका

परिचय—यह एक प्रकार की मक्खी है।

नाम—सं०–तैलमक्षिका; हि०–तेलनी मक्खी; अ०–जरारीह; लै०–माइलेब्रिस चिकोरिआई (Mylabris chicorii), अं०–तेलिनी फ्लाइ (Telini fly)।

स्वरूप—यह लगभग एक इञ्च लम्बी होती है तथा काले रंग के दो पर नारंगी रंग के बिन्दुओं से युक्त होते हैं।

प्राप्तिस्थान—यह कश्मीर एवं उत्तरी भारत में वर्षा में पाई जाती है। यूरोप में इसकी विदेशी जाति कैन्थरिस वेसिकेटोरिया (Cantharis vesicatoria) का प्रयोग होता है।

रासायनिक संघटन—इसमें कैन्थराइडिन (Cantharidin) नामक सत्त्व; २.९% उड़नशील तैल, कषायद्रव्य और वसा होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म

बाह्य प्रयोग से यह रक्तोत्क्लेशक और विस्फोटजनन है तथा इसका लेप तिलतैल में मिला कर वाजीकरणार्थ शिश्न पर लगाते हैं। इसके अतिरिक्त, श्वित्र, कुष्ठ, वातव्याधि, व्यङ्ग, खालित्य में लेप करते हैं। आभ्यन्तर प्रयोग से वाजीकरण, मूत्रल और आर्त्तवजनन है तथा ध्वजभंग, मूत्राघात, कष्टार्त्तव में प्रयुक्त होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पञ्चम अध्याय

उद्भिज्ज द्रव्य

१. इन्द्रगोप

परिचय—यह वर्षा में निकलने वाला एक रेंगनेवाला कीड़ा है।

नाम—सं०–इन्द्रगोप; हि०–बीरबहूटी; अ०–अरूसक; फा०–किर्मे मखमल फागन; लै०–म्युटेला ऑक्सिडेण्टलिस (Mutella occidentalis)।

स्वरूप—यह रक्तवर्ण, मखमली लगभग $\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा होता है किन्तु सूखने पर इसका रंग केसरिया हो जाता है।

उत्पत्तिस्थान—यह वर्षा के प्रारम्भ में उद्यान की लताओं पर पाया जाता है।

गुणकर्म

यह रूक्ष, उष्ण, कफवातशामक एवं वाजीकरण है। वातव्याधि तथा ध्वजभंग में इसका बाह्य और आभ्यन्तर प्रयोग करते हैं। मसूरिका के दानों को बाहर निकालने के लिए भी खिलाते हैं।

मात्रा—$\frac{1}{2}$–१ नग।

× × × ×

२. भूनाग

परिचय—यह वर्षाऋतु में होने वाला एक कीड़ा है।

नाम—सं०–भूनाग, गण्डूपद; हि०–केंचुवा, चेरा: म०–गांडवल; गु०–अलशलिया; अ०–खरातीन; फा०–किर्मे जमी; अं०–अर्थवर्म (Earth–worm)।

स्वरूप—यह लगभग $\frac{1}{2}$ फुट लम्बा, भूरे रंग का होता है। ये तीव्र ग्रीष्म तथा शीत काल में पृथ्वी के बहुत भीतर चले जाते हैं और पुनः अनुकूल अवसर आने पर ऊपर आ जाते हैं।

प्राप्तिस्थान—यह विशेषतः आनूप देश में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—भूनाग में जल ७६–८६, प्रोटीन १०–१४ तथा वसा १·५ प्रतिशत पाया जाता है। इससे एक रक्तविश्लेषक, एक श्वासनलिकाप्रसारक तथा एक ज्वरघ्न घटक (Lumbro–febrin) प्राप्त किया गया है।

गुणकर्म

यह स्निग्ध, उष्ण, मूत्रल, अश्मरीनाशन, वाजीकरण, बल्य तथा शोथहर है। मूत्रकृच्छ्र, क्लैब्य, क्षय, यक्ष्मा तथा शोथ में इसका प्रयोग करते हैं। ध्वजभंग में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसका तिला भी लगाते हैं। इसका सत्वपातन करके इससे ताम्र निकालते हैं जो विषघ्न है।

मात्रा—१–३ ग्रा० (चूर्ण)।

प्रयोगविधि—हरिद्राक्वाथ से धोकर तथा मिट्टी, विष्ठा आदि साफ कर सुखा ले और उसके बाद प्रयोग करे।

× × × ×

'मृष्टस्तस्यान्नशब्देन दद्याद् गण्डूपदानपि।' (च. चि. ८)

३. मण्डूक

परिचय—यह जलस्थलोभयज जन्तु है।

नाम—सं०–भेक, मण्डूक; हि०–मेढक, बेंग; अं०–Frog।

स्वरूप—यह अनेक आकार प्रकार का होता है। वर्षाऋतु के बाद यह पृथ्वी-गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है और पुनः वर्षाऋतु आने पर बाहर निकलता है।

प्राप्तिस्थान—यह विशेषतः आनूप प्रदेशों में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—मेढक में आर्द्रता ८१·६, प्रोटीन १६·४, वसा ०·३ तथा राख १·१ प्रतिशत होती हैं। इसमें कैलशियम १८ मि० ग्रा०, फास्फरस १४७ मि० ग्रा०, लोह १·१ मि० ग्रा०, प्रति १०० ग्राम तथा विटामिन बी काम्प्लेक्स पाया जाता है।

गुणकर्म—इससे सिद्ध तैल कर्णस्राव में देते है। चूर्ण लेख्याञ्जन तथा व्रणप्रति-सारण में दिया जाता है। चीन, जापान, वर्मा, फ्रांस तथा अमेरिका में आहार के रूप में मेढक का प्रयोग करते हैं। भारत में भी निर्धन व्यक्ति इसे खाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्वितीय खण्ड

पार्थिव औषधद्रव्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रथम अध्याय

सामान्य परिचय

१. संज्ञा-निरुक्ति

पृथिवी से प्राप्त होने वाले द्रव्यों को 'पार्थिव' या 'भौम' कहते हैं यथा सुवर्ण, रजत, मनःशिला आदि।[1]

२. धातु और लोह

प्राचीन काल में धातु और लोह शब्दों का प्रयोग भिन्न अर्थ में होता था। 'धातु' शब्द से 'दधाति लोहान्' इति (जो लोहों को धारण करे) व्युपत्ति के अनुसार उस द्रव्य का ग्रहण किया जाता था जिसमें लोह (स्वर्ण आदि द्रव्य) विद्यमान हों। इन्हें आजकल अंग्रेजी में 'ओर' (Ore) कहते हैं। 'लोह' शब्द से 'लुह्यते' आकृष्यते धातुभ्यः इति' (जो धातुओं से निकाला जाय) व्युत्पत्ति के अनुसार स्वर्ण, रजत आदि द्रव्यों का ग्रहण किया जाता था। जो पूर्वोक्त धातुओं से निकाले जाते थे। क्रमशः 'धातु' शब्द से साक्षात् स्वर्ण, रजत आदि द्रव्यों का ही ग्रहण होने लगा क्योंकि लोक में तथा चिकित्सा में इन्हीं द्रव्यों का विशेष व्यवहार होता है। इन्हें अंग्रेजी में मेटल (Metal) कहते हैं। 'लोह' शब्द धीरे-धीरे केवल 'लौह' (Iron) में सीमित हो गया।

३. संहिताओं में पार्थिव द्रव्य

चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन संहिताओं में भी पार्थिव द्रव्यों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है किन्तु साथ-साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उस समय ये द्रव्य अत्यन्त सीमित क्षेत्र में व्यवहृत होते थे क्योंकि उस समय प्रधानतः औद्भिद द्रव्यों का बाहुल्य से प्रयोग होता था। चरकसंहिता की अपेक्षा सुश्रुतसंहिता में पार्थिव द्रव्यों का प्रयोग अधिक है। सुश्रुत ने लोहों का एक 'त्रप्वादि गण' निर्धारित किया किन्तु चरक में ऐसा कोई गण नहीं है। रसशास्त्र के विकास के साथ पार्थिव द्रव्यों का प्रयोग तीव्रता से प्रचलित हुआ और व्यापक रूप से इनका प्रयोग रोगों के निवारण के लिए होने लगा। ऐसी स्थिति में औद्भिद और जांगम द्रव्य सहकारी के रूप में प्रयुक्त होने लगे।

---

१. 'सुवर्णं समलं पञ्च लोहाः ससिकताः सुधा । मनःशिलाले मणयो लवणं गैरिकाञ्जने ॥ भौममौषधमुद्दिष्टम् ।' (च. सू. १)
'पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः ।' (सु. सू. १)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४. पार्थिव द्रव्यों का वर्गीकरण—प्राचीन और अर्वाचीन

प्राचीन संहिताओं में इन द्रव्यों के वर्गीकरण का कोई प्रयत्न नहीं मिलता। यहाँ तक कि 'रस' शब्द भी देखने में नहीं आता। रसशास्त्र का पृथक् विकास होने पर जब इन द्रव्यों का प्रयोग बाहुल्य से होने लगा तब परवर्त्ती लेखकों को वर्णन की सुविधा के लिए इनका व्यवस्थित वर्गीकरण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। रसशास्त्र के अनुसार निघंटुओं में भी इन द्रव्यों का गुणकर्मात्मक वर्णन वर्गीकरण-पद्धति से किया गया। निघंटुकारों ने अपने निघंटुओं में इन द्रव्यों के लिए 'धातुवर्ग' स्वतन्त्र ही स्थापित किया।

पार्थिव द्रव्यों के वर्गीकरण के संबन्ध में प्राचीन रसाचार्यों में प्रभूत मतभेद देखा जाता है। सामान्यतः इन द्रव्यों के रस, महारस, उपरस, साधारणरस, लोह, रत्न, उपरत्न ये सात वर्ग मिलते हैं किन्तु किस वर्ग में कौन-कौन द्रव्य समाविष्ट होंगे इसमें ऐकमत्य स्थापित नहीं हो सका। प्रत्येक आचार्य ने अपनी दृष्टि से जिस द्रव्य को जैसा महत्त्व दिया उसके अनुसार उस वर्ग में प्रतिष्ठापित किया। उदाहरणार्थ, हिंगुल को रसार्णव ने महारस में, आयुर्वेदप्रकाश ने उपरस में तथा रसेन्द्रचूडामणि ने साधारण रस में रक्खा है। द्रव्यों के आपेक्षिक महत्त्व के अनुसार वर्गीकरण में लेखकों को बड़ी स्वच्छन्दता से काम करने का अवसर मिला और लोगों ने इसका उपयोग भी पूरा-पूरा किया। परिणाम यह हुआ कि इन द्रव्यों का वर्गीकरण व्यवस्थित होने के बदले नितान्त विशृङ्खल हो गया। ऐसी अव्यवस्था महारस, उपरस, साधारणरस, उपरत्न के क्षेत्र में विशेष हुई क्योंकि यहाँ लेखकों ने वैज्ञानिक एकवाक्यता से काम न लेकर वैयक्तिक रुचि से विशेष काम लिया। दूसरा कारण यह भी था कि उस समय इन द्रव्यों के विशिष्ट रासायनिक संघटन के अध्ययन का कोई साधन नहीं था, फलतः इस आधार पर कोई वर्गीकरण संभव भी नहीं था। ऐसी स्थिति में, धातु और रत्न के अतिरिक्त शेष द्रव्यों को इन्हीं वर्गों में से किसी में स्थापित करना ही था।

आधुनिक रसायनशास्त्र के विकास तथा वैद्यसमाज में उसके प्रचार के साथ-साथ अर्वाचीन वैद्यों में इन द्रव्यों के नवीन रीति से अध्ययन, वर्गीकरण और प्रतिसंस्कार की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और अनेक लेखकों ने नवीन विज्ञान का आधार लेकर द्रव्यों का विशद और व्यवस्थित वर्णन किया। ऐसे ग्रन्थों में 'रसतरंगिणी' अति सिद्ध है। इन ग्रन्थों में द्रव्यों का स्वरूप कुछ तो स्पष्ट हुआ किन्तु वर्गीकरण का क्षेत्र अधूरा ही रह गया। आगे चलकर समसामयिक लेखकों में आचार्य यादव जी ने अपने ग्रन्थ 'रसामृत' में इन द्रव्यों के वर्गीकरण का आमूलचूल प्रतिसंस्कार किया। इस नवीन प्रतिसंस्कार में उन्होंने नवीन विज्ञान के आधार पर अनेक द्रव्यों के रासायनिक संघटन के अनुसार उन्हें विभिन्न वर्गों में विभाजित किया। महारस,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपरस, साधारणरस वाली प्राचीन परिपाटी को बिलकुल समाप्त कर दिया। द्रव्यों के नवीन रासायनिक संघटन पर अधिक ध्यान रखने से कुछ सुविधा तो अवश्य हुई किंतु व्यवस्था की दृष्टि से त्रुटि यह रही कि उन्हें अनेक छोटे-छोटे वर्ग बनाने पड़े। आर्सेनिक (Arsenic), कैल्शियम (Calciun) तथा सिलिका (Silica) के लिए उन्हें तीन वर्ग पृथक्-पृथक् बनाने पड़े। गंधक का एक वर्ग अलग रखना पड़ा। मेरे विचार से, धातु–उपधातु, रत्न–उपरत्न के सदृश 'रस–उपरस' युग्म होना चाहिए और 'उपरस' का एक वर्ग पृथक् रहना चाहिए जिसमें पारद-प्रक्रिया से घनिष्ट संबन्ध रखने वाले द्रव्यों का समावेश किया जाय। हिंगुल, गंधक, ताल, मनःशिला तथा शंखविष ये उपरस में रक्खे जायं। रस–उपरस, धातु–उपधातु, रत्न–उपरत्न, सुधा–सिकता, तथा लवण-क्षार इन दस युग्म वर्गों में समस्त पार्थिव द्रव्यों का अन्तर्भाव हो जाता है। इसी क्रम से इस ग्रन्थ के पाँच अध्यायों में इनका वर्णन किया गया है। महर्षि चरक के वर्णन में वर्गीकरण का यद्यपि स्पष्टतः उल्लेख नहीं मिलता किन्तु यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो एक व्यवस्था का संकेत मिलता है—

यथा—

१. सुवर्ण समलाः पंचलोहाः (धातु)।
२. ससिकताः सुधाः (सुधा–सिकता)।
३. मनःशिलाले (उपरस)।
४. मणयः (रत्न–उपरत्न)।
५. लवणम् (लवण–क्षार)।
६. गैरिकाञ्जने (उपधातु)।

इनमें पारद का एक वर्ग मिलाने से दस वर्ग पूरे हो जाते हैं। मेरा अनुमान है कि इस सूत्र से परवर्त्ती लेखकों को अवश्य संकेत प्राप्त हुआ होगा।

अर्वाचीन औषधविज्ञान में पार्थिव द्रव्यों के तीन वर्ग निदिष्ट हैं—(१) धातु (Heavy metals), (२) लवण–क्षार (Alkalies & metals of alkaline earth) तथा (३) विशिष्ट प्रभावशाली द्रव्य (Chemotherapeutic agents) प्रथम वर्ग में स्वर्ण, रजत आदि धातु, द्वितीय वर्ग में सोडियम, पोटाशियम आदि लवण–क्षार तथा तृतीय वर्ग में पारद, मल्ल आदि विशिष्ट कार्यकारी द्रव्य रखे गये हैं।

५. पार्थिव द्रव्यों का अध्ययन

पार्थिव द्रव्यों के औषधीय कर्मों का अध्ययन प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्रों में विभिन्न दृष्टियों से किया गया है। अर्वाचीन विज्ञान में उन द्रव्यों का मूल रूप में शरीर पर जो कर्म प्रत्यक्ष होते हैं उन्हीं के आधार पर गुणकर्म निरूपित किया है किन्तु प्राचीन शास्त्र में द्रव्यों के मूल रूप में अनेक दोष बतलाये गये हैं जिनके प्रयोग से शरीर पर अनेक हानिकर प्रभाव होते हैं। अतएव शोधन द्वारा उनके हानिकर दोषों का निवारण तथा मारण द्वारा उनको धातुओं में प्रवेश योग्य बनाने के साथ

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उनका प्रयोग औषध में किया जाता है। उन प्रक्रियाओं से उनके गुणकर्म में निश्चित परिवर्तन होते हैं अतः प्राचीन शास्त्र में पार्थिव द्रव्यों का गुणकर्म लिखते समय इन परिवर्त्तनों को पूरा ध्यान में रक्खा गया है। किसी धातु का गुणकर्म पढ़ते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वे गुणकर्म सुशोधित और सुमृत धातु के हैं और ये गुणकर्म अभीष्ट प्रमाण में तभी उपलब्ध होंगे जब धातु का शोधन-मारण विधिवत् किया जा चुकेगा। पार्थिव द्रव्यों के औषधीय अध्ययन के प्रकरण में प्राचीन और नवीन विज्ञान के इस दृष्टिभेद को अवश्यमेव ध्यान में रखना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्वितीय अध्याय

रस-उपरस

१. पारद

नाम—सं०–रस, रसेन्द्र, सूत, चपल, पारद,[1] शिवः, हि०–बं०–म०–पारा; गु०–पारो; अ०–जीवक; ऐनुल हयात; फा०–सीमाव, जीवः, लै०–हाइड्राजिरम् (Hydragyrum); अं०–मर्करी (Mercury)।

स्वरूप—यह चाँदी के समान चमकदार, श्वेत और चंचल द्रव द्रव्य है। यह जल से १३$\frac{1}{2}$ गुना भारी होता है। इसका घनांक ३९·५° तथा क्वथनांक ३५८° से० हैं। नत्रिकाम्ल एवं उबलते गंधकाम्ल में विलेय है। भीतर से नीलाभ तथा बाहर सफेद और चमकदार पारा उत्तम तथा धूमिल या पाण्डुवर्ण निकृष्ट होता है।[2]

जाति—क्षेत्रभेद तथा वर्णभेद से इसकी अनेक जातियों का वर्णन प्राचीन रसज्ञों ने किया है।

उत्पत्तिस्थान—यह अधिकांश हिंगुल के रूप में मिलता है। कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप में भी पाया जाता है। विशेषतः चीन और स्पेन में मिलता है।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध, सर	**रस**—षड्रस
विपाक—मधुर	**वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—त्रिदोषघ्न है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह पूतिहर, जन्तुघ्न, रोपण और वेदनास्थापन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्क और नाड़ी के लिए बलप्रद है।

पाचनसंस्थान—यह अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक और कृमिघ्न है। अतिमात्रा में लालाप्रसेकजनन है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तवर्धक तथा रक्तशोधक है। शोथहर भी है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न है।

---

१. 'रसनादशकादीनां धातूनां कीर्तितो रसः। अभ्रकाद्यधिराजत्वाद्रसेन्द्र इति कथ्यते॥
देहलोहमयीं सिद्धिं सूतेऽतः सूत उच्यते।
स्वभावाच्चपलो यस्मात् ततोऽसौ चपलः स्मृतः॥
आतंकपंकमग्नानां पारदानाच्च पारदः।' (र. त.) शिवः कल्याणकारित्वात्।

२. शुद्धः सूतो मतस्त्वन्तः सुनीलो बहिरुज्ज्वलः।
सूर्यप्रभश्चाविशुद्धो धूम्रो वा परिपाण्डुरः॥' (र. त.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रजननसंस्थान—वृष्य है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—बल्य, रसायन और योगवाही है।

शोषण और उत्सर्ग—इसका शोषण शरीर के प्रत्येक भाग से शीघ्र होता है और शोषित होकर यह वृक्क, यकृत् तथा यन्त्रभित्तियों में अलब्युमिनेट के रूप में संचित होता है जहाँ शनैः शनैः इसका उत्सर्ग होता है। इसके कार्बनिक यौगिक मुख्यतः मूत्र द्वारा तथा अकार्बनिक यौगिक पुरीष द्वारा बाहर निकलते हैं। १० मिलीग्राम से अधिक मूत्र द्वारा उत्सृष्ट होने पर यह वृक्कों को हानि पहुँचाता है। लाला, स्वेद, स्तन्य, पाचकरस तथा पित्त के द्वारा भी इसका कुछ अंश बाहर निकलता है। अपरा के द्वारा यह गर्भ में भी किंचित् पहुँचता है।

विशिष्ट प्रभाव—यह विशेष कर फिरंग के जीवाणुओं (Spirochaeta Pallida) को नष्ट करता है।

सहिष्णुता—युवा की अपेक्षा बालक तथा स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक सहिष्णु होते हैं। वृक्करोग, क्षय, रक्तपित्त तथा ज्वरजन्य दौर्बल्य में इसकी प्रतिक्रिया गंभीर होती है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह त्रिदोषज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग बाह्य—जन्तुघ्न होने के कारण इसका घोल व्रण, पूयमेह, उपदंश, फिरंग, चर्मरोग, शोथ, गलगंड, कुनख तथा नेत्ररोगों में प्रक्षालनार्थ व्यवहृत होता है। रसकर्पूरद्रव शल्यकर्म में यन्त्र-शस्त्र तथा हाथों को साफ करने के लिए प्रयुक्त होता है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मस्तिष्कदौर्बल्य, नाडीदौर्बल्य तथा वातव्याधि में प्रयुक्त होता है।

पाचनसंस्थान—मुग्धरस बच्चों के वमन और अतिसार में दिया जाता है। रसपुष्प पित्तविरेचन है। जलोदर और यकृद्दुदर में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—रक्तविकार और शोथ में प्रयुक्त होता है। फिरंग के लिए यह विशिष्ट औषध है। इसको प्रथम और द्वितीय अवस्था में दिया जाता है।

श्वसनसंस्थान—कास, श्वास और हिक्का में लाभकर है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रदौर्बल्य में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में दिया जाता है। किन्तु वृक्कविकारों में नहीं देना चाहिए।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

त्वचा—कुष्ठ में देते हैं।

तापक्रम—ज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, क्षय, शोष में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—शुद्ध पारद ३०–१२० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—रससिन्दूर, मकरध्वज, कज्जली, रसपर्पटी आदि।

विषाक्त लक्षण—मुख, आमाशय में दाह, उदरशूल, वमन, अतिसार, लाला प्रसेक, रक्तपित्त, अलब्युमिनमेह, रक्तमेह, मूत्राघात, प्रलाप, संन्यास और अन्त में मृत्यु होती है।

निवारण—मांसरस पिला कर वमन करावे तत्पश्चात् दुग्ध का पान करावे।

× × × ×

'पारदः षड्रसः स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायनः। योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः॥ सर्वामयहरः प्रोक्तो विशेषात् सर्वकुष्ठनुत्।' (भा. प्र.)

'ग्रहणीगजकर्षणदक्षतरं स्वतिसारहरं क्षयशोषहरम्।
जठरानलमान्द्यविनाशकरं परिशीलय सूतभवं भसितम्॥' (र. त.)

२. हिंगुल

नाम—सं०–हिंगुल, दरद, म्लेच्छ; हि०–सिंगरफ; अ०–जंजफर शंजर्फ; फा०–शंगर्फ; अं०–सिनेबार (Cinnabar)।

स्वरूप—यह जपापुष्प के सदृश गाढ़े लाल रंग का दानेदार चमकीला द्रव्य है।

जाति—भावमिश्र ने इसकी तीन जातियाँ बतलाई हैं। व्यवहार में यह दो प्रकार का देखने में आता है :—(१) कठोर और (२) कोमल। कोमल में पारद अधिक होता है, अतः इससे पारद निकाला जाता है और कठोर का प्रयोग औषधार्थ करते हैं। उत्पत्तिभेद से दो प्रकार का होता है—(१) खनिज और (२) कृत्रिम।

उत्पत्तिस्थान—खनिज हिंगुल खानों से प्राप्त होता है और कृत्रिम हिंगुल कृत्रिम विधि से कारखानों में बनाया जाता है। विशेषतः चीन और स्पेन में मिलता है।

रासायनिक संघटन—यह पारद और गंधक का यौगिक है। इससे पारा निकाला जाता है।

गुणकर्म

हिंगुल त्रिदोषघ्न, दीपन, वृष्य, ज्वरघ्न एवं कुष्ठघ्न है। त्रिदोषज विकारों में विशेषतः उदरविकार, शुक्रमेह, ज्वर, आमवात और कुष्ठ में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—३०–१२० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—हिंगुलेश्वर, मृत्युंजय, आनन्दभैरव।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तिक्तं कषायं कटु हिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि।
हृल्लासकुष्ठज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति॥' (भा. प्र.)
'हिंगुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायनः। सर्वदोषहरो वृष्यो मारणादतिशस्यते।' (र. चू.)
जपाकुसुमवर्णाभः पेषणे सुमनोहरः। महोज्ज्वलो भारपूर्णः हिंगुलः श्रेष्ठ उच्यते॥' (र. त.)

३. गिरिसिन्दूर

नाम—सं०–गिरिसिन्दूर (पहाड़ में होने वाला सिन्दूर के सदृश रक्तवर्ण द्रव्य); हि०–सिपिचन्द; अं०–रेड ऑक्साइड ऑफ मर्करी (Red oxide of mercury)।

स्वरूप—यह शुष्क, रक्तवर्ण, पारद का एक यौगिक है जो पर्वतीय चट्टानों के बीच में पाया जाता है। संप्रति यह कृत्रिम रूप से बनता है।

प्रयोग

इसका प्रयोग मलहम बनाने में करते हैं जिसको फिरंग तथा चर्मरोगों में लगाते हैं।

× × × ×

'महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तःस्थितो रसः। शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरिसिन्दूरसंज्ञया॥'
(र. चू.)

४. गन्धक

नाम—सं०–गन्धक, गन्धपाषाण, बलि, लेलीतक; हि०–गन्धक; अ०–किबूरीत; फा०–गोगिर्द; अं०–सलफर (Sulphur)।

स्वरूप—यह गंधयुक्त एक द्रव्य है जो ज्वालामुखी पर्वतों से प्राप्त होता है। स्वतंत्र रूप में तथा अन्य द्रव्यों के साथ मिश्रित भी पाया जाता है। भौम द्रव्यों (पारद, रजत, ताम्र, लोहा, सीसा आदि), जांगम द्रव्यों (अंडे की जर्दी, रक्त, दूध, पित्त आदि) तथा औद्भिद द्रव्यों (राई, सरसों, लसुन, प्याज आदि) में गंधक मिश्रित रहता है।

जाति—शास्त्र में यह वर्णभेद से चार प्रकार का बतलाया गया है—(१) श्वेत, (२) पीत, (३) रक्त और (४) कृष्ण। किन्तु संप्रति पीत गंधक का प्रयोग होता है जिसे आमलासार गंधक कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इटली, सिसली, जापान, भारत, नेपाल, अफगानिस्तान और बर्मा में पाया जाता है।

गुण

गुण—लघु, स्निग्ध **रस**—कटु, तिक्त
विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—किसी स्निग्ध पदार्थ में मिला कर त्वचा पर लगाने से यह गन्धित (Sulphide) में बदल जाता है जो हलका क्षोभक और कृमिघ्न-कण्डूघ्न कर्म करता है। लेखन होने के कारण यह त्वचा में शोथ, लालिमा भी उत्पन्न करता है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—यह दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक तथा पित्तसारक है। आंतों में यह सलफाइड के रूप में परिणत होता है और उनकी गति को बढ़ाता है जिससे यह मृदुरेचन का कार्य करता है। इससे बिना शूल के मृदु पुरीष आते हैं। कृमिघ्न भी है। अधिक काल तक प्रयोग करने से अग्निमान्द्य तथा अन्त्रशोथ उत्पन्न हो जाते हैं।

रक्तवहसंस्थान—यह रक्तशोधक है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है।

सात्मीकरण—यह रसायन, विषघ्न और योगवाही है।

शोषण—सलफाइड तथा हाइड्रोजन सलफाइड गैस के रूप में इसका शोषण होता है। यह गैस तीव्र विष है अतः अधिक मात्रा में गन्धक लेने पर रक्तक्षय, नीलिमा, संन्यास, कम्पवात आदि लक्षण होते हैं।

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग सलफैट के रूप में मुख्यतः मूत्र से होता है तथा हाइड्रोजन सलफाइड के रूप में फुप्फुस, स्वेद और स्तन्य से होता है। इससे श्वास और स्वेद में दुर्गन्ध आने लगती है और शरीर पर पहने हुए रजत के आभूषण काले पड़ने लगते हैं।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—वायुशुद्धि के लिए इसका धूपन करते हैं। कण्डू, कच्छू, कुष्ठ, विसर्प आदि में इसका द्रव या मलहम लगाते हैं। आमवात, गृध्रसी आदि में भी लेप करने से लाभ होता है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अग्निमान्द्य, अजीर्ण, शूल, यकृद्विकार, अर्श, भगन्दर तथा कृमि में प्रयुक्त होता है।

रक्तवहसंस्थान—आमवात, सन्धिवात आदि अनेक रक्तविकारों में यह प्रयुक्त होता है।

त्वचा—कुष्ठ, विसर्प, विचर्चिका आदि अनेक चर्मरोगों में इसका सेवन करते हैं।

सात्मीकरण—दौर्बल्य में प्रयुक्त होता है। शीशविष के प्रतिषेध के लिए इसका प्रयोग करते हैं क्योंकि यह शीश का आंतों में शोषण नहीं होने देता।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मात्रा—शुद्ध गंधक–२५०–५०० मि० ग्रा० ।

विशिष्ट योग—गन्धकरसायन, गन्धकवटी, गन्धकद्रव ।

× × × ×

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः । पित्तलः कटुकः पाके कण्डुवीसर्पजन्तुजित् ॥
हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान् रसायनः ।' (भा. प्र.)

५. मल्ल

नाम—सं०-मल्ल, फेनाश्म, गौरीपाषाण; हि०-संखिया; बं०-शंखविष, शंकोविष; म०-सोमल, सोमलखार; गु०-सोमल, शंखियो; अ०-सम्मुलफार; फा०-मर्गमूश; अं०-आर्सेनिक (Arsenic), ह्वाइट आर्सेनिक (White arsenic), एसिडम आर्सिनिओजम (Acidum arseniosum) ।

स्वरूप—यह एक भारी, गंधस्वादरहित, शंख के सदृश श्वेतवर्ण ठोस पदार्थ है। यह पारदर्शक और अपारदर्शक दोनों प्रकार का होता है। ६५ भाग जल में धीरे-धीरे घुलता है तथा अम्ल जल, तीव्र क्षारीय विलयन में पर्याप्त विलीन होता है। सुरासार में किंचित् विलेय है ।

रासायनिक संघटन—यह आर्सेनिक ट्राइ ऑक्साइड (As_2O_3) है और शुद्ध आर्सेनिक या तद्युक्त धातुओं को वायु में जलाने से प्राप्त होता है ।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण **रस**—कटु
विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है ।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह लेखन है। त्वचा विशेषतः क्षत पर लगाने से व्रणशोथ एवं कोथ उत्पन्न करता है। स्वस्थ धातुओं की अपेक्षा विकृत धातु पर विशेष प्रभाव होता है ।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह नाडीबल्य है। अतिमात्रा में अवसादक है।

पाचनसंस्थान—अल्प मात्रा में यह आमाशयिक रक्तसंवहन और स्राव को बढ़ाता है, फलतः दीपन है। अधिक मात्रा में देने पर अन्ननलिका में तीव्र क्षोभ, शोथ और रक्तस्राव उत्पन्न करता है ।

रक्तवहसंस्थान—रक्तशोधक है तथा रक्तस्थित विभिन्न जीवाणुओं को नष्ट करता है। इससे प्रथम हृदय उत्तेजित होता है तथा बाद में अवसाद होता है। केशिकाओं का विशेषतः औदर्य का प्रसार होता है तथा रक्तभार कम हो जाता है। शोथहर भी है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्वसनसंस्थान—कास-श्वासहर है।

प्रजननसंस्थान—वृष्य है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है। यह वर्ण्य है तथा त्वचा को पोषण प्रदान करता और अधस्त्वक् मेद को बढ़ाता है। चिरकालिक सेवन से त्वचा में कृष्णता आती है तथा कण्डू और विस्फोट होते हैं।

तापक्रम—विषमज्वरघ्न तथा शीतप्रशमन है।

सात्मीकरण—बल्य और रसायन है।

उत्सर्ग—यह मुख्यतः मूत्र से तथा कुछ पुरीष से उत्सृष्ट होता है। किंचित् परिमाण पित्त, स्वेद, लाला, अश्रु तथा स्तन्य के द्वारा बाहर निकलता है। सेवन के २–८ घण्टे के बाद उत्सर्ग प्रारम्भ होता है तथा मन्द गति से चिरकाल तक होता रहता है। कई मास तक यह यकृत्, केश तथा बाह्यत्वक् में पाया जाता है। मुख द्वारा लेने पर मुख्यतः पुरीष से तथा सूचीवेध द्वारा लेने पर मूत्र से उत्सर्ग होता है। त्वचा से उत्सर्ग होने के कारण कण्डू, विस्फोट, मंडल आदि लक्षण होते हैं।

सहिष्णुता—चिरकाल तक सेवन करते रहने से इसका विषाक्त प्रभाव कम हो जाता है और व्यक्ति सहिष्णु हो जाता है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—यह अर्बुद, ग्रन्थि तथा शोथ में लेप के रूप में दिया जाता है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह कम्पवात, सन्धिवात आदि वातव्याधि में उपयोगी है।

पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, छर्दि, अतिसार, उदरशूल तथा प्लीहावृद्धि में प्रयुक्त होता है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्रोग, ग्रन्थिशोथ तथा श्लीपद में लाभकर है। फिरंग रोग में यह विशेषरूप से प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—श्वास तथा यक्ष्मा में दिया जाता है।

प्रजननसंस्थात—वाजीकरणार्थ इसका सेवन ताम्बूल के साथ करते हैं।

त्वचा—कुष्ठ, विचर्चिका आदि त्वचा के रोगों में उपयोगी है।

तापक्रम—जीर्ण विषमज्वर में यह प्रयुक्त होता है। कुनैन का अकेले जब कार्य नहीं होता तब इसको मिला कर देने से सफलता मिलती है। इससे ज्वर दूर होता है तथा रोगी का बल बढ़ता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सात्मीकरण—दौर्बल्य तथा पाण्डु में देते हैं।

मात्रा—शुद्ध मल्ल–१–२ मि० ग्रा०, फेनाश्मद्रव–१–२ बूंद।

विशिष्ट योग—मल्लसिन्दूर, मल्लचन्द्रोदय।

प्रयोगविधि—(१) चर्मरोगों की तीव्र व्रणशोथयुक्त अवस्था में प्रयोग न करें।

(२) भोजन के बाद पर्याप्त जल मिला कर दें।

(३) त्वचा में कण्डू, दाह, नेत्रक्षोभ, वर्त्मशोथ, आमाशयशूल, नाडीशूल ये लक्षण होते ही मात्रा $\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{4}$ कर दे या एकदम बन्द कर दे।

(४) त्वचा में कण्डू आदि होने पर विरेचन दे।

(५) जीर्ण त्वग्रोगों में कुछ महीनों तक प्रयोग करे।

(६) बच्चे और बूढ़े अधिक मात्रा में ले सकते हैं।

(७) आमाशय या अन्त्र में क्षोभ के लक्षण हृल्लास, अग्निमांद्य आदि होने पर इसका प्रयोग निषिद्ध है।

तीव्र विषलक्षण—उदरशूल, छर्दि, अतिसार, पैरों में ऐंठन, तीव्र तृष्णा, अवसाद आदि विसूचिका के समान लक्षण होते हैं।

जीर्ण विषलक्षण—अग्निमांद्य, हृल्लास, वमन, शूल, अतिसार, नेत्रशोथ, संधिशोथ, नाडीशोथ, पक्षाघात, त्वचा में कृष्णता आदि लक्षण होते हैं।

निवारण—वमन कराने के बाद स्निग्ध और उत्तेजक औषध देते हैं।

× × × ×

गौरीपाषाणकः शुद्धो मात्रया परिशीलितः। कफवातामयहरो वयस्यो वृष्यो रसायनः॥
श्वासं शीतज्वरं पाण्डुं प्लीहवृद्धिं फिरङ्गकम्। श्लीपदं सन्धिवातं च तथा कुष्ठानि नाशयेत्॥
अम्लं च कटुकं तीक्ष्णं वर्जयेन् मल्लसेवकः। (रसामृत)

६. हरिताल

नाम—सं०–हरिताल, ताल, आल, तालक; हि०–हरताल; अ०–जर्नीख अस्फर; फा०–जर्नीखे जर्द; अं०–एल्लो आर्सेनिक (Yellow arsenic), ऑर्पिमेण्ट (Orpiment)।

स्वरूप—यह पीत वर्ण का भारी पदार्थ है।

जाति—स्वरूपतः यह दो प्रकार का होता है:—(१) पत्रताल और (२) पिण्डताल। पत्रताल उत्कृष्ट होता है।

उत्पत्तिस्थान—यह चीन और ईरान में खानों से निकलता है। कृत्रिम भी बनाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह आर्सेनिक ट्राइसलफेट (As_2S_3) है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण

गुण– लघु, स्निग्ध | **रस**—कटु, कषाय
विपाक—कटु | **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—लेखन, जन्तुघ्न और रोमशातन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—नाडीबल्य है।

पाचनसंस्थान—दीपन, पाचन, अनुलोमन है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तशोधक और शोथहर है।

श्वसनसंस्थान—कास-श्वासहर है।

प्रजननसंस्थान—आर्त्तवजनन है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—बल्य है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातज विकारों में देते हैं।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—नाडीव्रण, भगन्दर, शोथ आदि में लेप करते हैं। चूना या शंखचूर्ण के साथ रोमशातन के लिए त्वचा पर लेप किया जाता है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—नाडीदौर्बल्य, वातव्याधि में प्रयुक्त होता है।

पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, शूल, गुल्म, प्लीहा में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—वातरक्त, फिरंग आदि रक्तविकारों में लाभकर है।

श्वसनसंस्थान—कास, श्वास में प्रयुक्त होता है।

प्रजननसंस्थान—रजोरोध में देते हैं।

त्वचा—कुष्ठ तथा चर्मरोगों में उपयोगी है।

तापक्रम—जीर्ण तथा विषम ज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, शोष में हरताल भस्म देते हैं।

विशिष्ट योग—रसमाणिक्य, तालकेश्वर रस, विद्याधर रस।

मात्रा—१००-२०० मि० ग्रा०।

× × × ×

'हरितालं कटुस्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्।
कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान् ॥' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

७. मनःशिला

नाम—सं०–मनःशिला, मनोगुप्ता, नैपाली, कुनटी; हि०–मैनसिल; बं०–मनछाल; फा०–झर्नीख सुर्ख; अं०–आर्सेनिक रुब्रम (Arsenic rubrum); रियल गार (Real gar)।

स्वरूप—यह भारी, नारंगी रंग की और कोमल होती है। जल में नहीं घुलती।

उत्पत्तिस्थान—चित्रल, कुमायूं, काश्मीर आदि में हरताल के साथ पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह आर्सेनिक बाइसलफैट ($As_2 S_2$) है।

गुणकर्म

इसके गुणकर्म हरताल के समान हैं। विशेषतः चर्मरोग, कास, श्वास और ज्वर में प्रयुक्त होता है।

विशिष्ट योग—शिलासिंदूर।

मात्रा—१००–२०० मि० ग्रा०।

× × × ×

'मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः।
तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत्॥' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तृतीय अध्याय

धातु-उपधातु

१. सुवर्ण

नाम—सं०-सुवर्ण, स्वर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, गांगेय, कलधौत, काञ्चन, चामीकर, शातकुम्भ, कार्त्तस्वर; हि०-सोना; म०-सोनें; गु०-सोनुं; अ०-जहब, इक्यान; फा०-तिला, जर; लै०-ऑरम (Aurum); अं०-गोल्ड (Gold)।

स्वरूप—उत्तम सुवर्ण रक्ताभ पीत, स्निग्ध और कोमल होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व १९.४, द्रवणांक १०६४ तथा काठिन्य २½ होता है। यह अत्यन्त प्रसरणशील होता है जिससे इसके अत्यन्त पतले पत्र बन सकते है। अम्लराज में घुलता है।

प्राप्तिस्थान—यह स्वतन्त्र रूप में, चट्टानों में तथा रजत, ताम्र, लोह आदि धातुओं के साथ मिला रहता है। यह मुख्यतः मैसूर के कोलार क्षेत्र से प्राप्त होताहै। इसके अतिरिक्त, महाराष्ट्र, बिहार तथा आन्ध्रप्रदेश से भी निकलता है।

गुण

गुण—लघु, स्निग्ध
रस—मधुर, कषाय
विपाक—मधुर
वीर्य—शीत
प्रभाव—त्रिदोषघ्न

कर्म-प्रयोग

सुवर्ण—मेध्य, नाडीबल्य, दीपन, हृद्य, वृष्य, बृंहण, ज्वरघ्न, रसायन और विषघ्न है।

इसका **प्रयोग**—उन्माद, स्मृतिदौर्बल्य, वातव्याधि, उदररोग, हृद्रोग, प्रमेह, क्लैब्य, उरःक्षत, यक्ष्मा, ज्वर, शोथ और विषों में करते हैं।

उत्सर्ग—इसका ५० प्रतिशत उत्सर्ग मूत्र से होता है। कुछ पुरीष से निकलता है तथा शेष यकृत् और पेशी में चिरकाल तक सञ्चित रहता है।

मात्रा—स्वर्णभस्म-१५-३० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—स्वर्णसिन्दूर, स्वर्णपर्पटी, योगेन्द्र, मृगाङ्क आदि।

× × × ×

'सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम्। स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके तु स्वादु पिच्छिलम्॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम्। हृद्यमायुष्करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत्॥ विषापहं क्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित्।' (भा० प्र०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'शीतं कषायं मधुरं विषघ्नं वर्ण्यं च मेधास्मृतिवर्धनं च।
रसायनीयं लघु रूक्षमुक्तम्-' (र. वै. मा.)

२. रजत

नाम—सं०-रजत, रौप्य, तार; हि०-चाँदी; अ०-नुक्रा; फा०-सीम; लै०-अर्जेण्टम (Argentum); अं०-सिलवर (Silver)।

स्वरूप—उत्तम रजत मृदु, स्निग्ध तथा शरच्चन्द्र के सदृश श्वेत होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व १०.५ तथा द्रवणांक ७६० है। वह अत्यन्त प्रसरणशील है अतः इसके बहुत पतले पत्र बनाये जा सकते हैं। शोरकाम्ल में यह विलेय है।

उत्पत्तिस्थान—रजत का मुख्य केन्द्र मेक्सिको है। उसके बाद अमेरिका, कनाडा, पेरू, रूस, आस्ट्रेलिया, जापान और जर्मनी का स्थान आता है। भारत में राजस्थान के जावर क्षेत्र में इसकी प्रमुख खानें हैं जहाँ से इसकी प्राप्ति होती है।

गुणकर्म

रजत स्निग्ध, कषायाम्ल, मधुरविपाक, शीतवीर्य और वातपित्तशामक है। यह लेखन, चक्षुष्य, स्तम्भन, मेध्य, हृद्य, वृष्य, बल्य और रसायन है।

प्रयोग

बाह्य—शोरकाम्लीय रजतद्रव का प्रयोग जीर्णव्रण, भगन्दर, उपदंश तथा नेत्ररोगों में करते हैं। पूयमेह, गर्भाशयशोथ, श्वेतप्रदर आदि में इसकी उत्तर-बस्ति देते हैं।

आभ्यन्तर—अपस्मार, उन्माद, अर्धावभेदक, जीर्ण प्रवाहिका, हृद्रोग, शुक्रमेह, कष्टार्तव, क्षय में इसका प्रयोग विशेषरूप से होता है।

मात्रा—रजतभस्म-५०-१०० ग्रा०।

विशिष्ट योग—शोरकाम्लीय रजत, रजतसिन्दूर, काञ्चनाभ्र।

उत्सर्ग—रजत पुरीष के साथ सलफाइड के रूप में निकलता है जिससे पुरीष का वर्ण गहरा भूरा हो जाता है। अन्त्रस्रावों तथा पित्त द्वारा भी निकलता है। कुछ अंश वृक्क और यकृत् में सञ्चित रहता है।

विषाक्त लक्षण—अतिमात्रा में देने पर पाचननलिका में क्षोभ, वमन, अतिसार, अवसाद तथा मृत्यु होती है।

निवारण—स्निग्ध मधुर पेय तथा सैन्धव का प्रयोग करना चाहिए।

× × × ×

'रूप्यं तिक्तं कषायाम्लं स्वादुपाकरसं सरम्। वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित्॥
प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद् ध्रुवम्।' (भा० प्र०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३. ताम्र

नाम—सं०-ताम्र, औदुम्बर, शुल्ब, म्लेच्छमुख, सूर्य; हि०-ताँबा; अ०-नुहास्; फा०-मिस्; लै०-क्युप्रम् (Cuprum); अं०-कॉपर (Copper)।

स्वरूप—उत्तम ताम्र मृदु, स्निग्ध तथा जपा-पुष्प के सदृश रक्तवर्ण होता है। विशिष्ट गुरुत्व ८ तथा द्रवणांक १०८० है। यह प्रसरणशील तथा उत्तम विद्युच्चालक है।

प्राप्तिस्थान—यह अमेरिका, साइबेरिया, युरोप, वर्मा, सिक्किम तथा भारत में बिहार (सिंहभूम क्षेत्र), आसाम, बंगाल, मध्यप्रदेश, जम्मू-कश्मीर, तामिलनाडु, कर्नाटक, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम तथा उत्तरप्रदेश में पाया जाता है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण　　**रस**—कटु, तिक्त, मधुर, अम्ल
विपाक—कटु　　**वीर्य**—उष्ण

कर्म-प्रयोग

ताम्रभस्म कफपित्तहर, जन्तुघ्न, शोथहर, दीपन, पित्तसारक, श्वासहर, दोषसंशोधन तथा रक्तवर्धक है। इसका प्रयोग ग्रन्थिशोथ, यकृत्प्लीहावृद्धि, गुल्म, अर्बुद, उदररोग, श्वास, पूयवृक्क, विसूचिका, विष, पाण्डु, ग्रहणी और प्रमेह में लाभकर है।

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग, यकृत्, आन्त्र, मूत्र तथा लाला द्वारा होता है।

मात्रा—५०-१०० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—हृदयार्णव, स्वच्छन्दभैरव, जलोदरारि, ताम्रपर्पटी, सूर्यावर्तरस, पञ्चाननरस।

विषाक्त लक्षण—अपक्व ताम्रभस्म लेने से भ्रम, प्रलाप, छर्दि, ज्वर, अतिसार, शूल, रक्तपित्त होते हैं।

प्रयोगनिषेध—बाल, वृद्ध, गर्भिणी, सूतिका, क्षतक्षीण, क्षय एवं अर्श के रोगियों को इसका सेवन नहीं कराना चाहिए।

× × × ×

'ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च।
पित्तापहं श्लेष्महरं च सोष्णं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनं च॥
पाण्डूदरार्शोगरकुष्ठकासश्वासक्षयान् पीनसमम्लपित्तम्।
शोथं कृमिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेतत्॥' (भा. प्र.)
'तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं द्विवल्लोन्मितम्।
संलीढं परिणामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुज्वरम्॥
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं समूत्रामयम्।
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद् ध्रुवमिदं तत्सोमनाथाभिधम्॥' (र. र. स.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४. वंग

नाम—सं०-वंग, रंग, त्रपु, पिच्चट। हि०-रांगा; म०-कथोल; गु०-कलई; अ०-रसास, करदीर; फा०-अरजी; लै०-स्टैनम (Stannum); अं०-टिन (Tin)।

स्वरूप—यह एक प्रसिद्ध श्वेतवर्ण चमकीली धातु है। लोहे, तांबे आदि के पात्रों पर इसकी कलई करते हैं क्योंकि इस पर जलवायु तथा अम्लों का कोई प्रभाव नहीं होता। इसका विशिष्ट गुरुत्व ७.३ तथा द्रवणांक २३२ है। उत्तम वंग (खुरक) मृदु, स्निग्ध, चमकीला तथा शीघ्र पिघलने वाला होता है।

जाति—खुरक और मिश्रक इसकी ये दो जातियाँ होती हैं। खुरक उत्तम और ग्राह्य है।

प्राप्तिस्थान—९० प्रतिशत टिन मलयेशिया, वोलिविया, थाइलैंड, इण्डोनेशिया, कांगो, आस्ट्रेलिया, नाइजीरिया और चीन से प्राप्त होता है। भारत में बिहार और राजस्थान ये दो प्रमुख केन्द्र हैं।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण	**रस**—तिक्त
विपाक—मधुर	**वीर्य**—उष्ण

कर्म-प्रयोग

वंगभस्म कफवातशामक, मेध्य, नाड़ीबलदायक, दीपन, अनुलोमन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, त्वग्दोषहर, प्रमेहघ्न, वृष्य एवं आर्त्तवजनन है। इसका प्रयोग कफवात-विकारों में विशेषतः मस्तिष्कदौर्बल्य, वातव्याधि, अग्निमांद्य, छर्दि, कृमि, विसर्प, जीर्ण चर्मरोग, मांसार्बुद, प्रमेह (सान्द्रमेह, अच्छ, इक्षुमेह, उदकमेह और शुक्रमेह), मूत्राशयदौर्बल्य, पौरुषग्रन्थिशोथ, शुक्रदौर्बल्य, स्वप्नदोष, नपुंसकता, वन्ध्यात्व, कष्टार्त्तव, क्षय एवं पाण्डु में करते हैं। प्रमेह की यह सर्वोत्तम औषध मानी जाती है। जीर्ण व्रण पर इसका बाह्य प्रयोग करते हैं।

मात्रा—१२५-२५० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—बृ० वंगेश्वर, स्वर्णवंग।

× × × ×

'वंगं लघु सरं रूक्षमुष्णं मेहकफक्रिमीन्। निहन्ति पाण्डुकं श्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक्॥
सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वंगोऽखिलमेहवर्गम्।
देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम्॥' (आ. प्र.)

'बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं सोष्णकम्।
सौन्दर्यैकविवर्धनं हितकरं नीरोगताकारकम्॥
धातुस्थौल्यकरं क्षयिक्षयहरं सर्वप्रमेहापहम्।
वंगं भस्मतो नरस्य न भवेत् स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः॥ (आ. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५. नाग

नाम—सं०–नाग, सीस, वप्र, योगेष्ट; हि०–सीसा; अ०–आनुक; रसाउल् अस्वदः; फा०–उसरुब् , सुर्बः; लै०–प्लम्बम (Plumbum); अं०–लेड (Lead)।

स्वरूप—उत्तम सीसक भारी, मृदु, स्निग्ध, बाहर की ओर नीला तथा भीतर नीलाभ श्वेत, शीघ्र पिघलने वाला होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ११·३ और द्रवणांक ३२६ है। नत्रिकाम्ल में विलेय है।

प्राप्तिस्थान—नाग मुख्यतः अञ्जन (Galena) के रूप में प्राप्त होता है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, मेक्सिको, कनाडा और रूस इसके प्रमुख प्राप्तिस्थान हैं। भारत में यह हिमाचल प्रदेश, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, आसाम, कश्मीर आदि राज्यों में पाया जाता है। राजस्थान के जावर क्षेत्र में इसका विशेष कार्य होता है।

गुण

गुण—गुरु, स्निग्ध **रस**—मधुर, तिक्त

विपाक—मधुर **वीर्य**—उष्ण

कर्म

यह त्रिदोषशामक है। बाह्य प्रयोग में यह स्तम्भन, वेदनास्थापन और कुष्ठघ्न है। आभ्यन्तर रूप में यह मेध्य, नाडीबल्य, स्तम्भन, अनुलोमन, शोथहर, वृष्य, बल्य और जीवनीय है।

प्रयोग

बाह्य—जीर्ण व्रण, विचर्चिका, श्वेतप्रदर, कर्णस्राव, क्षत, शोथ, चर्मरोगों में इसके द्रव से प्रक्षालन करते हैं। गलशोथ में इससे गंडूष भी करते हैं।

आभ्यन्तर—भ्रम, संन्यास, पक्षाघात, वातव्याधि, अम्लपित्त, ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, अर्श, गुल्म, उदरशूल, अपची, गंडमाला, मांसार्बुद, कास, क्लैब्य, मधुमेह, अस्थिगत व्रण, पाण्डु और दौर्बल्य में प्रयुक्त होता है।

शोषण और उत्सर्ग—पाचननलिका, त्वचा तथा श्वासमार्ग से इसका शोषण अलब्युमिनेट के रूप में अति मन्दगति से होता है। अशोषित भाग सलफाइड के रूप में पुरीष द्वारा निकलता है जिससे पुरीष का वर्ण काला होता है। शोषित भाग केन्द्रीय नाडीमंडल, वृक्क, यकृत् और अस्थियों में संचित होता है और मंद गति से मूत्र, पित्त, स्वेद, स्तन्य तथा आन्त्र से उत्सृष्ट होता है।

मात्रा—५०–१०० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—नागसिन्दूर, नागेश्वर रस।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विषाक्त लक्षण—अपक्व नागभस्म से उदरशूल होता है। इसके अतिरिक्त, मुखशोष, तृष्णा, छर्दि, कोष्ठबद्धता, पक्षाघात, उन्माद, अन्धता, संन्यास तथा मृत्यु होती है।

निवारण—वमन कराने के बाद मधुर स्निग्ध पदार्थ देना चाहिए।

× × × ×

'अत्युष्णं सीसकं स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम्।
प्रमेहतोयदोषघ्नं दीपनं चामवातनुत्॥' (यो. र.)

'नागः समीरकफपित्तविकारहन्ता, सर्वप्रमेहवनराजिकृपीटयोनिः।
उष्णः सरो रजतरंजनकृद् व्रणार्शोगुल्मग्रहण्यतिस्रुतिव्रणदांशुमाली॥' (बृ. यो. त.)

'नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः॥' (आ. प्र.)

'अशीतिर्वातजान् रोगान् धनुर्वातं विशेषतः। कफरोगानशेषांश्च मूत्ररोगांश्च सर्वशः॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं श्वयथुं शीतिकाज्वरम्। ग्रहणीमामदोषं च वह्निमांद्यं सुदुर्जरम्॥
सर्वानुदकदोषांश्च तत्तद्रोगानुपानतः।' (र. र. स.)

६. यशद

नाम—सं०—यशद, रीतिहेतु, खर्परसत्त्व; हि०—जस्ता; अ०—शब:; खारसीन; फा०—जसद; लै०—जिंकम् (Zincum); अं०—जिंक (Zinc)।

स्वरूप—यह नीलाभ श्वेत, स्निग्ध, मृदु, भारी, भंगुर तथा शीघ्र पिघलनेवाला एक धातु है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ७ तथा द्रवणांक ४१० है। यह अम्ल में विलेय है।

प्राप्तिस्थान—कनाडा, रूस, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, पेरू, जापान, मेक्सिको तथा पोलैण्ड में मुख्यतः यशद की खानें हैं। भारत में राजस्थान और गुजरात इसके प्रमुख केन्द्र हैं।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष
रस—कषाय, तिक्त
विपाक—कटु
वीर्य—शीत

कर्म

दोषकर्म—यह कफपित्तशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह जन्तुघ्न और स्तम्भन है।

आभ्यन्तर—यह स्तम्भन, शोथहर, श्वासहर, वृष्य और बल्य है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफपैत्तिक विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—व्रण, पूयमेह, श्वेतप्रदर, कर्णस्राव तथा नेत्ररोगों में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसका द्रव डालते हैं। भस्म का मलहम व्रणों में लगाते हैं तथा अवचूर्णन करते हैं। नेत्ररोगों में इसके मलहम का अंजन करते हैं।

आभ्यन्तर—अन्त्रशोथ, ज्वर, गंडमाला, अपची, नाडीव्रण, भगन्दर, प्रमेह, श्वास, क्षय और पाण्डुरोगों में इसका प्रयोग करते हैं।

मात्रा—भस्म–१००–२५० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—यशदामृतमलहर, गंधकाम्लीय यशदद्रव, वसन्तमालती।

शोषण और उत्सर्ग—यह शोषित होकर यकृत् में तथा कुछ प्लीहा, वृक्क और अवटुग्रंथि में संचित होता है। इसका उत्सर्ग मुख्यतः पुरीष से तथा कुछ पित्त और मूत्र से होता है।

विषाक्त लक्षण—जीर्ण प्रतिश्याय, अजीर्ण, वातविकार, छर्दि, दौर्बल्य, भ्रम और प्रमेह ये लक्षण होते हैं।

निवारण—बला और हरीतकी का सेवन मिश्री से कराना चाहिए।[1]

वक्तव्य—यशद का प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है, उनमें छः ही धातु हैं। शार्ङ्गधर ने पित्तल को सातवाँ धातु माना है। सर्वप्रथम भावप्रकाश ने यशद का स्पष्ट उल्लेख कर सप्तधातुओं में इसकी गणना की। १४वीं शती के पूर्व यशद का उल्लेख नही मिलता।

× × × ×

'यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तनुत्।
चक्षुष्यं परमं मेहान् पांडुं श्वासं च नाशयेत्॥' (रसामृत)

७. लौह

नाम—सं०–लौह, अयः; हि०–लोहा; अ०–हदीद; फा०–आहन; लै०–फेरम् (Ferrum); अं०–आयरन (Iron)।

स्वरूप—यह चाँदी के सदृश और भारी धातु है। इससे एक विशिष्ट गंध आती है। यह जल और ऑक्सिजन के साथ शीघ्र संयुक्त हो जाता है जिससे जंग लग जाती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ७·७ है तथा गन्धकाम्ल और लवणाम्ल में विलीन होता हैं। निरुत्थ लौहभस्म आमले पर डालने से रंग बदलता नहीं, अन्यथा काला दाग आ जाता है।

जाति—कान्त, तीक्ष्ण और मुण्ड तीन प्रकार का लौह मिलता है। कान्तलौह दुर्लभ है। अतः तीक्ष्णलौह का ही प्रयोग होता है।

---

१. बलाभयां सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम्।
यशदस्य विकारस्तु शान्तिमायाति नान्यथा॥'

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्तिस्थान—लोहा की खानें प्रायः भारत के सभी राज्यों में हैं किन्तु विशेषतः बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तामिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश में हैं।

गुण

गुण—गुरु, रूक्ष

रस—कषाय, तिक्त, मधुर

विपाक—मधुर

वीर्य—शीत

कर्म

दोषकर्म—यह त्रिदोषहर है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—रक्तस्तम्भन और जन्तुघ्न है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—यह नाडीबल्य है।

पाचनसंस्थान—यह दीपन, ग्राही, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न है।

रक्तवहसंस्थान—शोणितस्थापन और शोथहर है।

श्वसनसंस्थान—कफघ्न और श्वासहर है।

प्रजननसंस्थान—वृष्य और आर्तवजनन है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रसंग्रहणीय है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—बल्य, लेखन और विषघ्न है।

शोषण और उत्सर्ग—यह आमाशय में क्लोराइड के रूप में तथा अन्त्र में फास्फेट, कार्बोनेट आदि अविलेय लवणों में परिणत होता है। ये लवण पुनः आहारद्रव्यों में उत्पन्न हाइड्रोजन सलफाइड तथा टैनिक एसिड से मिलकर सलफेट और टैनेट में बदल जाते हैं जो पुरीष के साथ बाहर निकलते हैं और जिससे पुरीष का रंग काला हो जाता है। लोह का शोषण मुख्यतः ग्रहणी और अंत्र से होता है तथा वहाँ से शोषित होकर यकृत्, प्लीहा और मज्जा में संचित रहता है। वहाँ से यह मुख्यतः पुरीष द्वारा तथा कुछ मूत्र द्वारा बाहर निकलता है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह त्रिदोषज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—गले के रोगों में इससे कुल्ला करते हैं। विसर्प आदि चर्मरोगों में लेप भी करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—उन्माद, अपस्मार और आमवात, वातव्याधि में देते हैं।

पाचनसंस्थान—अतिसार, ग्रहणी, गुल्म, यकृत्, प्लीहा, शूल, कामला और हलीमक में देते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्तवहसंस्थान—पाण्डु, सर्वांगशोथ में दिया जाता है।
श्वसनसंस्थान—तमकश्वास में प्रयुक्त होता है।
प्रजननसंस्थान—नपुंसकता में देते हैं।
मूत्रवहसंस्थान—प्रमेह में प्रयुक्त होता है।
त्वचा—कुष्ठ में लाभकर है।
तापक्रम—जीर्णज्वर तथा विषमज्वर में उपयोगी है।
सात्मीकरण—मेदोरोग तथा विषों में प्रयुक्त होता है।
मात्रा—¼–१ ग्रा०।
विशिष्ट योग—लोहासव, सर्वज्वरहर लोह, विषमज्वरान्तक लोह, नवायस, धात्रीलोह।
विषाक्त लक्षण—आमाशयशूल, हृल्लास, छर्दि, तृष्णा आदि उपद्रव होते हैं।
निवारण—ताजा गाय का दूध और मक्खन का सेवन करना चाहिए।
अपथ्य—कूष्माण्ड, तिलतैल, उड़द, राई, मद्य तथा अम्ल द्रव्यों का सेवन लोहभस्म के सेवनकाल में नहीं करना चाहिए।

× × × ×

'रूक्षं स्यात् खरलोहकं सुमधुरं पाकेऽथ वीर्यं हिमम्।
तिक्तोष्णं कफपित्तकुष्ठजठरप्लीहामपाण्डूवर्त्तिनुत्॥
सद्यः शूलहरं यकृत्क्षयजरामेहामवातापहम्,
दीप्तं चातिरसायनं बलकरं दुर्नामदाहापहम्॥' (र. र. स.)
'लोहं जन्तुविकारपाण्डुपवनक्षीणत्वपित्तामय-
स्थौल्यार्शोग्रहणीज्वरार्त्तिकफजित् शोफप्रमेहप्रणुत्।
गुल्मप्लीहविषापहं बलकरं कुष्ठाग्निमांद्यप्रणुत्,
सौख्यालम्बि रसायनं स्मृतिहरं कान्तादिकं किट्टवत्॥' (र. र. स.)

'एवं तुलामुपयुज्य कुष्ठमेहमेदःश्वयथुपाण्डुरोगोन्मादापस्मारानपहृत्य वर्षशतं जीवति।'
(सु. चि. १०)

८. मण्डूर

नाम—सं०–मण्डूर, लोहमल, लोहसिंघाणक; हि०–मण्डूर, लोहकीट, सिघार; अ०–खुब्सूलहदीद।

स्वरूप—लोहे की खानों के पास या लोहे को गलाते समय जो मलभाग पृथक् होता है उसे मण्डूर कहते हैं। मण्डूर जितना ही पुराना होगा उतना ही उत्तम माना जाता है। १०० वर्ष का मण्डूर उत्तम, ८० वर्ष का मध्यम और ६० वर्ष का अधम और उससे कम समय का अग्राह्य होता है।[1] कालपरिणाम से उसमें लघुत्व आ जाता

1. 'शताब्दमुत्तमं किट्टं मध्यं चाशीतिवर्षिकम्।
अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम्॥' (रसार्णव.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। इसके अतिरिक्त, छिद्ररहित, स्निग्ध, दृढ़, रक्ताभ तथा ग्राम से दूरी पर होने वाला मण्डूर प्रशस्त होता है।

प्राप्तिस्थान—लोहे की खानों के पास पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह एक प्रकार का फेरोफेरिक ऑक्साइड (Ferro-ferric oxide) है।

गुणकर्म

इसके गुणकर्म लोह के समान ही होते हैं किन्तु लोह की अपेक्षा यह शीघ्र पाचित और शोषित होता है अतः शीघ्र कार्यकारी है। यह विशेष कर कामला, कुम्भकामला, पांडु, हारिद्रक, हलीमक, सर्वांगशोथ, यकृत्-प्लीहा, अस्थिशोष, जीर्णज्वर, विषमज्वर, कृमि तथा अनार्त्तव में उपयोगी है।

मात्रा—$\frac{1}{4}$–१ ग्रा०।

विशिष्ट योग—मण्डूरवटक, पुनर्नवादिमंडूर।

× × × ×

'तच्चूर्णं मधुना लीढं पांडुं हन्ति सकामलम्।' (रसार्णव)

'किट्टं कषायं शिशिरं पाण्डुश्वयथुशोथजित्।
हलीमकं कामलां च हरते कुंभकामलाम्॥' (बृ. यो. त.)

'मंडूरं शिशिरं रुच्यं पाण्डुश्वयथुशोषजित्।
हलीमकं कामलां च प्लीहानं कुम्भकामलाम्॥' (यो. र.)

९. विमल

नाम—सं०–विमल; अं०–आयरन पायराइट (Iron Pyrite)।

स्वरूप—विमल स्निग्ध, वर्त्तुल, कोणयुक्त (प्रायः षट्कोण या द्वादशकोण) तथा फलकयुक्त (पहलदार) होता है।

जाति—वर्णभेद से यह तीन प्रकार का होता है—(१) स्वर्णविमल, (२) रौप्यविमल तथा (३) कांस्यविमल।

रासायनिक संघटन—यह लोह और गन्धक का यौगिक है।

गुणकर्म

यह कटु, तिक्त उष्णवीर्य, वातपित्तशामक, रक्तशोधक, रक्तवर्धक, शोथहर, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, अनुलोमन, पित्तसारक, वृष्य और रसायन है। इसका प्रयोग वातपैत्तिक रोगों में विशेषतः कुष्ठ, पांडु, कामला, शोथ, जीर्ण विषमज्वर, प्रमेह, अर्श, ग्रहणी, उदरशूल तथा क्षयरोग में करते हैं। अनुपानभेद से अन्य विकारों में भी देते हैं।

मात्रा—भस्म–१००–२०० मि० ग्रा०।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोऽतिरसायनः।' (र. चू.)
'विमलं कटु तिक्तोष्णं त्वग्दोषव्रणनाशनम्।' (रा. नि.)
'लीढो व्योषवरान्वितस्तु विमलो युक्तो घृतैः सेवितो
हन्याद्धातुगतान् ज्वरान् श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचीः।
मूलार्त्ति ग्रहणीं च शूलमतुलं यक्ष्मामयान् कामलां
सर्वान् पित्तमरुद्भवान् किमपरं योगैरशेषामयान्॥' (र. च.)

१०. काशीश

नाम—सं०–काशीश, खेचर, खग; हि०–कसीस, हीराकसीस; बं०–हिराकस; म०–हिराकस; अ०–जाजअख्जर; फा०–जाजसब्ज; अं०–आयरन सलफेट (Iron Sulphate)।

स्वरूप—यह नीलाभ तथा हरित दानेदार पदार्थ होता है। गरम करने पर जलीयांश सूख जाता है और श्वेत हो जाता है। जल में विलेय है।

जाति—शास्त्र में इसके दो भेद बतलाये गये हैं :—(१) बालुकाकाशीश या चूर्ण काशीश (२) पुष्पकाशीश। प्रथम भेद श्वेत, पीताभ चूर्ण रूप में मिलता है तथा दूसरा भेद स्वच्छ हरे रंग का होता है। बालुकासीस प्रायः प्राकृत और पुष्पकाशीश प्रायः कृत्रिम होता है।

रासायनिक संघठन—यह लोहे और गन्धक का यौगिक है। इसका सूत्र $FeSo_4 7H_2o$ है।

गुणकर्म

यह कषाय, तिक्त, अम्ल, उष्णवीर्य, वातश्लेष्महर, चक्षुष्य, केश्य, रक्तवर्धक; रक्तशोधक, शोथहर, दीपन, पाचन, अनुलोमन, आर्त्तवजनन तथा विषघ्न है। पूयाभिष्यन्द, नेत्रव्रण आदि में इसका बाह्य और आभ्यन्तर प्रयोग होता है। पालित्य रोग में भी बाह्याभ्यन्तर प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त, अग्निमांद्य, ग्रहणी; शूल, गुल्म, पांडु, यकृत् प्लीहा, रक्तविकार तथा रजोरोध में प्रयुक्त होता है। पाण्डु के लिए यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है।

मात्रा—१२५–२०० मि० ग्रा० (भस्म)।

विशिष्ट योग—काशीशद्रव, काशीशाद्य तैल, काशीशभस्म।

× × × ×

काशीशद्वयमम्लोष्णं तिक्तं च तुवरं तथा। वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्र्यं कण्डुविषप्रणुत्॥
मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्त्तितम्।' (आ. प्र.)
'…सोष्णं कषायाम्लमतीव नेत्र्यम्। विषानिलश्लेष्मगदव्रणघ्नं श्वित्रक्षयघ्नं कचरञ्जनं च॥
सेवितं हन्ति वेगेन श्वित्रं पाण्डुक्षयामयम्। गुल्मप्लीहगदं शूलं मूत्ररोगं विशेषतः॥
रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि। आमसंशोषणं श्रेष्ठं मन्दाग्निपरिदीपनम्॥
पलितं वलिभिः सार्धं विनाशयति निश्चितम्।' (र. र. स.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

११. गैरिक

नाम—सं०—गैरिक, गिरिज, गैरेय, रक्तधातु; हि०—गेरू; बं०—गिरिमाटी; म०—गेरू; गु०—गेरू; अ०—मग्रः; मग्रत; फा०—गिले सुर्ख; अं०—ऑकर (Ochre)।

स्वरूप और जाति—गैरिक दो प्रकार का है—(१) पाषाणगैरिक, (२) स्वर्णगैरिक। पाषाणगैरिक कठोर, रूक्ष तथा श्यामाभ रक्त या फीके रक्तवर्ण का होता है। स्वर्णगैरिक स्निग्ध, मृदु तथा अत्यन्त रक्त होता है।

प्राप्तिस्थान—उत्तम गैरिक भारत, दक्षिण अफ्रीका, इटली, फ्रांस और अमेरिका में उपलब्ध होता है। भारत में बिहार, उड़ीसा, गुजरात, मध्यप्रदेश में विशेष होता है।

रासायनिक संघटन—यह लोहा और ऑक्सिजन का यौगिक है।

गुणकर्म

गैरिक स्निग्ध, कषाय-मधुर, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, चक्षुष्य, स्तम्भन, रक्तशोधक और विषघ्न है। इसका प्रयोग रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तप्रदर, नेत्ररोग, विस्फोट, विसर्प; छर्दि, हिक्का, विष एवं अग्निदग्ध में करते हैं।

मात्रा—शुद्ध गैरिक १–२ ग्रा०।

विशिष्ट योग—कामदुघा, वज्रदन्तमंजन।

× × × ×

'गैरिकद्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम्। चक्षुष्यं दाहपित्तास्रकफहिक्काविषापहम्॥'
(भा. प्र.)

'गैरिकं मधुरं शीतं कषायं व्रणरोपणम्। विस्फोटार्शोऽग्निदाहघ्नं कण्डूवीसर्पनाशनम्॥'
(रा. नि.)

'स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत्। हिक्कावमिविषघ्नं च दाहघ्नं स्वर्णगैरिकम्॥
पाषाणगैरिकं चान्यत् पूर्वस्मादल्पकं गुणैः।' (र. चू.)

१२. कान्तपाषाण

नाम—सं०—कान्तपाषाण, अयस्कान्त, लोहकर्षक, चुम्बक, चुम्बकपाषाण; हि०—चुम्बकपत्थर; अ०—मिकनातीस; अं०—मैगनेटाइट (Magnetite), लोडस्टोन (Loadstone), मैगनेटिक आयरन ओर (Magnetic Iron-ore)।

स्वरूप—यह चुम्बकत्वयुक्त एक खनिज है जिससे उत्तम लौह निकाला जाता है।

रासायनिक संघटन—यह लोह और आक्सिजन का यौगिक है। इसका सूत्र Fe_3O_4 है।

गुणकर्म

यह शीतवीर्य, शोणितस्थापन, बल्य, वृष्य तथा लेखन है। इसका प्रयोग पांडु,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्षय, कास-श्वास, जीर्णज्वर, मूर्च्छा, रक्तपित्त, शुक्रदौर्बल्य, मेदोरोग और विष में करते हैं।

मात्रा—१२५–२५० मि० ग्रा० (भस्म)।

× × × ×

'चुम्बको लेखनः शीतो मेदोविषगदापहः।' (भा. प्र.)

१३. शिलाजतु

नाम—सं०–शिलाजतु, गिरिज, शैलनिर्यास, अश्मज, हि०–शिलाजीत।

स्वरूप—ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तीव्र किरणों से पर्वतशिलाओं से एक गाढ़ा स्राव बाहर निकलता है,[1] इसे 'शिलाजतु' कहते हैं। उत्तम शिलाजतु मृदु, स्निग्ध, स्वच्छ एवं गुरु होता है तथा उससे गोमूत्र के सदृश गन्ध आती है। यह जल में विलेय है।

जाति—संहिताओं में यह चार प्रकार का बतलाया गया है :—(१) सौवर्ण (२) राजत (३) ताम्र और (४) आयस। सुवर्ण आदि धातुयुक्त खनिजों के संपर्क से ये चार प्रकार के शिलाजीत होते हैं। इनका वर्ण क्रमशः रक्त, पाण्डुर, नील और कृष्ण होता है। इसमें आयस शिलाजतु सर्वोत्तम होता है और संप्रति इसी का व्यवहार होता है। अन्य भेद दुष्प्राप्य हैं। शोधनपद्धति के भेद से भी यह दो प्रकार का होता है—(१) सूर्यतापी–जो सूर्य की किरणों से शुद्ध किया जाता है तथा (२) अग्नितापी–जो आग की आंच में शुद्ध किया जाता है। सूर्यतापी उत्तम माना जाता है।

प्राप्तिस्थान—यह विशेषतः नेपाल, भूटान, तिब्बत तथा कुमाऊँ के पर्वतों से प्राप्त होता है।

रासायनिक संघटन—इसमें ऐमिनो एसिड, इलैगिक एसिड, बेञ्जोइक अम्ल, बेञ्जोकुमारिन आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष
रस—कटु, तिक्त, कषाय
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक और पित्तसंशोधन है।

---

१. कतिपय आधुनिक विद्वानों का मत है कि शिलाजतु पार्थिव द्रव्य न होकर वानस्पतिक है जो पर्वतीय वनस्पतियों के निर्यास से बनता है। केवल शिलाओं से बह कर आने से ही यह 'शिलाजतु' कहलाया। देखें :—

V. K. Lal & P. Joshi : Silajatu–A Vegetable product, J. R. I. M. Vol. 13, No. 3, 1978.

S. Ghoshal et al : Shilajit–its chemical constituents, J. P. S., Vol. 65, No. 5 (May, 1976).

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह जन्तुघ्न, शोथहर और वेदनास्थापन है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—मेध्य और नाडीबल्य है।

पाचनसंस्थान—दीपन, पाचन, अनुलोमन, पित्तसारक, मृदुरेचन तथा कृमिघ्न है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य, रक्तशोधक और शोथहर है। यह छोटी धमनियों को संकुचित करता है।

श्वसनसंस्थान—कफनिःसारक है।

प्रजननसंस्थान—वृष्य है।

मूत्रवहसंस्थान—प्रमेहघ्न तथा अश्मरीभेदन है।

त्वचा—कुष्ठघ्न है।

तापक्रम—ज्वरघ्न हैं।

सात्मीकरण—बल्य, रसायन, लेखन और योगवाही है। विषघ्न भी है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—कफवातविकारों में प्रयुक्त होता है। पित्तसंशोधनार्थ भी दिया जाता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—अभिघात, शोथ और वेदना में इसका लेप करते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—उन्माद, अपस्मार तथा आमवात, सन्धिवात आदि वातव्याधि में देते हैं।

पाचनसंस्थान—उदररोग, शूल, गुल्म अर्श, कामला और कृमि में इसका प्रयोग करते हैं।

रक्तवहसंस्थान—हृद्रोग, फिरङ्ग, उपदंश, वातरक्त, सन्धिशोथ, शोथ, श्लीपद, गण्डमाला में प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—कास, कुकुरखांसी, श्वास में उपयोगी है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रदौर्बल्य में देते हैं। श्वेतप्रदर में भी लाभकर है।

मूत्रवहसंस्थान—प्रमेह, पूयमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र में प्रयुक्त होता है।

त्वचा—कुष्ठ में दिया जाता है।

तापक्रम—जीर्ण विषमज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—दौर्बल्य, क्षय, शोष, मेदोरोग तथा गरदोष में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—१२५ मि० ग्रा० से बढ़ा कर क्रमशः २–६ ग्रा० तक।

विशिष्ट योग—चन्द्रप्रभा वटी, शिलाजत्वादि लोह, चिन्तामणि रस।

वक्तव्य—शोधन के पश्चात् ही इसका प्रयोग करना चाहिए। सेवनकाल में विदाही, गुरु द्रव्य तथा कुलत्थ का सेवन वर्जित है।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'शिलाजं कटुतिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम्। छेदि योगावहं हन्ति कफमेदोश्मशर्करा:॥
मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातास्राशांसि पाण्डुताम्। अपस्मारं तथोन्मादं शोथकुष्ठोदरक्रिमीन्॥'
(भा. प्र.)

'तत् सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम्। कटुपाक्युष्णवीर्यं च शोषणं छेदनं तथा॥
मेहं कुष्ठमपस्मारमुन्मादं श्लीपदं गरम्। शोषं शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम्॥
अपोहत्यचिरात् कालाच्छिलाजतु निषेवितम्।
शर्करां चिरसम्भूतां निहन्ति च तथाश्मरीम्॥' (सु. चि. १३)

'अनम्लं च कषायं च कटु पाके शिलाजतु। नात्युष्णशीतं............॥
जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकरं परम्। मेधास्मृतिकरं चैव धीराशी तत् प्रयोजयेत्॥
वातपित्तकफघ्नैस्तु निर्यूहैस्तत् सुभावितम्। वीर्योत्कर्षं परं याति सर्वैरेकैकशोपि वा॥'
(च. चि. १)

'न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपः शिलाह्वयं यं न जयेत् प्रसह्य।
तत्कालयोगैर्विधिभिः प्रयुक्तं स्वस्थस्य चोर्जां विपुलां ददाति॥' (च. चि. १)

'उपयुज्य तुलामेवं गिरिजादमृतोपमात्। वपुर्वर्णबलोपेतो मधुमेहविवर्जितः॥
जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोऽमरसन्निभः।' (सु. चि. १)

१४. अभ्रक

नाम—सं०—अभ्रक, अभ्र, गगन, व्योम; हिं०—अभ्रक, अबरख; अ०—तलक, अं०—माइका (Mica)।

स्वरूप—उत्तम अभ्रक नीलाञ्जन के सदृश, स्निग्ध, चिकना, भारी, मृदु तथा जिसके दल आसानी से पृथक् किये जा सके ऐसा होता हैं।[1]

जाति—अभ्रक वर्णभेद से चार प्रकार का होता है—श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण। कृष्ण अभ्रक भी चार प्रकार का होता है :—(१) पिनाक, (२) नाग, (३) मण्डूक और (४) वज्र। वज्र अभ्रक आग में रखने पर स्थिर रहता है। यही औषधकर्म में प्रशस्त माना गया है। आधुनिक दृष्टि से, muscovite, phlogopite, biotite, paragonite, lepidolite आदि प्रमुख जातियाँ हैं। श्वेत अभ्रक मस्कोवाइट तथा कृष्ण अभ्रक Biotite है। पीत और रक्त अभ्रक वर्णभेद से Phlogopite प्रतीत होता है।

प्राप्तिस्थान—विश्व का ८०% अभ्रक भारत उपलब्ध कराता है। उसके बाद दूसरे स्थान पर ब्राजिल है। इसके अतिरिक्त, रूस, अर्जेण्टिना, कनाडा, मडागास्कर, पेरु और बोलिविया में भी पाया जाता है। भारत में यह बिहार (हजारीबाग, गया और मुंगेर जिले), केरल, आन्ध्रप्रदेश और राजस्थान में पाया जाता है। बिहार का अभ्रक सर्वोत्तम होता है।

---

१. नीलांजनोपमं स्निग्धं भारपूर्णं महोज्ज्वलम्।
निर्मोच्यपत्रं मृदुलं स्वभ्रं श्रेष्ठमिहोच्यते॥ (र. त.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संघटन—इसमें लोह, अलुमिनियम, मैंगनीशियम, सोडियम, पोटाशियम और सिलिका होते हैं।

गुण

गुण—लघु, स्निग्ध
रस—मधुर, कषाय
विपाक—मधुर
वीर्य—शीत
प्रभाव—त्रिदोषहर

कर्म

अभ्रकभस्म बल्य और रसायन है। अतः शरीर के सभी अंगों पर इसका बल्य कर्म होता है। विशेषतः यह मेध्य, नाडीबल्य, दीपन, अनुलोमन, हृद्य, शोणितास्थापन, शोथहर, कफघ्न, वृष्य, प्रमेहघ्न, ज्वरघ्न तथा रसायन है।

प्रयोग

इसका प्रयोग उन्माद, अपस्मार, भ्रम, वातव्याधि, ग्रहणी, अन्त्रशोष, अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, रक्तपित्त, अर्श, कुष्ठ, शोथ, ग्रन्थि, कास, श्वास, ध्वजभंग, प्रमेह, जीर्णज्वर, यक्ष्मा, क्षय, बालशोष में होता है।

मात्रा—भस्म–१२५–२५० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—ज्वरार्यभ्र, महालक्ष्मीविलास, शृंगाराभ्र, नागार्जुनाभ्र।

वक्तव्य—सहस्रपुटी अभ्रभस्म को मधु में खूब खरल कर देना चाहिए। इससे उसका शोषण शीघ्र और उत्तम होता है।

× × × ×

'अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुःकरं धातुविवर्धनं च।
हन्यात्त्रिदोषव्रणमेहकुष्ठप्लीहोदरग्रंथिविषकृमींश्च॥
रोगान् हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते।
तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव॥
दीर्घायुष्यान् जनयति सुतान् विक्रमैः सिंहतुल्या-
न्मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम्॥' (भा. प्र.)

'मृतं सत्वं हरेन्मृत्युं सर्वरोगविनाशनम्। क्षयं पाण्डुं ग्रहणिकां श्वासं शूलं सकामलम्॥
ज्वरान् मेहांश्च कासांश्च गुल्मान् पंचविधानपि।
मन्दाग्निमुदराण्येवमर्शांसि विविधानि च॥
अनुपानप्रयोगेण सर्वरोगान् निहन्ति च।
अभ्रसत्वगुणा वक्तुं शक्यन्ते न समासतः॥' (र. प्र. सु.)

१५. पुष्पाञ्जन

नाम—सं०–पुष्पाञ्जन, रीतिज, रीतिपुष्प; हि०–जस्ते का फूल; फा०–सफेद ए काशगरी; अं०–जिंक ऑक्साइड (Zinc oxide)।

स्वरूप—यह श्वेत, स्निग्ध चूर्ण होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्तिस्थान—यह कहीं-कहीं खनिज रूप में प्राप्त होता है और कृत्रिम रूप से राजस्थान में बनता है।

रासायनिक संघटन—यशद और आक्सिजन का यौगिक है। इसका सूत्र ZnO है।

गुण-कर्म

यह शीतवीर्य, पित्तनाशन, व्रणरोपण, विषघ्न ज्वरघ्न और हिक्कानिग्रहण है। इसका प्रयोग नेत्ररोग, व्रण, चर्मरोग, ज्वर, विष तथा हिक्का में करते हैं।

मात्रा—१२५–२५० मि० ग्रा०।

× × × ×

'पुष्पाञ्जनं तु शिशिरं स्निग्धं पित्तप्रणाशनम्। अभिष्यन्दप्रशमनं परं दाहविनाशनम्॥
विचर्चिकादित्वग्दोषशमनं व्रणरोपणम्। समाख्यातं विशेषेण हिक्कापंचकनाशनम्॥'
(र. त.)

१६. सिन्दूर

नाम—सं०–सिन्दूर, रक्तरेणु, नागज; हि०–सिन्दूर, सेंदुर; अ०–इस्रिंज, उसरज्; फा०–सिरिंज, सुरंज; लै०–प्लम्बाइ ऑक्सिडम रुब्रम् (Plumbi oxidum rubrum); अं०–रेड ऑक्साइड ऑफ लेड (Red oxide of lead); रेड लेड (Red lead)।

स्वरूप—यह लाल, चमकीला, भारी चूर्ण होता है।

प्राप्तिस्थान—यह कृत्रिम रीति से बनाया जाता है।

रासायनिक संघटन—नाग और आक्सिजन के संयोग से बनता है। इसका सूत्र $Pb_3 O_4$ है।

गुण-कर्म

यह उष्णवीर्य, व्रणशोधन, रोपण, कुष्ठघ्न, विषघ्न और सन्धानीय है। व्रण, चर्मरोग विष आदि में इसका मलहम बना कर लगाते हैं।

वक्तव्य—इसका बाह्य प्रयोग ही होता है, आभ्यन्तर नहीं।

विशिष्ट योग—सिन्दूराद्य तैल, सिन्दूराद्य मलहर।

× × × ×

'सिन्दूरं क्षुद्रकुष्ठघ्नं त्वच्यं व्रणविशोधनम्। भग्नसंधानजननं तथैव व्रणरोपणम्॥
पामाविचर्चिकासिध्मवीसर्पशमनं परम्। भूतघ्नं च विशेषेण रक्तदोषनिषूदनम्॥' (र. त.)
'सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम्। भग्नसंधानजननं व्रणशोधनरोपणम्॥' (भा. प्र.)

१७. मृद्दारश्रृंग

नाम—सं०–मृद्दारश्रृंग; हि०–मुरदासंग; गु०–बोदार; म०–मुरदासंज;

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

फा०—मुरदासंग, मुर्दारसंग; लै०—प्लम्बाइ ऑक्साइडम् (Plumbi oxidum) अं०—लेड मोनॉक्साइड (Lead monoxide), लिथार्ज (Litharge)।

स्वरूप—यह दलयुक्त, लोहिताभ पीत तथा भारी पदार्थ है । जल में नहीं घुलता है । हलके नत्रिकाम्ल तथा सिरकाम्ल में घुल जाता है ।

प्राप्तिस्थान—यह गुजरात में आबू पर्वत के पास पाया जाता है ।

रासायनिक संघटन—यह नाग और ऑक्सिजन का यौगिक है ।

गुण-कर्म

यह शीतवीर्य, लेखन, व्रणशोधन, रोपण, त्वग्दोषहर तथा केशरंजन है। अन्तःप्रयोग में यह कृमिघ्न और रेचन है। इसका बाह्य प्रयोग व्रण या चर्मरोग तथा पालित्य में करते हैं। अन्तः प्रयोग विबन्ध, उदररोग और कृमि में होता है। बाह्य प्रयोग ही प्रायः होता है।

मात्रा—१२५–२५० मि० ग्रा० ।

विशिष्ट योग—मृद्दारशृङ्गाद्य मलहर ।

× × × ×

'कृमिघ्नं रेचनं चैव व्रणशोधनरोपणम् । मृद्दारशृङ्गकं प्रोक्तं लेखनं केशरञ्जनम् ॥'
(र. प्र. सु.)

'मृद्दारशृङ्गं शिशिरं परं वातकफापहम् । शिरःकव्रणहृत् केश्यं व्रणरोपणमुत्तमम् ॥
भग्नसन्धानजननं पामाकच्छूतिकादिनुत् । संकोचकं विशेषेण त्वग्दोषशमनं मतम् ॥'
(र. त.)

१८. सफेदा

नाम—हि०—सफेदा; अ०—इस्फीदाज; फा०—इस्फेदाब; लै०—प्लम्बाइ कार्बोनस (Plumbi Corbonas); अं०—लेड कार्बोनेट (Lead Carbonate); ह्वाइट लेड (White lead)।

स्वरूप—यह श्वेत, स्निग्ध और भारी चूर्ण है ।

प्राप्तिस्थान—कृत्रिम रूप से बनाया जाता है ।

गुणकर्म

यह शोषण, कण्डूघ्न, व्रणरोपण, रक्तस्तम्भन और दाहप्रशमन है। व्रण, क्षत तथा अग्निदग्ध में इसका मलहम लगाते हैं। खुजली में सफेदा अच्छा लाभ करता है। सफेदा, कबीला, नारियल तेल में मिला कर लगाने से खुजली नष्ट हो जाती है।

इसका आभ्यन्तर प्रयोग नहीं होता ।

१९. सौवीराञ्जन

नाम—सं०—सौवीराञ्जन, नीलाञ्जन; हि०—सुरमा, काला सुरमा; अ०—इस्मद,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कोहल; फा०-सुरमा; अं०-लेड सलफाइड (Lead Sulphide), गैलेना (Galena)।

स्वरूप—यह बाहर की ओर श्यामवर्ण, तोड़ने पर चमकीला तथा घिसने पर अत्यन्त कृष्ण होता है।[1]

प्राप्तिस्थान—नाग मुख्यतः प्रकृति में सौवीराञ्जन के रूप में ही उपलब्ध होता है (देखें-नाग)।

रासायनिक संघटन—यह नाग और गन्धक के योग से बनता है।

गुण-कर्म

सौवीराञ्जन गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, त्रिदोषघ्न, चक्षुष्य, ग्राही, व्रणशोधन-रोपण तथा रसायन और विषघ्न है। इसका प्रयोग नेत्ररोग, व्रण, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, हिक्का एवं विष में करते हैं। सुवर्ण आदि धातुओं के मारण में भी प्रयुक्त होता है।

मात्रा—५०-१०० मि० ग्रा०।

वक्तव्य—सुश्रुत ने अञ्जनादि गण (सू० ३८।४१-४२) में अञ्जन का पाठ किया है। डल्हण ने इसे सौवीराञ्जन माना है।

× × × ×

'सौवीरं तु गुरु स्निग्धं नेत्र्यं दोषत्रयापहम्। रसायनं सुवर्णघ्नं लोहमार्दवकारकम्॥' (र. चू.)
'सौवीरमञ्जनं ग्राहि स्निग्धं च तुहिनोपमम्। रक्तपित्तप्रशमनं नेत्रामयहरं परम्॥
विषहिक्कापहं कामं व्रणशोधनरोपणम्। परं रजोरोधकरं रक्तप्रदरनाशनम्॥' (र. त.)
अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिबर्हणः।
विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं भृशम्॥ (सु. सू. ३८)

२०. पित्तल

नाम—सं०-पित्तल, आरकूट, रीति; हि०-पीतल; अं०-ब्रास (Brass)।

स्वरूप—यह पीले रंग का, चमकदार, मृदु तथा भारी उपधातु है। जो आग में तपा कर कांजी में बुझाने पर ताम्रवर्ण हो जाय वह उत्तम पित्तल समझना चाहिए।

जाति—भावप्रकाश में रीति और राजरीति ये दो प्रकार पित्तल के कहे गये हैं।

रासायनिक संघटन—दो भाग ताम्र और एक भाग यशद को एकत्र मिलाने से पित्तल बनता है।

गुण-कर्म

यह रूक्ष, तिक्त, लवण, किंचित् उष्ण, शोधन, लेखन, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न है। इसका प्रयोग रक्तविकार, कृमि, कुष्ठ, पांडु में होता है।

मात्रा—१२५-२५० मि० ग्रा० (भस्म)।

---

१. 'बाह्यतः खलु धूमाभं भंगे स्वतिसमुज्ज्वलम्। घर्षे खलु मषीवर्णं सौवीराञ्जनमुच्यते॥' (र. त.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशिष्ट योग—पित्तलरसायन।

वक्तव्य—शार्ङ्गधर ने पित्तल को सप्तधातु में परिगणित किया है।

× × × ×

'रीतिकायुगलं रूक्षं तिक्तं च लवणं रसे। शोधनं पाण्डुरोगघ्नं क्रिमिघ्नं नातिलेखनम्॥' (भा.प्र.)

२१. कांस्य

नाम—सं०-कांस्य, घोष, कांसक; हि०-काँसा; अं०-बेल मेटल (Bell metal)।

स्वरूप—यह मृदु, स्निग्ध, दृढ, सुनाद, मिश्रलोह है जो अधिकतर घंटा आदि बनाने के काम में आता है।

रासायनिक संघटन—यह आठ भाग ताम्र और दो भाग वंग को एकत्र मिलाने से बनता है।

गुण-कर्म

यह लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, लेखन, चक्षुष्य, क्रिमिघ्न और कुष्ठघ्न है। इसका प्रयोग नेत्ररोग, क्रिमि, कुष्ठ में करते हैं।

मात्रा—१२५-२५० मि० ग्रा०।

× × × ×

'कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम्। गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम्॥' (भा.प्र.)

'कांस्यं लघु च तिक्तोष्णं लेखनं दृक्प्रसादनम्। क्रिमिकुष्ठहरं वातपित्तघ्नं आजने हितम्॥' (र. चू.)

२२. माक्षिक

नाम—सं०-माक्षिक, ताप्य, तापीज, सुवर्णमाक्षिक; हि०-सोनामाखी; अ०-मारकशीशा; अं०-चेल्कोपायराइट (Chalcopyrite), कापर पायराइट (Copper Pyrite)।

स्वरूप—उत्तम माक्षिक स्निग्ध, गुरु, बाहर से कृष्णाभ, तोड़ने पर भीतर स्वर्णवर्ण तथा कसौटी पर घिसने से सोने जैसा तथा कोणरहित होता है। जल में अविलेय तथा अम्ल में विलेय है।

जाति—माक्षिक वर्णभेद से मुख्यतः दो प्रकार का माना जाता है :—(१) स्वर्णमाक्षिक (२) रौप्यमाक्षिक। कुछ लोग तीसरा भेद 'कांस्यमाक्षिक' भी मानते हैं।

रासायनिक संघटन—यह, ताम्र, लौह तथा गन्धक का यौगिक है। उत्तम स्वर्णमाक्षिक में $\frac{1}{3}$ ताम्र होता है।

गुण-कर्म

माक्षिक लघु, मधुरतिक्तकषाय, शीतवीर्य तथा त्रिदोषहर है। यह शामक, स्तम्भन, रक्तप्रसादन, बल्य, रसायन और योगवाही है। शिरःशूल, भ्रम, अनिद्रा, मदात्यय,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पित्ताभिष्यन्द, हृद्द्रव, शोथ, रक्तपित्त, अम्लपित्त, अर्श, विसूचिका; ग्रन्थिशोथ, प्रमेह, शुक्रदौर्बल्य, प्रदर, चर्मरोग, दौर्बल्य, पाण्डु, कामला और विष में इसका प्रयोग होता है।

मात्रा—१२५-२५० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—ताप्यादि लोह, गर्भविनोद।

× × × ×

'सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम्। चक्षुष्यं बस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरान्॥
'अर्शः शोफमनिद्रां च त्रिदोषमपि नाशयेत्।' (भा. प्र.)
'माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्षयकुष्ठनुत्। कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम्॥' (र. मं.)
'एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम्। मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम्॥
पिबन् हन्ति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान्।' (सु. चि. १३)

२३. तुत्थ

नाम—सं०-तुत्थ, शिखिग्रीव, मयूरक, सस्यक, अमृतासंग; हि०-तूतिया, नीला थोथा; म०-मोरचूत; गु०-मोरथुथु; अ०-तूतियाए अख्जर; लै०-क्युप्राइ सल्फस (Cupri sulphas); अं०-कॉपर सलफेट (Copper sulphate); ब्लु विट्रिओल (Blue vitriol)।

स्वरूप—तुत्थ गुरु, स्निग्ध, चमकीला स्फटिकाकार तथा मयूरकण्ठ के समान नीलवर्ण होता है। यह तिगुने ठण्डे जल में विलेय है।

प्राप्तिस्थान—यह कहीं-कहीं प्राकृत और अधिकांश ताम्र, गन्धकाम्ल और जल के संयोग से बनाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह ताम्र, गन्धकाम्ल और जल का यौगिक है। इसका सूत्र $CuSo4\ 5H_2O$ है।

गुण-कर्म

यह लघु, कटु, कषाय, क्षार, उष्णवीर्य, लेखन, भेदन, चक्षुष्य, व्रणशोधन, कुष्ठघ्न, कृमिघ्न और विषघ्न है। इसका बाह्य प्रयोग दुष्टव्रण, पोथकी आदि नेत्ररोग तथा दद्रु आदि चर्मरोगों में करते हैं। आभ्यन्तर प्रयोग रक्तविकार तथा विषों में वमनार्थ करते हैं। विशेषतः स्फुरक-विष में यह वामक और अगद दोनों रूप में कार्य करता है।

मात्रा—भस्म-१५-१०० मि० ग्रा०, वमनार्थ-२५०-५०० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—तुत्थकद्रव, तुत्थामृतमलहर, तुत्थामृता वटी, गर्भविलास रस।

शोषण और उत्सर्ग—इसका शोषण अत्यन्त मन्दगति से होता है और शरीर में जाकर यकृत्, वृक्क और प्लीहा में सञ्चित होता है। इसका उत्सर्ग मुख्यतः पुरीष से तथा कुछ पित्त, मूत्र, लाला और स्वेद से होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विषाक्त लक्षण—इसके अधिक प्रयोग से पाचनसंस्थान में क्षोभ होने के कारण शूल, छर्दि, अतिसार आदि लक्षण होते हैं।

निवारण—वमन कराने के बाद मधुर-स्निग्ध पेय देना चाहिए।

× × × ×

'तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु। लेखनं भेदनं चोष्णं चक्षुष्यं कफपित्तहृत्॥
विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नम्। (भा. प्र.)
'तुत्थकं लेखनं भेदि कषायं मधुरं लघु। क्रिमिघ्नमथ चक्षुष्यं मेहमेदोहरं परम्॥
कफपित्तहरं बल्यं शूलहृत्कुष्ठनाशनम्। श्वित्रापहं त्वम्लपित्तहरं चैव रसायनम्॥
तुत्थं सङ्कोचनकरं नाडीनां बलकृत्परम्। त्वग्दोषशमनं कामं विशेषाद्रुचिरं मतम्॥ (र.त.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चतुर्थ अध्याय

रत्न-उपरत्न

रमणीय होने से 'रत्न' संज्ञा है। रत्नों की संख्या नव है :—(१) हीरक, (२) माणिक्य, (३) पुष्पराग, (४) नील, (५) तार्क्ष्य, (६) वैदूर्य, (७) गोमेद, (८) मुक्ता, (९) प्रवाल। ये क्रमशः शुक्र, सूर्य, गुरु, शनि, बुध केतु, राहु, चन्द्र तथा मंगल के लिए विशिष्ट रत्न माने गए हैं। इनमें मुक्ता और प्रवाल जांगम द्रव्यों में हैं और उनका वर्णन वहीं किया गया है। शेष रत्नों का वर्णन यहाँ किया जायगा।

रत्नों का सामान्य गुणकर्म

रत्न सामान्यतः मधुर, सर, शीतवर्ण, चक्षुष्य, विषघ्न, बल्य और ग्रहदोषनाशन हैं। विशिष्ट ग्रहबाधा में विशिष्ट रत्न का धारण करते हैं।

विशिष्ट योग—नवरत्नगर्भपोट्टली।

मात्रा—१५-६० मि० ग्रा०।

× × × ×

'रत्नानि स्निग्धानि स्वादुमधुराणि सराणि च। चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च।
माङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च।' (भा. प्र.)

१. हीरक

नाम—सं०-हीरक, वज्र, कुलिश, भिदुर; हि०-हीरा; अ०-अल्मास; अं०-डायमण्ड (Diamond)।

स्वरूप—यह श्वेतवर्ण, अष्टकोण महारत्न है। इसका काठिन्य १०, विशिष्ट गुरुत्व ३·५२ और द्रवणांक १५३०° है। कभी-कभी गुलाबी, हरा, नीला भी मिलता है किन्तु पीला और काला नहीं मिलता। जो हीरा कसौटी पर घिसने से बिलकुल न घिसे तथा दूसरे धातुओं को क्षत कर दे वह उत्तम हीरा माना जाता है।

प्राप्तिस्थान—९५% हीरा दक्षिण अफ्रीका से प्राप्त होता है। भारत में इसकी उपलब्धि प्रायः नगण्य है।

रासायनिक संघटन—यह विशुद्ध कार्बन है।

गुण-कर्म

हीरकभस्म षड्रस, त्रिदोषघ्न, मेध्य, वृष्य, बल्य, रसायन और योगवाही है। हृद्रोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु, क्लैब्य, शोष आदि में प्रयुक्त होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशिष्ट योग—कन्दर्पकोकिल, हीरकरसायन।

मात्रा—४–८ मि० ग्रा०।

× × × ×

सुमृतं हीरकं हृद्यं परमं षड्रसान्वितम्। योगवाहि मतं चैतद् सर्वोत्कृष्टं रसायनम्॥
राजयक्ष्मप्रशमनं मेहमेदोविनाशनम्। पाण्डुशोथोदरहरं तथा क्लैब्यहरं परम्॥
वृष्यं महायुष्यमतीव नेत्र्यं त्रिदोषघ्नमतीव वर्ण्यम्।
मेध्यं विशेषाद् विविधामयघ्नं सुधोपमं स्यात् सुमृतं तु हीरम्॥' (र. त.)

२. माणिक्य

नाम—सं०–माणिक्य, पद्मराग, सौगन्धिक; हि०–मानिक; अ०–याकूत सुर्ख; अं०–रूबी (Ruby)।

स्वरूप—माणिक्य लाल कमल के सदृश रक्तवर्ण, मृदु और स्निग्ध होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ४ और काठिन्य ९ है। यह कोरण्डम (Al_2O_3) का एक प्रकार है।

प्राप्तिस्थान—बर्मा, श्रीलंका, थाइलैण्ड, नेपाल में इसकी खानें हैं। बर्मा में मोगक स्थान की माणिक्य खानें प्रसिद्ध हैं। भारत में यह कश्मीर, आन्ध्रप्रदेश, आसाम, मध्यप्रदेश, बिहार, कर्नाटक, तामिलनाडु, उड़ीसा की खानों में पाया जाता हैं।

रासायनिक संघटन—यह अल्युमिनियम, लौह और क्रोमियम का ऑक्साइड है।

गुण-कर्म

यह मधुर, स्निग्ध, शीतल, वातपित्तशामक, हृद्य, मेध्य, वृष्य और रसायन है। इसका प्रयोग उन्माद, भ्रम, हृद्रोग, उरःक्षत, क्षय और रक्तपित्त में करते हैं।

विशिष्ट योग—माणिक्यमिहिरोदय।

मात्रा—३०–६० मि० ग्रा०।

× × × ×

'माणिक्यं सुमृतं मेध्यं मधुरं तु रसायनम्।
दीपनं वृष्यमायुष्यं वातपित्तहरं परम्॥' (र. त.)
"माणिक्यं मधुरं स्निग्धं वृष्यं हृद्यं च दीपनम्। मेध्यं रसायनं वर्ण्यं वातपित्तवयार्तिनुत्॥'
(रसामृत)

३. पुष्पराग

नाम—सं०–पुष्पराग, पुष्पराज; हि०–पुखराज; फा०–याकूत जर्द; अं०–टोपेज (Topaz)।

स्वरूप—यह अमलतास के पुष्प के सदृश पीतवर्ण या पीताभ श्वेत, मृदु, स्निग्ध और चतुष्कोण होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३·५ और काठिन्य ७ है।

प्राप्तिस्थान—यह उत्तरी एशिया, श्रीलंका और बर्मा में पाया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संघटन—यह अल्युमिनियम और ऑक्सिजन का यौगिक है अल्प मात्रा में लोह आदि भी पाये जाते हैं।

गुण-कर्म

यह लघु, शीतवीर्य, कफवातशामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कुष्ठघ्न, दाहप्रशमन, रसायन और विषघ्न है। इसका प्रयोग अर्श, कुष्ठ, विष और मस्तिष्कदौर्बल्य में करते हैं।

मात्रा—३०-१२० मि० ग्रा०।

× × × ×

'पुष्पराजं तु शिशिरं दीपनं पाचनं परम्। कफवातप्रशमनं कुष्ठच्छर्दिनिबर्हणम्॥
विषघ्नं दाहशमनं गुदजामयनाशनम्। मेध्यं बृंहणमायुष्यं रसज्ञैः परिकीर्तितम्॥
(र. त.)

४. नील

नाम—सं०-नील; हि०-नीलम; अ०-याकूत कबूद; अं०-सेफायर (Sapphire)।

स्वरूप—यह नीलवर्ण, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, गुरु, षट्कोण महारत्न है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ४ और काठिन्य ९ है।

प्राप्तिस्थान—यह जम्मू-कश्मीर, पंजाब तथा श्रीलंका और बर्मा की खानों से आता है।

रासायनिक संघटन—यह अल्युमिनियम, क्रोमियम, टिटैनियम और स्फुरक का यौगिक है।

गुण-कर्म

नीलम त्रिदोषघ्न, दीपन, हृद्य, वृष्य, बल्य और रसायन है। इसका प्रयोग मस्तिष्कदौर्बल्य, हृद्रोग, क्षय, अर्श, कासश्वास तथा कुष्ठ में करते हैं।

मात्रा—१५-६० मि० ग्रा०।

× × × ×

'नीलं तु सुमृतं वृष्यं बल्यं दीपनमुत्तमम्। त्रिदोषशमनं वर्ण्यं गुदजामयनाशनम्।'
'त्वच्यं कुष्ठादिदोषघ्नं श्वासकासनिषूदनम्।
हृद्यं मेध्यं विषहरं विषमज्वरनाशनम्॥' (र. त.)

५. मरकत

नाम—सं०-मरकत, तार्क्ष्य, गारुत्मत; हि०-पन्ना; अ०-जमुर्रद; अं०-एमेरॉल्ड (Emerald)।

स्वरूप—यह गुरु, कोमल, स्निग्ध, अष्टकोण, हरितवर्ण महारत्न है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २·७५ तथा काठिन्य ७·५ है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जाति—इसकी एक नीलहरित जाति होती है जिसे नीलाभ मरकत (एक्वामेरिन Aquamarine) कहते हैं। मरकत का हरितवर्ण क्रोमियम आक्साइड तथा नीलाभ मरकत की नीलछवि आयरन ऑक्साइड की उपस्थिति के कारण होती है।

प्राप्तिस्थान—यह राजस्थान में विशेषतः अरावली पहाड़ियों में पाया जाता है। नील मरकत कश्मीर, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा राजस्थान में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह बेरिलियम्, सिलिका, अल्युमिनियम और ऑक्सिजन का यौगिक है ($Be_6 Al_2 Si_6 O_{18}$)।

गुण-कर्म

यह दीपन, रसायन, ओजोवर्धन और विषघ्न है। इसका प्रयोग ज्वर, श्वास, अर्श, पाण्डु और शोथ में करते हैं।

मात्रा—५०–२०० मि० ग्रा०।

× × × ×

'मरकतं मरकतं बल्यं विषघ्नं वह्निदीपनम्। ओजोविवर्धनं वृष्यं पाण्डुशोफनिषूदनम्॥
श्वासच्छर्दिप्रशमनं गुदजामयनाशनम्। समाख्यातं विशेषेण सन्निपातविनाशनम्॥ (र.त.)
नीलं मरकतं तुल्यं गुणैः मरकतस्य तु। (स्व.)

६ वैदूर्य

नाम—सं०-वैदूर्य, वैडूर्य, विडालाक्ष; हि०-लहसुनिया; अं०-क्राइसोबेरिल; (Chrysoberyl); कैट्स आई (Cat's eye)।

स्वरूप—यह गुरु, स्निग्ध तथा विडालनेत्र के सदृश प्रकाशमान, पीतहरित वर्ण का होता है। यह निष्कोण होता है तथा इसके गर्भ में रेखाएं होती हैं जो रत्न के घुमाने पर बिल्ली की आँख की तरह चमकती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३·५ तथा काठिन्य ७·५ है।

जाति—इसकी एक और जाति अलेक्जैण्ड्राइट (Alexandrite) है जो दिन के प्राकृत प्रकाश में नीलाभ या गहरे हरे रंग का तथा कृत्रिम प्रकाश में रक्तवर्ण होता है।

प्राप्तिस्थान—यह भारत में तामिलनाडु, उड़ीसा, राजस्थान में तथा बाहर श्रीलंका, ब्राजिल और रूस में मिलता है।

रासायनिक संघटन—यह स्फटिक-वर्ग का सिकता का रूपान्तर है जो ऐसबेस्टस के सूत्रों में मिलने से होता है।

गुण-कर्म

यह मधुर, शीतवीर्य, दीपन, अनुलोमन, मेध्य, बल्य, रसायन और पित्तशामक होता है। इसका प्रयोग नेत्ररोग, रक्तपित्त, मस्तिष्कदौर्बल्य तथा क्षय में करते हैं।

मात्रा—१५–६० मि० ग्रा०।

× × × ×

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'वैदूर्यं रक्तपित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्धनम् । पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलमोचनम् ॥' (र. चू.)
'सुमृतं खलु वैदूर्यं मधुरं शिशिरं परम् । दीपनं मेध्यमायुष्यं बल्यं च मलभेदनम् ॥
रक्तपित्तप्रशमनं चक्षुष्यं बृंहणं परम् । पित्तामयप्रशमनं समाख्यातं विशेषतः ॥' (र. त.)

७. गोमेद

नाम—सं०–गोमेद; हि०–गोमेद; अं०–सिनामन स्टोन (Cinnamon Stone); सार्डोनिक्स (Sardonyx)।

स्वरूप—यह गौ के मेद (चर्बी) या गोमूत्र के सदृश पिङ्गलवर्ण, स्निग्ध, श्लक्ष्ण और गुरु होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३·५, काठिन्य ५·५ तथा द्रवणांक १७१०° है। यह अपारदर्शक और निष्कोण होता है।

जाति—जब इसमें श्वेत एवं कृष्ण वर्ण होते हैं तब वह कृष्ण गोमेद (Onyx) कहलाता है।

प्राप्तिस्थान—यह अधिकांश गुजरात, आन्ध्र एवं राजस्थान में मिलता है।

रासायनिक संघटन—यह कैल्शियम तथा अल्युमिनियम का सिलिकेट ($Ca_8 Al_2 Sio_4$) है।

गुण-कर्म

यह कफपित्तशामक, दीपन, पाचन, त्वग्दोषहर तथा बल्य है। अग्निमांद्य, मस्तिष्कदौर्बल्य, चर्मरोग, पाण्डु और क्षय में इसका प्रयोग होता है।

मात्रा—३०–१२० मि० ग्रा०।

× × × ×

'गोमेदं कफपित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयङ्करम् । दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम् ॥' (र. चू.)

'गोमेदकं रुचिकरं दीपनं पाचनं परम् । त्वग्दोषशमनं बल्यं कफपित्तप्रणाशनम् ॥
उष्णं पाण्ड्वामयहरं क्षयक्षयकरं परम् । समाख्यात विशेषेण बुद्धिसंवर्धनं तथा ॥' (र. त.)

८. वैक्रान्त

नाम—सं०–वैक्रान्त, विक्रन्तक, क्षुद्रकुलिश।

स्वरूप—यह अष्टधार, अष्टफलक, षट्कोण, स्निग्ध, श्लक्ष्ण और गुरु तथा श्वेत, नील, रक्त, पीत, श्यामल, हरित, चित्रित तथा कृष्ण इन आठ वर्णों का होता है। कुछ प्राचीन रसग्रन्थों में सात ही वर्ण बतलाये गये हैं। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३ तथा काठिन्य ७·५ है।

जाति—वर्णभेद से यह सात या आठ प्रकार का है। इनमें कृष्ण वैक्रान्त सर्वोत्तम माना गया है।[1]

---

१. 'पुनरयं वैक्रान्तकः सप्तधा । यद्यप्यस्ति तथापि कृष्णसुषमं तद्वच्मि सर्वात्मना ॥' (र. प.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्तिस्थान—यह भारत में अभ्रक की खानों में तथा वर्मा, लंका आदि में पाया जाता है।

वक्तव्य—वैक्रान्त संदिग्ध द्रव्य है। आचार्य यादव जी इससे रत्नप्रकरण में 'तुरमलीन' तथा महारस प्रकरण में 'मैंगनीज' लेते हैं। स्व. डा. वा. ग. देसाई ने इसे फ्लोर स्पार (Flour spar) या फ्लोराइट (Flourite) माना है जिसका समर्थन प्रो. कुलकर्णी जी ने किया है। स्व. डा. पी. सी. राय इससे स्फटिक का ग्रहण करते थे और श्री हरिशरणानन्द ने भी इसीके अनुसार वैक्रान्त से स्फटिक (बिल्लौर) का ग्रहण किया है। वह लिखते हैं—'इसे चाहे आप स्फटिकमणि कहें, चाहे बिल्लौर या वैक्रान्त एक ही चीज है।' (भस्मविज्ञान प्र. भा. पृ. १६४) संभवतः यह एक प्रकार का स्फटिक (Quartz) ही है।

गुण-कर्म

यह हीरक के तुल्य गुणवान है और उसके अभाव में प्रयुक्त होता है। वैक्रान्त-भस्म षड्रस, त्रिदोषघ्न, मेध्य, रसायन और योगवाही है। इसका प्रयोग ज्वर, कुष्ठ, पाण्डु, शोष, उन्माद, प्रमेह, कासश्वास और विष में करते हैं।

मात्रा—१०-२५ मि० ग्रा० (भस्म)।

विशिष्ट योग—वैक्रान्तरसायन।

× × × ×

'अष्टास्त्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः। श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः॥
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरः सप्तधा स्मृतः।' (र. चू.)

'श्वेतो नीलस्तथा रक्तः पीतः पारावतप्रभः।
तार्क्ष्याभः कर्बुरः कृष्णो वर्णतश्चाष्टधा हि सः॥' (र. त.)

'वैक्रान्तस्तु त्रिदोषघ्नः षड्रसो देहदार्ढ्यकृत्। पाण्डूदरज्वरश्वासकासयक्ष्मप्रमेहनुत्॥'
(भा. प्र.)

'तत्तन्महागदहरः परमश्च मेध्यो वह्निप्रदीपनकरोऽतिरसायनश्च।
दोषत्रयापहरणो बहुयोगवाही वैक्रान्तकस्तु कथितः खलु वज्रतुल्यः॥' (र. त.)

९. सूर्यकान्त

नाम—सं०-सूर्यकान्त, सूर्यमणि, वह्निगर्भ, दीप्तोपल; हि०-सूर्यकान्तमणि; अं०-सनस्टोन (Sun-stone)।

स्वरूप—यह काच के सदृश श्वेतवर्ण, फलकरहित एक उपरत्न है जिससे सूर्य-किरणों की उपस्थिति में अग्नि की उत्पत्ति होती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २·५ तथा काठिन्य ५·५ है।

रासायनिक संघटन—यह सोडियम या पोटाशियम तथा अल्युमिनियम और सिकता या यौगिक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण-कर्म

सूर्यकान्त उष्णवीर्य, मेध्य, रसायन तथा कफवातशामक है।

मात्रा—३०-१२० मि० ग्रा०।

× × × ×

'रविकान्तो भवेदुष्णो निर्मलश्च रसायनः।
वातश्लेष्महरो मेध्यो धारणाद्रवितुष्टिदः॥' (भा. प्र.)

१०. सूर्यकान्त

नाम—सं०-चन्द्रकान्त, चन्द्रोपल, शशिकान्त; हि०-चन्द्रकान्तमणि; अं०-मून स्टोन (Moon-stone)।

स्वरूप—यह स्निग्ध, मृदु, पीताभ फलकरहित उपरत्न है जो चन्द्रमा की रश्मियों से जलार्द्र हो जाता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २.५ तथा काठिन्य ६ है।

रासायनिक संघटन—यह सोडियम, अल्युमिनियम और सिकता का यौगिक है।

गुण-कर्म

चन्द्रकान्त स्निग्ध, शीत, पित्तशामक और हृद्य है। रक्तपित्त, दाह, ज्वर तथा हृद्रोग में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—३०-१२० मि० ग्रा०।

× × × ×

'चन्द्रकान्तोऽतिशिशिरः स्निग्धः पित्तापहः परम्। रक्तपित्तप्रशमनो हृद्यो दाहनिषूदनः॥
(र. त.)

११. पेरोजक

नाम—सं०-पेरोजक, पेरोज; हि०-पेरोजा; फा०-फीरोजः; अं०-टर्कोइज (Turquoise)।

स्वरूप—यह भस्मवर्ण या हरितवर्ण दाल के सदृश दानों के रूप में होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २ और काठिन्य ४.५ है।

जाति—वर्णभेद से यह दो प्रकार का होता है—(१) भस्मवर्ण, (२) हरित।

प्राप्तिस्थान—यह ईरान और दक्षिण भारत में होता है।

रासायनिक संघटन—यह अलुमुनियम, ताम्र तथा लोह का फास्फेट है।

गुण-कर्म

यह कषाय, मधुर, शीत, दीपन, अनुलोमन, हृद्य और विषघ्न है। इसका प्रयोग उदरशूल, विष, हृद्रोग और दूषीविष में करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मात्रा—३०-१२० मि॰ ग्रा॰।

× × × ×

पेरोजकश्च पेरोजं रसज्ञैः परिकीर्त्तितम्। भस्माङ्गं हरितं चेति द्विविधं तत् प्रकीर्त्तितम्॥
पेरोजकं सुतुवरं मधुरं च सुदीपनम्। मूलदूषीविषघ्नं च चराचरविषापहम्॥ (र. त.)

१२. राजावर्त्त

नाम—सं॰-राजावर्त्त, नृपोपल, नीलाश्मा; हि॰-लाजवर्द; अं॰-लैपिस लेज्युल (Lapis Lazule)।

स्वरूप—यह चमकीला, श्लक्ष्ण, गुरु, नीलवर्ण उपरत्न है। इसका विशिष्ट गुरुत्व २·३८ तथा काठिन्य ५·५ है।

परीक्षा—इसका चूर्ण जल में देने पर जल का रंग न बदले तो इसे शुद्ध समझना चाहिए।

प्राप्तिस्थान—ईरान, अफगानिस्तान, मध्य एशिया तथा राजस्थान में मिलता है।

रासायनिक संघटन—इसका रासायनिक सूत्र 8 (Na Al sio_4) Na_2s है।

गुण-कर्म

राजावर्त्त स्निग्ध, कटु, तिक्त, शीतवीर्य, पित्तशामक, दीपन, पाचन, ग्राही, हृद्य, रक्तशोधक, आर्त्तवजनन, बल्य और रसायन है। मदात्यय, पांडु, प्रमेह, क्षय, शोष, फ़िरंग आदि रक्तविकार में प्रयुक्त होता है। बाह्य प्रयोग नेत्ररोग तथा शोथ में करते हैं।

मात्रा—३०-१२० मि॰ ग्रा॰।

× × × ×

'नृपोपलः कटुस्तिक्तो दीपनः पाचनस्तथा। शिशिरः पित्तशमनो बृंहणोऽतिरसायनः॥
पाण्डुप्रमेहहरणः क्षयशोषनिबर्हणः। मदात्ययात्ययकरश्छर्दिहिक्कानिवारणः॥' (र. त.)

१३. स्फटिक

नाम—सं॰-स्फटिक, सितोपल, शिवप्रिय; हि॰-स्फटिक; म॰-काचमणि; फा॰-बिल्लोर; गु॰-फटक, बलोर; अं॰-रॉक क्रिस्टल (Rock Crystal)।

स्वरूप—यह षट्कोण या द्वादशकोण, स्निग्ध और कठिन होता है। यह काच को काटता है। इसका वर्ण प्रायः श्वेत होता है किन्तु लाल, पीले, भूरे आदि अनेक वर्ण के स्फटिक मिलते हैं। इसका विशिष्ट गुरुत्व २·७ तथा काठिन्य ७ है तथा द्रवणांक १७१० है।

प्राप्तिस्थान—गुजरात, आसाम, तमिलनाडु, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान में मुख्यतः उपलब्ध होता है।

रासायनिक संघटन—यह एक सिलिकेट है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण-कर्म

यह मधुर, शीत, बल्य तथा पित्तशामक है। ज्वर, दाह, रक्तपित्त तथा दौर्बल्य में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—१००–२०० मि० ग्रा०।

वक्तव्य—इसीका भेद काच है जो संभवतः ओपल (Opal) है।

१४. संगे यशब

नाम—सं०–हरिताश्म; हि०–संगयशब, हौलदिल; अ०–यशब, हजरुलयशब फा०–यशम, संगे यशब; अं०–जेड (Jade)।

स्वरूप—यह हरिताभ, कठिन पत्थर है। इसकी खरल बनाई जाती है।

जाति—इसकी तीन जातियां होती हैं—Jadeite, Nephrite तथा Chloromelenite। यह भेद उनके भिन्न रासायनिक संघटन फलतः वर्णभेद पर आधारित है।

प्राप्तिस्थान—यह वर्मा में तथा भारत में मध्यप्रदेश (रीवा) में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह सिलिका का यौगिक है।

गुण-कर्म

यह रूक्ष, शीत, स्तम्भन, हृद्य और मूत्रल है। हृद्रोग, प्रवाहिका, शूल, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—१००–२५० मि० ग्रा०।

× × × ×

हरिताश्मा परं हृद्यः शीतो मूत्रविरेचनः। स्तम्भनः शूलकृच्छ्रादौ शस्यते च हृदामये॥ (स्व.)

१५. अकीक

नाम—सं०–रक्ताश्म; हि०–अ०–फा०–अकीक; अं०–ऐगेट (Agate)।

स्वरूप—यह श्वेत, पीत, रक्त, नील और कृष्ण आदि अनेक वर्णों का एक कठिन पत्थर है। इनमें लाल अकीक श्रेष्ठ माना जाता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३.४ तथा काठिन्य ६ है।

प्राप्तिस्थान—गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश, उडीसा तथा जम्मू–कश्मीर में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह सिलिका का यौगिक है।

गुण-कर्म

यह रूक्ष, शीत, स्तम्भन तथा मेध्य है। हृद्द्रव, रक्तपित्त, प्रदर, शुक्रमेह तथा मानसिक रोगों में प्रयुक्त होता है। शीताद आदि दन्तरोगों में इसका मंजन करते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मात्रा—१००–२५० मि० ग्रा० ।

× × × ×

अकीको रक्तपाषाणः रक्ताश्मा-चापि कथ्यते ।
रूक्षः शीतः स्तम्भनश्च प्रदरादौ प्रशस्यते ॥ (स्व.)

१६. कहरुवा

नाम—सं०–तृणकान्तमणि; फा०–कहरुवा (कह = सूखी घास, रूबा = खींचनेवाली—इसको खूब रगड़ कर सूखे तृण के पास ले जाने से उसे आकर्षित कर लेता है); अं०–अम्बर (Umber); ।

स्वरूप—यह पीताभ भूरे रंग का होता है । इसका विशिष्ट गुरुत्व १.१ तथा काठिन्य २.२ है । रगड़ने से इससे निंबु के सदृश गन्ध आती है ।

गुण-कर्म

यह रूक्ष, अनुष्णशीत, स्तम्भन और हृद्य है । इसका प्रयोग हृद्रोग, रक्तपित्त तथा उरःक्षत में करते हैं । क्षत पर लगाते भी हैं ।

मात्रा—पिष्टि–१००–२५० माशे ।

× × × ×

तृणकान्तमणिः हृद्यः स्तम्भनोऽनुष्णशीतलः ।
हृद्रोगे रक्तपित्ते च युज्यते स उरःक्षते ॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पञ्चम अध्याय

सुधा-सिकता

१. चूर्ण

नाम—सं०-चूर्ण, सुधा; हि०-चूना; अ०-किल्स, नूरा; फा०-आहक; अं०-लाइम (Lime)।

स्वरूप—यह श्वेतवर्ण का कोमल चूर्ण होता है। इसे पानी में देने से पानी गरम हो जाता है।

प्राप्तिस्थान—चूनापत्थर से पका कर यह प्राप्त किया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह कैल्शियम का यौगिक है।

गुण-कर्म

बाह्य—यह लेखन है। चूर्णोदक शामक और स्तम्भन है।

आभ्यन्तर—यह पाचन, स्तम्भन और अम्लतानाशक है। बल्य भी है। विषघ्न भी है।

प्रयोग

बाह्य—ग्रंथि, मशक आदि पर कली चूने का लेप करते हैं। चूने का पानी अतसी तैल या तिलतैल में मिलाकर अग्निदग्ध में लगाते हैं। विचर्चिका आदि चर्मरोगों में भी लगाते हैं। श्वेतप्रदर, पूयमेह, कर्णस्राव तथा तन्तुकृमि में चूर्णोदक की पिचकारी देते हैं। चूना नौसादर मिलाकर अपस्मार, मूर्च्छा आदि में नस्य देते हैं।

आभ्यन्तर—अजीर्ण, अम्लपित्त, उदरशूल, ग्रहणी, अतिसार, छर्दि में प्रयुक्त होता है। विशेषत: बालरोगों में दिया जाता है। बलवृद्धि के लिए विशेषतः बालशोष में देते हैं। विष विशेषतः मल्लविष में लाभकर है।

विशिष्ट योग—चूर्णोदक, सुधाशर्करा।

मात्रा—१०-२० मि० लि० (चूर्णोदक।

× × × ×

'चूर्णोदकं क्रिमिहरमतीसारहरं परम्। अम्लपित्तप्रशमनं विशेषाद् दुग्धपाचनम्॥
शूलं ग्रहणिकां हन्ति खटीवद् गुणकारकम्। द्रावकाशनसंभूतां निहन्ति च विषक्रियाम्॥'
(र. त.)

२. खटिका

नाम—सं०-खटिका, कठिनी, लेखनमृत्तिका; हि०-खडिया, खल्ली; अं०-चॉक (Chalk)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

स्वरूप—यह श्वेतवर्ण, स्वादगंधरहित चूर्ण है।

जाति—यह दो प्रकार की है;—१. खटी, २. गौर खटी।

रासायनिक संघटन—इसका रासायनिक सूत्र $CaCO_3$ है।

गुण-कर्म

यह मधुर, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, कफपित्तशामक है।

बाह्य—यह स्तम्भन और शोषण है।

आभ्यन्तर—अम्लतानाशन, स्तम्भन है।

प्रयोग

बाह्य—चर्मरोग, विसर्प, अग्निमांद्य में इसका मलहम लगाते हैं। दन्तमंजनों में इसका योग देते हैं। कषाय होने से यह दाँतों को दृढ़ करता, रक्त बन्द करता तथा मलों को दूर करता है।

आभ्यन्तर—अतिसार, अम्लपित्त तथा दाहक विषों में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—·५–१ ग्रा०।

× × ×

'खटिका दाहास्रजिच्छीता मधुरा विषशोथजित्।' (भा. प्र.)

'खटिका शिशिरा तिक्ता मधुरा शोथनाशिनी। पित्तप्रशमनी कामं विविधव्रणरोपणी॥
कफदाहास्रदोषघ्नी नेत्रामयनिषूदनी। हरिद्व्रणातिसारघ्नी स्वेदातिस्रावहारिणी॥' (र.त.)

३. गोदन्ती

नाम—सं०—गोदन्ती, गोदन्त; हि०—गोदन्ती; अं०—जिप्सम (Gypsum)।

स्वरूप—यह गोदन्त के सदृश श्वेतवर्ण पिण्डों या दलयुक्त खण्डों के रूप में मिलता है।

रासायनिक संघटन—यह कैशियम और गन्धक का यौगिक (कैलशियम सलफेट) है।

गुण-कर्म

गोदन्तीभस्म शीतवीर्य, वातपित्तशामक, ज्वरघ्न, शूलहर तथा बल्य है। इसका प्रयोग पित्तज्वर, विषमज्वर, शिरःशूल, कास, श्वास, क्षय, उरःक्षत, पाण्डु, बालशोष तथा श्वेतप्रदर में करते हैं।

मात्रा—१२०–२४० माशे।

× × ×

'गोदन्त सुसृतं शीतं पित्तज्वरनिषूदनम्। जीर्णज्वरहरं बल्यं दीपनं श्वासकासनुत्॥' (र.त.)

४. श्वेताञ्जन

नाम—हि०—सफेद सुरमा; फा०—सुर्मए सफेद; अं०—कैलसाइट (Calcite)।

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप—यह श्वेत दलयुक्त पिण्ड के रूप में मिलता है।

रासायनिक संघटन—इसका रासायनिक सूत्र $CaCO_3$ है।

गुण-कर्म

गोदन्ती के समान इसके गुणकर्म हैं। विशेषतः पूयमेह, स्वप्नदोष, रक्तपित्त तथा यकृद्विकार में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—१२०–२४० ग्रा०।

× × ×

श्वेताञ्जनं तु कथितं गोदन्तीसदृशं गुणैः। (स्व.)

५. सिकता

नाम—सं०–सिकता, बालुका, शर्करा; हि०–बालू, रेत; अ०–रमल; फा०–रेग; अं०–सैण्ड (Sand)।

स्वरूप—नदियों में स्वादगंधरहित, वालुका के महीन श्वेतकण पाये जाते हैं। इससे कांच खुरच जाती है।

रासायनिक संघटन—यह शुद्ध सिलिका होती है। लौह के मिश्रण से इसमें लाल, पीले आदि रंग उत्पन्न हो जाते हैं।

गुण-कर्म

वालुका मधुर, शीतवीर्य तथा स्तम्भन है। पकी बालुका की पोटली बनाकर आमवात में स्वेदन करते हैं। इसका बाह्य प्रयोग ही होता है।

× × ×

'वालुका मधुरा शीता संतापश्रमनाशिनी। स्वेदप्रयोगतश्चैव वाताश्लेष्मानिलापहा॥'
(ध. नि.)

६. दुग्धपाषाण

नाम—सं०–दुग्धपाषाण, हि०–संगजराहत, दूधिया खल्ली; अ०–हज्रुल जराहत; फा०–संगेजराहित; अं०–टाल्क (Talc), सॉफ्ट स्टोन (Soft stone)।

स्वरूप—यह खटिका के सदृश श्वेत, चिकना और चमकीला पत्थर है।

रासायनिक संघटन—यह मैगनीशियम और सिलिका का यौगिक (मैगनीशियम सिलिकेट) है।

गुण-कर्म

दुग्धपाषाण शीतवीर्य, पित्तशामक और स्तम्भन है। इसका प्रयोग पित्तज्वर,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्तपित्त, अतिसार और छर्दि में करते हैं। क्षत और व्रण में इसका चूर्ण छिड़कते हैं। दन्तमंजनों में भी डालते हैं।

मात्रा—२५०-५०० माशे।

× × × ×

'दुग्धपाषाणको ग्राही व्रणरोपणकारकः। शोणितास्थापनः शीतो दन्तरोगहरस्तथा॥
(रसामृत)

७. कौशेयाश्म

नाम—सं०-कौशेयाश्म; दक्षिणभारत-कल्नारु; फा०-संगे रेशम; अं०-ऐस्बेस्टस (Asbestos)।

स्वरूप—यह रेशम के सूत्रों के सदृश कोमल, रक्ताभ, पीत या श्वेत पत्थर है।

रासायनिक संघटन—यह मैगनीशियम सिलिकेट है।

गुण-कर्म

यह शीत, स्तम्भन है। दन्तपूय, प्रमेह तथा प्रदर में इसकी भस्म देते हैं। दन्तमंजनों में इसका चूर्ण देते हैं।

मात्रा—२५०-५०० मि० ग्रा० (भस्म)।

× × × ×

कौशेयाश्मा तु शीतः स्यात् स्तम्भनः कफपित्तहृत्। प्रमेहे प्रदरे दन्तवेष्टादौ च प्रशस्यते॥
(स्व.)

८. नागपाषाण

नाम—सं०-नागपाषाण, नागाश्म; हि०-जहरमोहरा; फा०-जहरमोहरा; अ०-फादजहरमादनी; अं०-सर्पेण्टाइन (Serpentine); ओफाइट (Ophite)।

स्वरूप—यह स्निग्ध, हलका, पीतहरित श्वेत पत्थर है।

प्राप्तिस्थान—यह चीन, तिब्बत, खोतान, नेपाल आदि के पहाड़ों में मिलता है।

रासायनिक संघटन—यह मैगनीशियम और सिलिका का यौगिक है।

गुण-कर्म

यह रूक्ष, उष्ण, मेध्य, हृद्य और विषघ्न है। हृद्द्रव तथा विषों में इसका प्रयोग करते हैं।

मात्रा—२५०-५०० मि० ग्रा० (पिष्टि)।

× × × ×

नागपाषाणो हृद्यो मेध्यश्चोष्णो विषापहः। हृद्द्रवे भ्रममूर्च्छादौ विषेषु च प्रयुज्यते॥
(स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

९. हज्रल् यहूद

नाम—सं०-बदराश्म, अश्मभिद्; हि०-बेरपत्थर; अ०-हज्रुल यहूद; फा०-हज्रल यहूद।

स्वरूप—यह छोटे बेर की आकृति का, लम्बगोल पत्थर है। बाहर से यह भूरा, झुर्रीदार तथा भीतर से हरिताभ श्वेत होता है।

रासायनिक संघटन—यह कैल्शियम सिलिकेट है।

गुण-कर्म

यह अश्मरीभेदन और मूत्रल है। अश्मरीरोग में इसे देते हैं। मूत्राघात में बस्तिप्रदेश में लेप करते हैं।

मात्रा—·५–१ ग्रा० (पिष्टि)।

× × × ×

बदराश्मा तु बदरसदृशोऽश्मरिभेदनः। मूत्रलश्चापि शस्तोऽयं मूत्राघातेऽश्मभेदने ॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

षष्ठ अध्याय

लवण-क्षार

लवण

निरुक्ति—'लूयते अनेन इति लवणम्' जो छेदन कर्म करे वह लवण है।

नाम—सं०–लवण; हि०–नमक; गु०–मीठु; अं०–साल्ट (Salt)।

स्वरूप—यह लवणरसयुक्त एक द्रव्य है जो शरीर के लिए आवश्यक उपादान माना जाता है।

जाति—पाँच प्रकार का लवण प्राचीनों ने माना है :—(१) सैन्धव, (२) सामुद्र, (३) विड, (४) सौवर्चल और (५) औद्भिद। इसे 'पंचलवण' कहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य लवण भी हैं। भारत में लवण चार स्रोतों से प्राप्त होता है—सैन्धव (Rock salt), सामुद्र (Sea-water), ताडाग (Brine) तथा भौम (Saline efflorescence)। इनमें अधिकांश सामुद्र का ही प्रयोग भारत में होता है।

प्राप्तिस्थान—भारत में समुद्रतटवर्त्ती प्रदेश, राजस्थान के झील तथा हिमालय प्रदेश (मण्डी[1]) के सैन्धव शिलासमूह लवण के प्राप्तिस्थान हैं। भारत के अतिरिक्त, अमेरिका, चीन, रूस, जर्मनी आदि देशों में भी होता है।

रासायनिक संघटन—यह सोडियम क्लोराइड तथा इसके साथ संयुक्त अन्य विविध तत्त्वों से बनता है।

गुण

गुण—किंचिद्, गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण
रस—लवण
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफपित्तप्रकोपक तथा वातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह शोथहर और वेदनास्थापन है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—यह क्लेदन, रोचन, पाचन और भेदन है। अतिमात्रा में देने से शोथजनन और वामक है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तकोपक है तथा रक्तभार को बढ़ाता है।

श्वसनसंस्थान—छेदन और कफनिःसारक है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रघ्न है।

---

1. संभवतः मणि (मणिमन्थ = सैन्धव) का अद्रि (पर्वत) होने के कारण ही 'मण्डी' (मण्यद्रि) नाम पड़ा। सैन्धव का वही प्रमुख स्रोत है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

त्वचा—स्वेदजनन है।

सात्मीकरण—वातनाशन, शैथिल्यकर तथा बलक्षयकारक है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—वातविकारों में प्रयुक्त होता हैं।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—शोथ और वेदनायुक्त स्थानों में लवण का मर्दन करते हैं तथा लवणोदक से प्रक्षालन करते हैं; गले के शोथ में लवणोदक से कुल्ला करते हैं। वातव्याधि में लवण से स्वेदन तथा लवणोदक से स्नान और अवगाहन आदि कराते हैं।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा विबन्ध में प्रयुक्त होता है। विषों में विशेषतः सोरकाम्लीय रजत में वमन के लिए देते हैं। तन्तुकृमि में इसकी वस्ति देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—विसूचिका में रक्त गाढ़ा होने पर लवण जल का निक्षेप सिरा द्वारा करते हैं।

श्वसनसंस्थान—कास में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रकृच्छ्र में प्रयुक्त होता है।

उत्सर्ग—लवण का उत्सर्ग मुख्यतः मूत्र से पोटाशियम क्लोराइड के रूप में होता है। किंचित् पुरीष तथा स्वेद से भी निकलता है। वृक्कशोथ, फुफ्फुसशोथ, शोथ तथा अर्बुद में इसका उत्सर्ग कम हो जाता है।

अहित प्रभाव—लवण के अतिसेवन से मानसिक और शारीरिक शैथिल्य, पित्तप्रकोप, रक्तभाराधिक्य, रक्तपित्त, तृष्णा, मूर्च्छा, संताप, विदार, मांसकोथ, कुष्ठ, विष, शोथ, दन्तभंग, नपुंसकता, इन्द्रियनाश, बलि, पालित्य, खालित्य, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका आदि चर्मविकार उत्पन्न होते हैं।

× × ×

'लवणमन्नद्रव्यरुचिकराणाम्।' (च. सू. २५)

'रोचनं लवणं सर्वं पाकि स्रंस्यनिलापहम्।' (च. सू. २७)

'लवणो रसः पाचनो क्लेदनो दीपनः च्यावनः छेदनो भेदनः तीक्ष्णः सरो विकासी अधःस्रंसी अवकाशकरो वातहरः स्तम्भबन्धसङ्घातविधमनः सर्वरसप्रत्यनीकभूतः आस्यमास्रावयति कफं विष्यन्दयति मार्गान् विशोधयति सर्वशरीरावयवान् मृदूकरोति रोचयत्याहारमाहारयोगी।' (च. सू. २६)

'लवणं पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्योपपन्नमनतिगुर्वनतिस्निग्धमुपक्लेदि विस्रंसनसमर्थमन्नद्रव्यरुचिकरम्। आपातभद्रं प्रयोगसमसादुगुण्यात्, दोषसञ्चयानुबन्धम्। तद्रोचनपाचनोपक्लेदनविस्रंसनार्थमुपयुज्यते।' (च. वि. १)

'स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपयुज्यमानः पित्तं कोपयति, रक्तं वर्धयति, तर्पयति, मूर्च्छयति, तापयति, दारयति, कुष्णाति मांसानि, प्रगालयति कुष्ठानि, विषं वर्धयति,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शोफान् स्फोटयति, दन्तांश्च्यावयति, पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुणद्धि, वलीपलित-खालित्यमापादयति, अपि च लोहितपित्ताम्लपित्तवीसर्पवातरक्तविचर्चिकेन्द्रलुप्तप्रभृतीन् विकारान् उपजनयति ।—(च. सू. २६)

'तदत्यर्थमुपयुज्यमानं ग्लानिशैथिल्यदौर्बल्याभिनिर्वृत्तिकरं शरीरस्य भवति ।······ये ह्यतिलवणसात्म्याः पुरुषास्तेषामपि खालित्येन्द्रलुप्तपालित्यानि वलयश्चाकाले भवन्ति ।' (च. वि. १)

१. सैन्धव

नाम—सं०–सैन्धव, शीतशिव, मणिमन्थ, सिन्धुज; हि०–सेंधा नमक; अं०–रॉक साल्ट (Rack salt)।

स्वरूप—यह खान से निकलने वाला चमकीला पत्थर के सदृश श्वेतवर्ण लवण है। यह सभी लवणों में श्रेष्ठ माना जाता है। यह तिगुने शीतजल में विलेय है। अशुद्धियों के संपर्क से इसमें धूसर, नीला, भूरा, गुलाबी आदि रंग उत्पन्न होते हैं।

प्राप्तिस्थान—हिमाचल प्रदेश में मण्डी जिले में सेंधा नमक का विस्तृत क्षेत्र है जहाँ से सैन्धव प्राप्त होता है। इसमें प्रकृत्या बालू, कंकड़, पत्थर आदि मिले रहने से यह अशुद्ध रहता है, शुद्धि के बाद ही व्यवहारयोग्य होता है।

रसायनिक संघटन—यह सोडियम क्लोराइड है।

गुण-कर्म

सैन्धव लवण शीतवीर्य होने के कारण त्रिदोषशामक, रोचन, दीपन, चक्षुष्य, अविदाही और हृद्य है। अरुचि, अजीर्ण, शूल, विबन्ध में देते हैं। विश्वाची आदि में सैन्धव का टुकड़ा हाथ में रखते हैं।

विशिष्ट योग—लवणोत्तमादि चूर्ण, सैन्धवाद्य तैल, सैन्धवाद्य चूर्ण।

× × ×

'प्रायो लवणं पित्तलमचक्षुष्यमन्यत्र सैन्धवात् ।' (अ. स. सू. १८)

'रोचनं दीपनं वृष्यं चक्षुष्यमविदाहि च।
त्रिदोषघ्नं सुमधुरं सैन्धवं लवणोत्तमम् ॥' (च. सू. २७)

'चक्षुष्यं सैन्धवं हृद्यं रुच्यं लघ्वग्निदीपनम्।
स्निग्धं समधुरं वृष्यं शीतं दोषघ्नमुत्तमम् ॥' (सु. सू. ४६)

'सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु।
स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥' (भा. प्र.)

२. सामुद्र

नाम—सं० सामुद्र, सागरज; हि०–समुद्री नमक।

स्वरूप—यह समुद्रजल को सुखा कर उससे तैयार किया जाता है।

प्राप्तिस्थान—समुद्रतटीय प्रदेशों गुजरात, महाराष्ट्र, तामिलनाडु, आन्ध्र तथा केरल में इस विधि से नमक बनाया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण-कर्म

सामुद्र लवण किंचित् तिक्त-मधुर, मधुरविपाक, शीतोष्ण, दीपन, भेदन और अनुलोमन है।

विशिष्ट योग—सामुदाद्य चूर्ण।

वक्तव्य—राजस्थान में सांभर तथा डिडवाना के झीलों में गर्मी में जल सूख कर जो नमक बनता है वह सांभर नमक (शाकम्भरीय लवण) के नाम से प्रचलित है। इसी प्रकार आसाम, मणिपुर में कूपजल से लवण बनाते हैं। ये कूप 'पंग' कहलाते हैं। इसी आधार पर 'पाँगा नमक' शब्द प्रचलित है। इन ताडाग और कौप लवणों के गुणकर्म प्रायः सामुद्र के समान ही हैं।

× × × ×

'सामुद्रं मधुरं पाके सतिक्तं मधुरं गुरु। नात्युष्णं दीपनं भेदि सक्षारमविदाहि च॥
श्लेष्मलं वातनुत्तिक्तमरूक्षं नातिशीतलम्।' (भा. प्र.)
'सामुद्रं मधुरं पाके नात्युष्णमविदाहि च।
भेदनं स्निग्धमीषच्च शूलघ्नं नातिपित्तलम्' ॥ (सु. सू. ४६)

३. विड

नाम—सं०-बिडलक्षण, नरसार, चुल्लिकालवण। हि०-नौसादर; फा०-नौशादर; अं०-अमोनियम क्लोराइड (Ammonium chloride)।

स्वरूप—यह श्वेत, स्फटिकीय, निगंध, दानेदार चूर्ण के रूप में होता है। तिगुने जल में घुलता है और घुलने पर पानी ठंढा हो जाता है।

प्राप्तिस्थान—यह पशुओं की विष्ठा, मूत्र आदि से बनाया जाता है, अतः इसे विड लवण कहते हैं। ईंटे के भट्टे से भी प्राप्त किया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह अमोचियम क्लोराइड ($NH_4 CL$) है।

गुण

गुण—लघु सूक्ष्म, तीक्ष्ण　　**रस**—लवण
विपाक—मधुर　　**वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—वातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—शुष्कावस्था में तीक्ष्ण, लेखन और आर्द्र विलयन में शैत्यकारक है।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—संज्ञाप्रबोधन, नाडीबल्य है।

पाचनसंस्थान—रोचन, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, अनुलोमन है। अतिमात्रा में क्षोभक है।

रक्तवहसंस्थान—रक्तकोपक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्वसनसंस्थान—कफनिःसारक है।

प्रजननसंस्थान—आर्त्तवजनन है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल है।

त्वचा—स्वेदजनन है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

उत्सर्ग—यह अपने रूप में तथा अधिकांश यूरिया के रूप में मूत्र से निकलता है।

प्रयोग

दोषकर्म—वातविकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—शिरःशूल, मूर्च्छा, अपस्मार, अपतंत्रक, गलशोथ, आदि में चूने के साथ मिला कर नस्य देते हैं। इसका विलयन अभिघातजन्य शोथ, व्रणशोथ, कोथ, शिरःशूल, मोच आदि पर लगाते हैं।

आभ्यन्तर-नाडीसंस्थान—अपतंत्रक, कम्पवात, नाडीदौर्बल्य, शिरःशूल आदि में देते हैं।

पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, अजीर्ण, यकृद्विकार, शूल और विबन्ध में प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—कास, पार्श्वशूल में देते हैं।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्राघात में खिलाते हैं तथा बस्तिप्रदेश पर लगाते हैं।

तापक्रम—ज्वर में दिया जाता है।

डल्हण लिखते हैं कि 'प्रसारणीकल्क, भात, लवण को एकत्र कर जला देने पर बिडलवण बनता है—

'बिडं कृत्रिमं स्वनाम्ना ख्यातम्; तच्च प्रसारणीकल्कचलवणसंयोगादग्निदाहेन निर्वृत्तम्। (सु. सू. ४६)

× × × ×

'विडं सक्षारमूर्ध्वाधः कफवातानुलोमनम्। दीपनं लघु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं रुच्यं व्यवायि च॥ विबन्धानाहविष्टम्भोदर्दगौरवशूलनुत्।' (भा. प्र.)

'सक्षारं दीपनं सूक्ष्मं शूलहृद्रोगनाशनम्।
रोचनं तीक्ष्णमुष्णं च विडं वातानुलोमनम्॥' (सु. सू. ४६)
'तैक्ष्ण्यादौष्ण्याद् व्यवायित्वाद् दीपनं शूलनाशनम्।
ऊर्ध्वं चाधश्च वातानामानुलोम्यकरं विडम्॥' (च. सू. २७)

४. सौवर्चल

नाम—सं०—सौवर्चल, रुचक, अक्षपाक, धातुमत्, हिं०—सोंचर, कालानमक।

स्वरूप—यह नीले या काले रंग का विशिष्टगंधयुक्त लवण है।

जाति—प्राचीन आचार्य सगन्ध और निर्गन्ध दो प्रकार बतलाते हैं। सगन्ध को सौवर्चल तथा निर्गन्ध को कृष्ण या काल लवण कहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्तिस्थान—हिमाचलप्रदेश में मण्डी की सैन्धव शिलाओं से प्राप्त किया जाता है।

रासायनिक संघटन—इसमें लोह और गंधक भी होता है।

गुण

गुण—लघु विशद, सूक्ष्म, स्निग्ध **रस**—मधुर

विपाक—मधुर **वीर्य**—उष्ण

कर्म-प्रयोग

यह रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, उद्गारशोधन और हृद्य है। गुल्म, शूल, विबन्ध, उदावर्त्त तथा हृद्रोग में देते हैं।

विशिष्ट योग—सौवर्चलादिगुटिका।

× × × ×

'रुचकं रोचनं भेदि दीपनं पाचनं परम्। सस्नेहं वातनुन्नातिपित्तलं विशदं लघु॥ (भा. प्र.)

'लघु सौवर्चलं पाके वीर्योष्णं विशदं कटु। गुल्मशूलविबन्धघ्नं हृद्यं सुरभि रोचनम्॥'

(सु. सू. ४६)

'सौक्ष्म्यादौष्ण्याल्लघुत्वाच्च सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्। सौवर्चलं विबन्धघ्नं हृद्यमुद्गारशोधि च॥'

(च. सू. २७)

५. औद्भिद

नाम—सं०–औद्भिद लवण, पांशुलवण; हि०–खारी नोन, खरिया नमक।

स्वरूप—यह लवणीय मृत्तिका या अन्तर्भौम लवणजल से बनाया जाता है।

प्राप्तिस्थान—पंजाब, हरियाना, तामिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल में यह विशेष रूप से बनता है। कलकत्ता के पास सुन्दरवन क्षेत्र लवणमृत्तिका से भरा है।

गुणकर्म

यह लवण कटु–तिक्त, क्षारीय तथा उत्क्लेद उत्पन्न करने वाला है।

× × × ×

'सतिक्तं कटु सक्षारं विद्याल्लवणमौद्भिदम्।' (सु. सू. ४६)

'सतिक्तकटु सक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि चौद्भिदम्।' (च. सू. २७)

क्षार

नाम—सं०–क्षार (क्षरणात् क्षणनाद्वा क्षारः[1]–जो जलांश को आकर्षित करे तथा धातुओं को गलावे उसे क्षार कहते हैं)। हि०–खार; अं०–अल्कली (Alkali)।

स्वरूप—यह श्वेताभ, श्लक्ष्ण, पिच्छिल द्रव्य है जो जल में शीघ्र विलीन हो जाता है तथा आशु कार्यकर होता है। इसलिए क्षार शल्यतन्त्र में शस्त्रानुशस्त्रों से प्रधान माना गया है।[2]

---

१. सु. सू. ११

२. 'शस्त्रानुशस्त्रेभ्यः क्षारः प्रधानतमश्छेद्यभेद्यलेख्यकरणात् त्रिदोषघ्नत्वाद् विशेषक्रियावचारणाच्च।' (सु. सू. ११)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जाति—गुणभेद से यह तीन प्रकार का है—(१) मृदु, (२) मध्य, (३) तीक्ष्ण। प्रयोगभेद से भी दो प्रकार का होता है—(१) पानीय, (२) प्रतिसारणीय।[1] पानीय अन्तः प्रयोग में तथा प्रतिसारणीय बाह्य प्रयोग में व्यवहृत होता है। पानीय प्रायः मृदु और प्रतिसारणीय तीक्ष्ण होता है।

प्राप्तिस्थान—यह खान से तथा वृक्षों को जला कर उनकी भस्म से प्राप्त होता है।

रासायनिक संघटन—यह मुख्यतः सोडियम, पोटाशियम, अमोनियम, कैलशियम तथा मैगनीशियम के हाइड्रॉक्साइड, कार्बोनेट, बाईकार्बोनेट, एसिटेट, साइट्रेट, टार्टरेट, नाइट्रेट होते हैं।

गुण

गुण—तीक्ष्ण, पिच्छिल, श्लक्ष्ण

रस—कटु **अनुरस**—लवण, तिक्त, कषाय, मधुर[2]

विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण[3] **प्रभाव**—त्रिदोषघ्न[4]

कर्म

दोषकर्म—यह त्रिदोषघ्न है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—तीक्ष्ण क्षार त्वचा पर लगाने से क्षोभ और लालिमा होती है अतः यह लेखन और पाचन है। यह त्वचा के पिच्छिलांश को विलीन कर उसे मृदु और स्वच्छ बनाता है अतः यह विलयन और शोधन है। जलांश का शोषण करने के कारण यह शोषण, स्तम्भन और रोपण है।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—मृदु क्षार दीपन, पाचन, अम्लतानाशन, अनुलोमन और कृमिघ्न है। यह लालास्राव को बढ़ाता है। आमाशय में जाने पर यह कफांश को विलीन करता, अत्यम्लता को नष्ट करता है[5] और कार्बनडाइ ऑक्साइड को उत्पन्न करता है जो पुनः आमाशयिक स्राव को बढ़ा कर दीपन-पाचन

'नैवातितीक्ष्णो न मृदुः शुक्लः श्लक्ष्णोऽथ पिच्छिलः।
अविष्यन्दी शिवः शीघ्रः क्षारो ह्यष्टगुणः स्मृतः॥' (सु. सू. ११)

१. 'अथेतरस्त्रिविधो मृदुर्मध्यस्तीक्ष्णश्च।
स द्विविधः प्रतीसारणीयः पानीयश्च॥' (सु. सू. ११)

२. 'अम्लवर्जान् रसान् क्षारे सर्वानेव विभावयेत्।
कटुकस्तत्र भूयिष्ठो लवणोऽनुरसस्तथा॥' (सु. सू. ११)

३. 'शुक्लत्वात् सौम्यः, तस्य सौम्यस्यापि सतो दहनपचनदारणादिशक्तिरविरुद्धा।' (सु. सू. ११)

४. 'नानौषधिसमवायात् त्रिदोषघ्नः।
स खलु आग्नेयौषधिगुणभूयिष्ठत्वात् कटुकः उष्णः॥' (सु. सू. ११)

५. अम्लेन सह संयुक्तः स तीक्ष्णलवणो रसः। माधुर्यं भजतेऽत्यर्थं तीक्ष्णभावं विमुञ्चति॥
माधुर्याच्छममाप्नोति वह्निरद्भिरिवाप्लुतः। (सु. सू. ११)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और अनुलोमन कार्य करता है। आमाशयिक कला में क्षोभ द्वारा रक्तसंवहन बढ़ने से भी स्राव उत्पन्न होता है। अधिक मात्रा में देने से वामक होता है। क्षारीयता के कारण यह अग्न्याशयिक स्राव के परिमाण को कम करता है किन्तु उसकी कार्यक्षमता को बढ़ा देता है।

रक्तवहसंस्थान—यह रक्तकोपक है तथा पेशियों को क्षीण करता है जिससे अधिक मात्रा में चिरकाल तक लेने से रक्तविकार, शोथ और कार्श्य-दौर्बल्य उत्पन्न होते हैं।

श्वसनसंस्थान—क्षार छेदन होने के कारण श्वासमार्ग के कफ को पतला बना कर उसे बाहर निकालता है।

प्रजननसंस्थान—शुक्रघ्न है तथा अतिसेवन से क्लैब्य उत्पन्न करता है।

मूत्रवहसंस्थान—अश्मरीभेदन और मूत्रल है। यह मूत्र को क्षारीय बनाता है।

त्वचा—स्वेदजनन है।

तापक्रम—ज्वरघ्न है।

सात्मीकरण—लेखन और विषघ्न है।

उत्सर्ग—मुख्यतः मूत्र द्वारा होता है। इसका शोषण और उत्सर्ग अतिशीघ्र होता है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह त्रिदोषज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—दद्रु, मंडल आदि चर्मरोग, ग्रन्थि, अर्बुद, भगन्दर, अर्श, दुष्टव्रण आदि में इसको लगाते हैं। जांगम विषों के दंशस्थान पर भी लगाते हैं। श्वेतप्रदर में उत्तरबस्ति देते हैं। उपजिह्विका, अधिजिह्विका आदि में भी इसको लगाते हैं।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अग्निमांद्य, अजीर्ण, गुल्म, उदर, आनाह, श्लैष्मिक तथा पैत्तिक उदरशूल, अर्श, छर्दि, कृमि में दिया जाता है।

रक्तवहसंस्थान—रक्त में अम्लतावृद्धि होने (Acidosis) पर इसका प्रयोग करते हैं। विशेषतः सन्धिवात, विसूचिका, मधुमेहजन्य संन्यास, गर्भावस्था की छर्दि तथा क्लोरोफार्मविष में दिया जाता है।

श्वसनसंस्थान—कास में प्रयुक्त होता है।

मूत्रवहसंस्थान—अश्मरी, शर्करा एवं मूत्रकृच्छ्र में देते हैं।

तापक्रम—ज्वर में देते हैं।

सात्मीकरण—विषों में देते हैं। मेदोरोग में भी उपयोगी है।

मात्रा—·५–२ ग्रा०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अहित प्रभाव—इसके अतिसेवन से पालित्य-खालित्य, दृष्टिदौर्बल्य, हृदौर्बल्य, क्लैव्य, कार्श्य, शौथिल्य, शिरःशूल, छर्दि तथा कम्पवात होते हैं।[1]

निवारण—क्षार के वर्जन तथा अम्ल-मधुर-स्निग्ध द्रव्यों के प्रयोग से लाभ होता है।

प्रयोग निषेध—रक्तपित्त, तीव्र ज्वर, पित्तप्रकृति, बाल, वृद्ध, दुर्बल, भ्रम-मद-मूर्च्छा-तिमिर के रोगी को क्षार का सेवन न करावे।[2]

× × ×

'स खलु'......कटुक उष्णस्तीक्ष्णः पाचनो विलयनः शोधनो रोपणः शोषणः स्तम्भनो लेखनः कृम्यामकफकुष्ठविषमेदसामुपहन्ता पुंस्त्वस्य चातिसेवितः। स द्विविधः प्रतिसारणीयः, पानीयश्च। तत्र प्रतिसारणीयः कुष्ठकिटिभदद्रुकिलासभगन्दरार्बुदार्शोदुष्टव्रणनाडीचर्मकीलतिलकालकन्यच्छव्यंगमशकबाह्यविद्रधिकृमिविषादिषूपदिश्यते । सप्तसु च मुखरोगेषूपजिह्वाधिजिह्वोपकुशदन्तवैदर्भेषु तिसृषु च रोहिणीषु...... । पानीयस्तु गरगुल्मोदराग्निसंगाजीर्णारोचकानाहशर्कराश्मर्याभ्यन्तरविद्रधिकृमिविषार्शःसूपयुज्यते।'

(सु. सू. ११)

'क्षारः पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्यलाघवोपपन्नः क्लेदयत्यादौ पश्चाद् विशोषयति दहति, पचति, भिनत्ति संघातं, स पचनदहनभेदनार्थं प्रयुज्यते।' (च. वि. १)

९. यवक्षार

नाम—सं०-यवक्षार, यावशूक, पाक्य; हि०-जवाखार।

स्वरूप—यव के बालों को जलाकर क्षारविधि से प्रस्तुत यह एक पाण्डुरवर्ण क्षार है।

रासायनिक संघटन—इसमें मुख्यतः पोटाशियम क्लोराइड ५०.८, पोटाशियम सलफेट २०·२, पोटाशियम बाइकार्बोनेट १२·६ तथा पोटाशियम कार्बोनेट ६.८ प्रतिशत है।

गुण-कर्म

यवक्षार लघु, स्निग्ध, कटु, उष्णवीर्य और कफवातशामक है। आमदोष, अम्लपित्त, उदरशूल, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, प्लीहा, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कास, श्वास, हृद्रोग और विष में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—·५-१ ग्रा०।

---

१. 'सोऽतिप्रयुज्यमानः केशाक्षिहृदयपुंस्त्वोपघातकरः संपद्यते,...तस्मात् क्षारं नात्युपयुञ्जीत।' (च. वि. १)

'Toxic doses of alkalies, or when continued in large doses, cause alkalosis giving rise to headache, vomitting, general prostration and possibly tetany due to diminished calcium in plasma.' (R. Ghosh.)

२. 'अहितस्तु रक्तपित्तज्वरितपित्तप्रकृतिबालवृद्धदुर्बलभ्रममदमूर्च्छातिमिरपरीतेभ्योऽन्येभ्यश्चैवंविधेभ्यः।' (सु. सू. ११)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विशिष्ट योग—क्षारघृत, क्षारगुटिका ।

× × ×

'निहन्ति शूलवातामश्लेष्मश्वासगलामयान् ।
पाण्ड्वर्शोग्रहणीगुल्मानाहप्लीहहृद्‌गामयान् ॥' (भा. प्र.)

हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहानाहगलग्रहान् । कासं कफजमर्शांसि यावशूको व्यपोहति ॥'
(च. सू. २७)

यवक्षारः कटूष्णश्च कफवातोदरार्त्तिजित् । आमशूलाश्मरीकृच्छ्रविषदोषहरः सरः ॥'
(ध. नि.)

'यवक्षारः लघुः स्निग्धो दीपनः पाचनः परम् । गुल्मप्लीहामवहरः कफहा वातनाशनः ॥
शूलानाहोदराध्मानमूत्रकृच्छ्रप्रणाशनः । कण्ठामयहरो हृद्यश्चाम्लपित्तहरः सरः ॥
औपसर्गिकमेहोत्थफलशोथनिवारणः । स्वेदप्रवर्त्तकश्चैव भिषग्भिर्मूत्रलो मतः ॥' (र. त.)

२. स्वर्जिकाक्षार

नाम—सं०—स्वर्जिकाक्षार, सुवर्चिका; हि०—सज्जीखार ।

स्वरूप—यह भी यवक्षार के सदृश एक वानस्पतिक क्षार है । वास्तूक-कुल की लानी (लवणी ?)—(Salsola baryosma Dandy) या सज्जी बूटी (S. kali Linn.) नामक वनस्पति को जला कर इसे बनाते हैं ।

प्राप्तिस्थान—पञ्जाब में यह मुख्यतः होता है ।

रासायनिक संघटन—यह सोडियम बाइकार्बोनेट (NaHco3) है ।

गुण-कर्म

यह कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन-पाचन, अनुलोमन, कृमिघ्न तथा दारण है । व्रण पर यवक्षार के साथ इसका लेप करने से वह फूट जाता है । शूल, गुल्म, आध्मान, विबन्ध, अर्श, प्लीहा, कृमि, ज्वर और कास-श्वास में प्रयोग करते हैं ।

मात्रा—·५–१ ग्रा० ।

× × ×

'स्वर्जिकाऽल्पगुणा तस्माद् (यवक्षारात्) विशेषाद् गुल्मशूलहृत् ।' (भा. प्र.)

'तीक्ष्णोष्णो लघुरूक्षश्च क्लेदी पक्ता विदारणः ।
दहनो दीपनश्छेत्ता स्वर्जिक्षारोऽग्निसन्निभः ॥' (च. सू. २७)

'ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ।
शुक्रश्लेष्मविबन्धार्शोगुल्मप्लीहविनाशनौ ॥' (सु. सू. ४६)

३. टङ्कण

नाम—सं०—टंकण, सौभाग्य । हि०—सुहागा; फा०—तंकार; अं०—बोरैक्स (Borax) ।

स्वरूप—गंधरहित, शुभ्र, पारदर्शक स्फटिकीय कणों के रूप में होता है । अशुद्ध टंकण पाण्डुवर्ण होता है । यह २५ गुने जल तथा समान भाग ग्लिसरीन में विलेय है । मद्यसार में अविलेय है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्राप्तिस्थान—कश्मीर से लेकर तिब्बत तक पूगघाटी (१५००० फीट ऊँची) में होता है। सांभर झील से तथा काठियावाड़ में मिट्टी से भी कुछ प्राप्त किया जाता है। बाहरी देशों में अमेरिका टंकण का सबसे बड़ा उत्पादक है।

रासायनिक संघटन—यह सोडियम बाइबोरेट है। इस पर गंधकाम्ल की क्रिया से टंकणाम्ल (Boric acid) प्राप्त होता है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण **रस**—कटु, लवण
विपाक—कटु **वीर्य**—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

संस्थानिक कर्म-बाह्य—यह जन्तुघ्न, स्तम्भन, रोपण तथा दुर्गन्धनाशन है।

आभ्यन्तर—अम्लतानाशन, दीपन, अनुलोमन, कफनिःसारक, आर्त्तवजनन, मूत्रल और विषघ्न है। यह मूत्रगत जीवाणुओं को नष्ट भी करता है।

दोषप्रयोग—मुख्यतः कफवातज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—इसका मलहम बना कर व्रणों में लगाते हैं। दद्रु आदि चर्मरोगों में भी लगाते हैं। नेत्ररोगों में तथा श्वेतप्रदर, पूयमेह, कर्णस्राव आदि में इसके द्रव से प्रक्षालन करते हैं। पारदजन्य लालास्राव तथा मुख, गले के रोगों में इससे कुल्ला करते हैं। मुखपाक, गले एवं मसूड़ों के व्रण में मधु में मिलाकर लगाते हैं। योनि एवं गुदकण्डू में इसके द्रव से प्रक्षालन करते हैं। अंगुलियों में पानी लगने से जो सड़न और दुर्गन्ध होती है, उसमें प्रयोग करते हैं।

आभ्यन्तर—अजीर्ण, उदरशूल, कास-श्वास, रजोरोध, कष्टप्रसव, मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्रदुर्गन्ध तथा विष, विशेषतः वत्सनाभविष में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—·५-१ ग्रा०।

विशिष्ट योग—टंकणामृत मलहर, टंकणाम्ल द्रव, सौभाग्यवटी, लवंगचतुःसम, रजःप्रवर्त्तनी, चन्द्रामृत।

विषाक्त लक्षण—अतिमात्रा में या चिरकालिक सेवन से, अग्निमांद्य, छर्दि, अतिसार, दौर्बल्य, अलब्युमिनमेह, खालित्य कुष्ठ, शोथ आदि उपद्रव उत्पन्न करता है।

निवारण—मधुर-अम्ल-स्निग्ध द्रव्यों का प्रयोग करे।

वक्तव्य—यवक्षार और स्वर्जिकाक्षार इन दोनों को एकत्र 'क्षारद्वय' तथा उसमें टंकण मिला देने से क्षारत्रय कहते हैं।

× × ×

'टङ्कणः कटुरुष्णश्च रूक्षस्तीक्ष्णश्च सारकः। कफविश्लेषणो हृद्यो वातामयनिषूदनः॥
कासश्वासहरः कामं स्थावरादिविषापहः। अग्निदीप्तिकरश्चापि भृशमाध्माननाशनः॥
स्त्रीपुष्पजनो बल्यो विविधव्रणसूदनः। पित्तकृच्च समाख्यातो मूढगर्भप्रवर्तकः॥' (र.त.)
'टङ्कणं वह्निकृद्रूक्षं कफघ्नं वातपित्तकृत्।' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४. स्फटिका

नाम—सं०–स्फटिका, स्फटिकारिका, तुवरी, कांक्षी, सौराष्ट्री (सौराष्ट्र में उत्पन्न); हि०–फिटकिरी; अ०–शिब्ब; अं०–ऐलम (Alum)।

स्वरूप—यह शुभ्र, पारदर्शक स्फटिकाकार खण्डों में होती है। जल तथा ग्लिसरीन में विलेय और मद्यसार में अविलेय है। यह स्फटिकाजनक पार्थिवांश (Alum shales) से बनाई जाती हैं। स्फटिकाजनक पार्थिवांश बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब, कच्छ, राजस्थान में पाया जाता हैं। पंजाब में इसका निर्माण विशेष होता है।

रासायनिक संघटन—अल्मुनियम सलफेट तथा पोटाशियम सलफेट के योग से यह बनती है।

गुण-कर्म

कषाय, मधुर, अम्ल, लेखन, स्तम्भन, ज्वरघ्न, कृमिघ्न और विषघ्न है।

बाह्य-प्रयोग—रक्तस्राव, व्रण, क्षत, दंश, विचर्चिका, कण्डू, नेत्ररोग आदि में प्रयोग करते हैं। श्वेतप्रदर, पूयमेह, कर्णस्राव आदि में उत्तरबस्ति देते हैं। मुख और गले के शोथ में इससे कुल्ला करते हैं।

आभ्यन्तर-प्रयोग—अतिसार, रक्तातिसार, कृमि, विषमज्वर एवं विषों में देते हैं विशेषतः नागविष में उपयोगी है। तन्तुकृमि में इसकी वस्ति देते हैं।

मात्रा—२००–५०० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—फुल्लिकाद्रव।

शोषण और उत्सर्ग—यह अलब्युमिनेट के रूप में शोषित होता है और मुख्यतः पुरीष तथा कुछ त्वचा, पित्त और मूत्र से निकलता है।

अहित प्रभाव—अति मात्रा (२–४ ग्रा०) देने पर वमन, अतिसार, शूल आदि लक्षण होते हैं।

निवारण—मधुर–स्निग्ध–शामक पदार्थ देना चाहिए।

वक्तव्य—रसरत्नसमुच्चय में सौराष्ट्री मृत्तिका का जो वर्णन 'तुवरी' नाम से है वह स्फटिकाजनक पार्थिवांश के लिए हो सकता है।

× × × ×

स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्तकफव्रणान्। निहन्ति श्वित्रवीसर्पान् योनिसङ्कोचकारिणी ॥'

(भा. प्र.)

'काङ्क्षी कषायां कटुका च तिक्ता ख्याता तथोष्णा विषदोषहन्त्री।
वीसर्पकण्डूतिहरा च केश्या श्वित्रापहा वै व्रणरोपणी च॥
नेत्ररोगप्रशमनी विषमज्वरनाशिनी। रतिमन्दिरसङ्कोचकारिणी व्रजहारिणी॥
ग्राहिणी लेखनी स्निग्धा रुधिरस्रावरोधनी। मुखरोगहरा चैव दन्तदार्ढ्यकरा मता॥'

(र. त.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५. सोरक

नाम—सं०-सोरक, सोरक्षार, मृतक्षार, कर्पूरशिलाजतु; हि०-शोरा, कलमी शोरा; अ०-अवकर; फा०-शोरः; अं०-साल्ट पिटर (Salt petre)।

स्वरूप—यह श्वेत, स्फटिकीय षट्कोण दानों के रूप में होता है। चौगुने जल में विलेय है। ३३९° तापक्रम पर गल जाता है।

प्राप्तिस्थान—यह नत्रजनयुक्त क्षारीय भूमि से संग्रहीत होता है। विशेषतः बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—यह पोटाशियम नाइट्रेट (KNO_3) है।

गुण-कर्म

यह लवण, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण होता है। बाह्य प्रयोग में शीतल एवं लेखन होता है। आभ्यन्तर रूप से यह दीपन, अनुलोमन तथा अधिक मात्रा में आमाशय का क्षोभक है। यह हृदय को क्षीण और मन्द करता है, रक्तकणों की ओषजनीकरण क्रिया कम करता है तथा रक्तस्कन्दन को रोकता है। यह श्लेष्महर, किंचित् स्वेदजनन, ज्वरघ्न एवं शोथहर है। वृक्कों पर इसकी विशिष्ट क्रिया होती है जिससे यह प्रभूत मूत्रल है।

प्रयोग

बाह्य—मूत्राघात में बस्तिप्रदेश पर इसका लेप करते हैं। श्वास, हिक्का में इसका नस्य लेते हैं।

आभ्यन्तर—आध्मान, अजीर्ण, आमवात, शिरःशूल, सन्धिवात, हिक्का, श्वास, पाण्डु, कामला, ज्वर, अश्मरी तथा मूत्राघात में दिया जाता है।

मात्रा—१००-४०० मि० ग्रा०।

विशिष्ट योग—श्वेत पर्पटी।

शोषण और उत्सर्ग—इसका शोषण शीघ्र होता है तथा उत्सर्ग उसी रूप में मुख्यतः मूत्र से तथा कुछ स्वेद और लाला से होता है। कुछ अंश नाइट्राइट में भी बदल सकता है।

अहित प्रभाव—अधिक मात्रा में लेने पर पाचनसंस्थान में क्षोभ होता है तथा रक्तवमन, रक्तातिसार, दौर्बल्य, मूर्च्छा, संन्यास और मृत्यु तक हो जाती है।

निवारण—मधुर-स्निग्ध पदार्थ देना चाहिए।

प्रयोगनिषेध—आमाशय, अन्त्र, मूत्राशय तथा वृक्क के शोथ में एवं हृद्दौर्बल्य में इसका प्रयोग निषिद्ध है।

× × × ×

'पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराद्यं शिलाजतु।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम्॥' (र. चू.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'सोरकः कटुकस्तीक्ष्णो विदग्धाजीर्णनाशनः।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्राग्निमान्द्यपाण्डुप्रमेहनुत् ॥' (र. त.)

६. फुल्लमृत्तिका

नाम—हि०–मुलतानी मिट्टी; अं०–फुलर्स अर्थ (Fuller's earth)।

स्वरूप—यह एक प्रकार की क्षारीय मृत्तिका है जो तैलांश तथा ऊनी कपड़ों की गन्दगी एवं रंग दूर करने के लिए प्रयुक्त होती रही है। डल्हण ने 'ऊषक' नाम से इसे वाराणसी के आसपास होनेवाली क्षारमृत्तिका कहा है। यह पीले या भूरे रंग की होती है। यह कणों या चूर्ण के रूप में उपलब्ध होती है।

प्राप्तिस्थान—यह बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र, मध्यप्रदेश, तामिलनाडु, कर्नाटक तथा राजस्थान में मिलता है।

रासायनिक संघटन—यह जलीय (hydrated) अल्युमिनियम सिलिकेट है जिसमें चूना, मैगनीशियम तथा लोह ऑक्साइड अशुद्धियों के रूप में मिले रहते हैं। जल ३०% तक रहता है।

गुणकर्म—व्रण, कुष्ठ आदि पर इसका लेप करते हैं।

× × × ×

व्रणकुष्ठहरा फुल्लमृत्तिका चर्मदोषहृत्। (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तृतीय खण्ड

आहार-द्रव्य

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रथम अध्याय

आहार एवं उसका वर्गीकरण

आहार

परिभाषा—'आह्रियते (पोषणार्थम्) इति आहारः'—शरीर के पोषण के लिए जो लिया जाय वह आहार है[1]। ऐसे द्रव्य जो मुख्यतः[2] आहार के रूप में लिये जाते हैं वे आहारद्रव्य कहलाते हैं।

आहार के घटक—शरीर के पोषण के लिए आवश्यक घटक प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, स्नेह, लवण, जल तथा विविध जीवनीय तत्त्व (विटामिन) हैं। विभिन्न आहारद्रव्यों के द्वारा इनका ग्रहण किया जाता है। प्रोटीन का ग्रहण मांसाहारी मांस द्वारा तथा शाकाहारी दाल, दूध आदि द्वारा करते हैं। महर्षि चरक ने सूत्ररूप में इन पोषक तत्त्वों का विभिन्न आहारद्रव्यों के माध्यम से निम्नांकित श्लोक में किया है—

षष्टिकान् शालिमुद्गांश्च सैन्धवामलके यवान्।
आन्तरीक्षं पयः सर्पिः जांगलं मधु चाभ्यसेत्॥ —च. सू. ५

इस सूत्र का विश्लेषण करें तो निम्नांकित स्वरूप स्पष्ट होता है :—

१. षष्टिक, शालि	कार्बोहाइड्रेट।
२. मुद्ग	प्रोटीन।
३. सैन्धव	लवण।
४. आमलक	विटामिन।
५. यव	पुरीषजनन तथा स्नेहव्यापत्प्रतिषेधक।
६. आन्तरीक्ष	शुद्ध जल।

---

१. आह्रियते शरीरस्य पोषणार्थमहर्निशम्।
अन्नपानादिरूपेषु स आहारः प्रकीर्त्तितः॥ (स्व.)
'प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च स षट्सु रसेषु आयत्तः'। (सु. सू. ४६।१)

२. 'मुख्यतः' का तात्पर्य यह है कि व्यवहार में आहारद्रव्य भी औषध के रूप में (यथा कुलत्थ) तथा औषधद्रव्य भी आहार के रूप में (यथा आमलकी) प्रयुक्त होते हैं। इस कारण दोनों के बीच में कोई भेदक रेखा खींचना कठिन है फिर भी व्यवहार की प्रमुखता के आधार पर इनका विभाजन किया जाता है। 'रसप्रधानमाहारद्रव्यं, वीर्यप्रधानमौषधद्रव्यम्' का भी तात्पर्य यही है। यहाँ 'रस' शब्द पोषण का द्योतक है और 'वीर्य' शब्द विविध औषधीय कर्मों का वाचक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

७. पयस् दुग्ध (प्रोटीन, स्नेह, शर्करा आदि)।
८. घृत स्नेह।
९. मधु शर्करा।

इस सूत्र का विस्तार महर्षि ने यज्जःपुरुषीय अध्याय (सूत्र० २५) में किया है। इससे आहार के विविध घटकों का ज्ञान होता है यथा—

१. शूकधान्य
२. शमीधान्य
३. जल
४. लवण
५. शाक
६. मांस
७. घृत
८. दुग्ध
९. तैल-वसा
१०. कन्द
११. फल
१२. इक्षुविकार।

हित और अहित आहारद्रव्य

जो आहारद्रव्य सम शरीरधातुओं को समावस्था में रक्खे तथा विषम होने पर उन्हें साम्यावस्था में ले आवे उसे हित और उसके विपरीत को अहित कहते हैं[1]।

आहार के विभिन्न घटकों में हिततम तथा अहिततम द्रव्यों का निर्देश निम्नांकित रूप में किया गया है :—

आहारघटक	हिततम	अहिततम
१. शूकधान्य	लोहितशालि	यवक
२. शमीधान्य	मुद्ग	माष
३. जल	आन्तरीक्ष	वर्षानादेय (बरसाती नदी को)
४. लवण	सैन्धव	औषर
५. शाक	जीवन्ती	सर्षप
६. मृगमांस	ऐणेय	गोमांस
७. पक्षी	लाव	काणकपोत
८. बिलेशय	गोधा	मण्डूक
९. मत्स्य	रोहित	चिलचिम
१०. घृत	गोघृत	मेषीघृत
११. दुग्ध	गोदुग्ध	मेषीक्षीर
१२. स्थावर स्नेह	तिलतैल	कुसुम्भतैल

१. यदाहारजातं समांश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमांश्च समीकरोति इत्येतद् हितं विपरीतमहितमिति। (च. सू. २५।३३)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१३. आनूपमृगवसा	वराहवसा	महिषवसा
१४. मत्स्यवसा	चुलुकीवसा	कुम्भीरवसा
१५. जलचरविहंगमवसा	पाकहंसवसा	काकमद्गुवसा
१६. विष्किरशकुनिवसा	कुक्कुटवसा	चटकवसा
१७. शाखादमेदस्	अजमेदस्	हस्तिमेदस्
१८. कन्द	आर्द्रक	आलुक
१९. फल	मृद्वीका	लकुच
२०. इक्षुविकार	शर्करा	फाणित[1]।

आर्यभक्त

कौटिल्य ने आर्यभक्त का विवरण दिया है[2] जिससे सन्तुलित आहार का संकेत मिलता है। मात्रा के प्रसंग में 'सर्वग्रह' और 'परिग्रह' शब्दों का प्रयोग किया गया है। सर्वग्रह का अर्थ आहार की कुल मात्रा है। आहार के विभिन्न घटकों की पृथक्-पृथक् मात्रा परिग्रह कहलाती है[3]। सन्तुलित आहार में इन दोनों का विचार अपेक्षित है। चक्रपाणि ने इसकी व्याख्या में तत्कालीन आहार का निर्देश किया है[4]।

आहार के सम्बन्ध में ज्ञातव्य भाव

आहार के सम्बन्ध में सर्वप्रमुख ज्ञातव्य भाव है द्रव्य जिसका प्रयोग आहार के रूप में किया जाता है। द्रव्य के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने पर उसमें रहने वाले गुणों एवं कर्मों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार सर्वप्रथम द्रव्य तथा तदाश्रित गुण-कर्म का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है[5]।

---

१. च० सू० २५।२७।

२. ओदन १ प्रस्थ (७०० ग्राम)
   सूप १ कुडव (१७५ ग्राम)
   लवण $\frac{1}{16}$,, (१० ग्राम)
   घृत-तैल $\frac{1}{4}$,, (४० ग्राम) —(अर्थशास्त्र २·३१·१५·१६)

यह मात्रा दोनों समय के मुख्य आहार की प्रतीति होती है। फिर भी आजकल की मात्रा से अधिक है।

३. सर्वस्याहारस्य प्रमाणग्रहणमेकपिण्डेन सर्वग्रहः,
   परिग्रहः पुनः प्रमाणग्रहणमेकैकस्वेनाहारद्रव्याणाम्। (च. वि. १।२२)

४. उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या में चक्रपाणि ने अन्न, सूप तथा मांस की मात्रा क्रमशः एक कुडव (१७५ ग्रा०), एक पल (४० ग्रा०) और दो पल (८० ग्रा०) लिखी है जो आजकल की मात्रा से प्रायः मिलती जुलती है।

५. येषां हि विदितमाहारतत्त्वमग्निवेश ! गुणतो द्रव्यतः कर्मतः सर्वावयवशश्च मात्रादयो भावाः। (च. सू. २५।३५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तदनन्तर उसके प्रयोग के सम्बन्ध में आठ विशेषायतनों[1] का विचार करना चाहिए। इस प्रकार आहार के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर तथा हिताहित का विचार करने के बाद उसका प्रयोग श्रेयस्कर होता है[2] अन्यथा नहीं।

आहार का वर्गीकरण

यद्यपि आहारत्व की दृष्टि से आहार एक ही प्रकार का है तथापि अन्य दृष्टियों से उसके विभाग किये गये हैं यथा—

१. योनि की दृष्टि से आहार दो प्रकार का है—स्थावरयोनि और जांगमयोनि। वनस्पतियों से जो आहार प्राप्त होता है वह स्थावरयोनि तथा प्राणियों से जो प्राप्त होता है वह जंगमयोनि कहलाता है। सामान्यतः इन्हें क्रमशः शाकाहार और मांसाहार के नाम से जाना जाता है।

२. प्रभाव की दृष्टि से भी दो प्रकार का है—हित और अहित। जो शरीर के धातुओं के लिए लाभकर हो वह हित अन्यथा अहित कहलाता है।

३. उपयोग के अनुसार चार प्रकार का है—पान (पेय), अशन (भोज्य), भक्ष्य (खाद्य) और लेह्य। चावल, रोटी आदि मुख्य कोमल आहार को अशन या भोज्य कहते हैं। इसके अतिरिक्त अपेक्षाकृत कठिन अन्य ठोस आहार द्रव को भक्ष्य या खाद्य कहते हैं यथा मोदक, फल आदि। सान्द्र-द्रव चाटने योग्य आहार लेह्य (चटनी) तथा द्रव पदार्थ पेय कहलाते हैं[3]। बाद में एक पाँचवाँ भेद 'चोष्य' (चूसने योग्य) बनाया गया यथा ईख आदि।

४. रस की दृष्टि से आहार छः प्रकार का है—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय।

५. गुर्वादि गुणों की दृष्टि से २० प्रकार का आहार है।

---

१. तत्र खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति; तद्यथा—प्रकृति—करण संयोग—राशि—देश—काल—उपयोगसंस्था—उपयोक्त्रष्टमानि भवन्ति। (च. वि. १।२८)

'आहारस्य विधावष्टौ विशेषा हेतुसंज्ञकाः।
शुभाशुभसमुत्पत्तौ तान् परीक्ष्य प्रयोजयेत्॥' (च. सू. २८।४१)

२. न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारमुपयोजयेत्। परीक्ष्य हितमश्नीयाद्देहो ह्याहारसंभवः॥ (च. सू. २८।४०)

३. तस्याशितपीतलीढखादितस्य। (सु. सू. ४६।९)
'अशितं भोज्यमोदनादि, पीतं पेयं क्षीरादि, लीढं लेह्यं मध्वादि, खादितं भक्ष्यं मोदकादि'। (डल्हण)
विविधमशितं पीतं लीढं खादितम्। (च. सू. २८।३)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

देखा जाय तो व्यवहार में द्रव्यों के परस्पर संयोग तथा संस्कारों की विविधता एवं बहुलता के कारण आहार के भेदों की संख्या निर्धारित करना कठिन है[1]।

आहारद्रव्यों का वर्गीकरण

आहारद्रव्य मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किये जाते हैं—१. अन्नद्रव्य (Food), २. द्रवद्रव्य (Drinks)। पहले में ठोस खाद्य पदार्थ तथा दूसरे में पेय पदार्थ आते हैं। दोनों को मिला कर 'अन्न-पान' शब्द सामान्यतः आहार के लिए प्रचलित है।

अन्नद्रव्यों तथा द्रवद्रव्यों को पुनः अनेक वर्गों में विभाजित कर उनका वर्णन किया गया है। चरक ने दोनों को एक ही अध्याय (सूत्र० २७) में समाविष्ट कर निम्नांकित १२ वर्ग बनाये हैं[2] :—

१. शूकधान्य	७. मद्य
२. शमीधान्य	८. जल
३. मांस	९. गोरस
४. शाक	१०. इक्षुविकार
५. फल	११. कृतान्न
६. हरित	१२. आहारयोगी

सुश्रुत ने द्रव और अन्न द्रव्यों को पृथक्-पृथक् अध्यायों (सूत्र० ४५।४६) में व्यवस्थित किया है। तदनुसार इनका वर्गीकरण निम्नांकित प्रकार से किया गया है :—

द्रवद्रव्य	अन्नद्रव्य
१. जलवर्ग	१. शालिवर्ग
२. क्षीरवर्ग	२. कुधान्यवर्ग
३. दधिवर्ग	३. वैदलवर्ग
४. तक्रवर्ग	४. मांसवर्ग
५. घृतवर्ग	५. फलवर्ग
६. तैलवर्ग	६. शाकवर्ग...

---

१. आहारत्वमाहारस्यैकविधम्, अर्थाभेदात्; स पुनर्द्वियोनिः स्थावरजङ्गमात्मकत्वात्; द्विविधप्रभावः हिताहितोदर्कविशेषात्; चतुर्विधोपयोगः पानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगात्; षडास्वादः रसभेदतः षड्विधत्वात्; विंशतिगुणः गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्रद्रवानुगमात्; अपरिसंख्येयविकल्पः द्रव्यसंयोगकरणबाहुल्यात्'। (च. सू. २५।३६)

२. शूकधान्यशमीधान्यमांसशाकफलाश्रयान्।
वर्गान् हरितमद्याम्बुगोरसेक्षुविकारिकान्॥
दश द्वौ चापरौ वर्गौ कृतान्नाहारयोगिनाम्। (च. सू. २७).

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

७. मधुवर्ग
८. इक्षुवर्ग
९. मद्यवर्ग
१०. मूत्रवर्ग

७. पुष्पवर्ग
८. कन्दवर्ग
९. लवणवर्ग
१०. क्षारवर्ग
११. धातुवर्ग[1]
१२. रत्नवर्ग[2]
१३. कृतान्नवर्ग

स्पष्टतः चरक की अपेक्षा सुश्रुत का वर्गीकरण अधिक विकसित है[3]।

वाग्भट ने चरक और सुश्रुत दोनों के विचारों का समन्वय कर निम्नांकित वर्गीकरण प्रस्तुत किया :—

द्रवद्रव्य[4]
१. जलवर्ग
२. क्षीरवर्ग
३. इक्षुवर्ग
४. तैलवर्ग
५. मद्यवर्ग
६. मूत्रवर्ग

अन्नद्रव्य[5]
१. शूकधान्यवर्ग
२. शिम्बीधान्यवर्ग
३. कृतान्नवर्ग
४. मांसवर्ग
५. शाकवर्ग
६. फलवर्ग।

इसके अतिरिक्त, अष्टांगसंग्रह में हरितवर्ग तथा आहारयोनिवर्ग के स्थान पर कुठेरादिगण (सू. ७।१५६–१६०) में ही इन कटुप्रधान द्रव्यों का उल्लेख किया और इसका नाम हरितक वर्ग दिया[6]।

अष्टांगहृदय ने उपर्युक्त क्रम ही किंचित् परिवर्तित रूप में अपनाया। द्रवद्रव्यों के मूत्रवर्ग का पृथक् उल्लेख न कर दुग्धवर्ग के अन्त में ही मूत्रों का वर्णन कर दिया। दूसरी ओर अन्न द्रव्यों में एक औषधवर्ग बढ़ा दिया जिसमें लवण, क्षार आदि आहारयोगी द्रव्यों का विवरण है[7]।

---

१. धातु के पात्रों का भोजन में प्रयोग होता था। अतः इनका गुणधर्म भी बतलाया।
२. भोजनकाल में रत्नों के धारण का विधान था। वे पवित्र एवं विषनाशक समझे जाते थे।
३. देखें द्रव्यगुणविज्ञान, प्रथम भाग, द्रव्यखण्ड, दशम अध्याय।
४. अ० सं० सू० ६।
५. अ० सं० सू० ७।
६. वर्गो हरितकाख्योऽयमुपदंशेषु युज्यते। पाचको व्यञ्जनानां च हृद्यो दीपनरोचनः॥ (अ. सं. सू. ७)
७. तोयक्षीरेक्षुतैलानां वर्गैर्मद्यस्य च क्रमात्। इति द्रवैकदेशोऽयं यथास्थूलमुदाहृतः॥ (अ. हृ. सू. ५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चक्रपाणिदत्तकृत द्रव्यगुणसंग्रह में धान्य, मांस, शाक, लवणादि, फल, जल, क्षीर, तैल, इक्षुविकृति, मद्य, कृतान्न, भक्ष्य ये १२ वर्ग निर्धारित किये हैं। इनके अतिरिक्त, आहारविधिवर्ग तथा अनुपानवर्ग भी हैं।

सोढलनिघण्टु में शाक और फल का मुख्यतः क्रमशः करवीरादि तथा आम्रादि औषधीय वर्गों में समाविष्ट कर अन्य द्रवद्रव्यों के लिए पानीय, क्षीर, दधि, तक्र, नवनीत, घृत, तैल, मधु, इक्षु, मद्य, मूत्र तथा अन्नद्रव्यों के लिए शूकधान्य, जूर्णा, तृणधान्य, कृतान्न; अनुपान, मांस ये वर्ग निर्धारित किये गये हैं। हरितक द्रव्यों में शिग्रु आदि का उल्लेख किया है[1]।

मदनपालनिघण्टु में फलवर्ग, शाकवर्ग, द्रववर्ग, इक्षुकादि (मधुर), धान्यवर्ग, कृतान्नवर्ग, मांसवर्ग इन सात वर्गों में आहारद्रव्यों का वर्णन किया है।

कैयदेवनिघण्टु में धान्य, द्रव, पक्वान्न तथा मांस ये चार वर्ग ही निर्धारित हैं।

भावप्रकाश में आम्रादि (फल) वर्ग, धान्यवर्ग, शाकवर्ग, मांसवर्ग, कृतान्नवर्ग, वारिवर्ग, दुग्धवर्ग, दधिवर्ग, तक्रवर्ग, नवनीतवर्ग, मूत्रवर्ग, तैलवर्ग, सन्धानवर्ग, मधुवर्ग, इक्षुवर्ग इन १६ वर्गों में आहारद्रव्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

लोलिम्बराज ने अपने लघु ग्रन्थ 'वैद्यावतंस' में आहारद्रव्यों का संक्षिप्त वर्णन किया है। इसमें फलवर्ग, फलशाकवर्ग, पत्रशाकवर्ग, धान्यवर्ग, मांसवर्ग तथा दुग्धवर्ग ये सात वर्ग हैं। इसी प्रकार त्रिमल्लभट्ट 'द्रव्यगुणशतक' के १०० पद्यों में आहारद्रव्यों का वर्णन किया है जिसमें जलवर्ग, दुग्धवर्ग, मांसवर्ग, शाकवर्ग, शुण्ठ्यादिवर्ग, सिद्धान्नवर्ग, मद्यवर्ग ये ८ वर्ग हैं।

राजबल्लभनिघण्टु मुख्यतः आहारविहारसम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें आहारद्रव्यों के १४ वर्ग निर्धारित किये गये हैं :—धान्यवर्ग, शाकवर्ग (पत्र, पुष्प, फल, नाडी, मूल), फलवर्ग, मत्स्यमांसवर्ग, दुग्धवर्ग, मधुवर्ग, क्षीरवर्ग, तक्रवर्ग, घृतवर्ग; इक्षुवर्ग, हिंग्वादिवर्ग, कृतान्नवर्ग, भोजनयोगिवर्ग[2]।

इस प्रकार विभिन्न निघण्टुकारों ने प्राचीन संहितोक्त वर्गीकरण के आधार पर किंचित् परिवर्द्धित कर आहारद्रव्यों का वर्गीकरण किया है।

शूकशिम्बीजपक्वान्नमांसशाकफलौषधैः। वर्गितै रन्नलेशोऽप्यमुक्तो नित्योपयोगिकः॥
(अ. हृ. सू. ६)

१. शिग्रुसर्षपभूतीकतुलसीखरपत्रकाः। कुठेरः सुमुखा राजी गण्डीरं जलपिप्पली॥
वर्गो हरितकाख्योऽयं हृद्यो दीपनपाचनः। (करवीरादि, ४०७-८)

२. यहाँ भोजनोत्तर लिये जाने वाले मुखशोधक पूग आदि द्रव्यों का वर्णन है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्वितीय अध्याय

धान्यवर्ग

मनुष्य के आहार में अधिकतम अंश धान्यवर्ग के द्रव्यों का ही होता है।

धान्य मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किये गये हैं:—(१) शूकधान्य (२) शिम्बीधान्य या शमीधान्य (३) क्षुद्रधान्य या तृणधान्य। प्रथम वर्ग में चावल-गेहूँ आदि, दूसरे में प्रायः दाल (अरहर, मूंग, मसूर आदि) तथा तीसरे वर्ग में कंगुनी, सांवा, ज्वार आदि आते हैं। शूकधान्य में फल प्रायः शूकयुक्त, शिम्बीधान्य में शिम्बी (छेमी) के रूप में होते हैं। क्षुद्र या तृणधान्य प्रायः वन्य रूप में होते हैं तथा पोषण की दृष्टि से इनका स्थान अपेक्षाकृत हीन होता है।

भावप्रकाश में धान्य पांच प्रकार के कहे गये हैं:—(१) शालिधान्य (२) व्रीहिधान्य (३) शूकधान्य (४) शिम्बीधान्य (५) क्षुद्रधान्य[1]। वस्तुतः शालि और व्रीहि शूकधान्य के ही भेद होने से उपर्युक्त तीन भेदों में ही इनका अन्तर्भाव हो जाता है।

राजवल्लभनिघण्टु में जो शालि, व्रीहि और षष्टिक ये तीन भेद धान्य के किये हैं[2] वे वस्तुतः 'धान्य' (धान) के भेद हैं। विस्तृत अर्थ में 'धान्य' शब्द समस्त धान्यों का वाचक है जबकि संकीर्ण अर्थ में वह केवल 'धान' (Paddy) का वाचक रह जाता है। राजवल्लभ निघण्टु का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में ही है[3]।

शूकधान्य

इनके फल शूकयुक्त होते हैं।

१. धान्य

परिचय

कुल—यवकुल (ग्रामिनी–Gramineae)

नाम—लै०–ओरिजा सेटाइवा (Oryza sativa Linn.); हि०–धान; ता०–नेल्लु, अरिसि; ते०–वडलु; मल०–नेल्लु, अरि, कन्न०–नेल्लु, अं०–पैडी (Paddy)।

निस्तुष (छिलका हटाये) फल तण्डुल (हि०–चावल; अं०–Rice) कहलाते हैं।

---

१. शालिधान्यं व्रीहिधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम्।
शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम्॥ (भा. प्र., धान्यवर्ग १)

२. अथ धान्यं त्रिधा शालिषष्टिकव्रीहिभेदतः। (रा. ध. १.२)

३. चक्रपाणि ने भी ऐसा प्रयोग किया है। (देखें–द्रव्यगुण १.१४)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप—इसका पौधा वर्षायु या बहुवर्षायु तथा काण्ड २–१० फीट लंबा होता है। पत्र–१–२ फीट लंबा, ·२५–·३ चौड़ा धारीदार, रोमश तथा किनारों पर कण्टकितरोमश, पत्रकोष श्लक्ष्ण, जिह्विका लंबी द्विविभक्त होती है। बाली एकल या २–७ के गुच्छों में, प्राय नीचे की ओर झुकी होती है। वन्य पौधों में यह शूकयुक्त होती है।

उत्पत्तिस्थान—यह अधिकतर आनूप देश में होता है। भारत के पूर्वी तथा दक्षिणी राज्यों में यह बहुलता से उपजाया जाता है।

जाति—शालि, षष्टिक और व्रीहि ये तीन भेद धान के होते हैं। इनकी फसल क्रमशः हेमन्त, ग्रीष्म (या वर्षा) और शरद् में तैयार होती है[1]। षष्टिक (साठी) साठ दिनों में तैयार हो जाते हैं[2]। भावप्रकाश के अनुसार जिसके चावल बिना छाँटे स्वभावतः श्वेतवर्ण हो वह शालि, छांटने पर सफेद हो वह व्रीहि कहलाता है, षष्टिक शीघ्र पक कर तैयार हो जाता है[3]। शिवदास सेन ने चावल के वर्ण के आधार पर इस प्रकार का विभाजन अयुक्तिसंगत बतलाया है क्योंकि शालि का ही एक भेद लाल (रक्तशालि) होता है तथा षष्टिक और व्रीहि की कई जातियों में भी चावल सफेद होता है[4]। कृषिभेद से भी दो प्रकार का होता है १. रोप्य (Transplanted) २. वाप्य (Broadcast) जिन्हें क्रमशः लोकभाषा में 'रोपा' और 'बोगहा' या 'बाउग' कहते हैं। इसके अनुसार भी शालि और व्रीहि में भेद किया जा सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में शालि, षष्टिक[5] और व्रीहि की अनेक जातियों का उल्लेख विशिष्ट नामों से हुआ है। आजकल कृषिविज्ञान की प्रगति के कारण धान्य की अनेक नई प्रगतिशील जातियों का प्रादुर्भाव हुआ है।

शालिधान्य में रक्तशालि तथा षष्टिक में गौर षष्टिक श्रेष्ठ माना गया है[6]।

---

१. अथ धान्यं त्रिधा शालिषष्टिकव्रीहिभेदतः।
शालयो हैमनास्तत्र षष्टिका ग्रैष्मिका अपि॥
व्रीहयस्त्वाशवः ख्याताः प्रावृट्कालसमुद्भवाः।
(रा. व. ३।२–३, देखें W. I. VII, P. 130)

२. षष्टिका षष्टिरात्रेण पच्यन्ते। (पा. वा. ५।१।९०)

३. 'कण्डनेन बिना शुक्ला हैमन्ताः शालयः स्मृताः।'
'वार्षिकाः कण्डिताः शुक्लाः व्रीहयः' गर्भस्था एव ये
पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः।' (भा. प्र. धान्य. १,१७,२२)

४. अत्र शालिशब्देन हैमन्तिकं धान्यमुच्यते; यत्तु अकण्डितशुक्लत्वेन शालित्वमुच्यते तद् ग्रैष्मिकेषु षष्टिकादिषु शारदेषु च व्रीहिषु गतत्वात्, सकलशालिव्यापकत्वाच्च न युक्तम्। शिवदाससेन (चक्रपाणिकृत द्रव्यगुणसंग्रह, १.१३)

५. 'रक्तशालिर्वरस्तेषां' 'षष्टिकः प्रवरो गौरः'। (च. सू. २७. ११,१३)

६. धान का परिपाक प्रायः ८५–२४० दिनों में होता है किन्तु तापक्रम तथा दिनमान

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संघटन—धान की भूसी लगभग २५% होती है। बीज में तीन भाग होते हैं—बाह्य (Peicarp), मध्य (endosperm) और आभ्यन्तर (Germ) जो क्रमश: ६, ९१.७५ और २.२५ प्रतिशत होते हैं।

भूसीसमेत चावल में आर्द्रता १०.९०–१३.७८, प्रोटीन ५.५०–९.३२, कार्बोहाइड्रेट ७३.३५–८०.८१; सूत्र ०.१८–०.९५ तथा खनिज पदार्थ ०.७९–२.०० प्रतिशत होते हैं। इसमें प्रमुख रूप से स्टार्च होता है। स्टार्च ७२.२–७४.९; ग्लुकोज १.४५–२.६५, सक्रोज ०.३–०.४८, डेक्ष्ट्रिन १.५६–२.०५ प्र० श० होता है।

चावल पुराना होने पर कार्बोहाइड्रेट की मात्रा में कोई विशेष अन्तर नहीं आता किन्तु एमाइलेज नामक किण्वतत्त्व की क्रिया के कारण स्टार्च के जलीय विश्लेषण द्वारा माल्टोज बनता है। गेहूँ और मक्का की तुलना में चावल में प्रोटीन कम होता है। चावल की भूसी में ३/४ प्रोटीन होता है, शेष उसके भीतरी अंश में होता है। चावल का मुख्य प्रोटीन ओरिजेनिन (Oryzenin) नामक ग्लुटेलिन होता है। पिच्छिल (gluttinous) चावल में अपिच्छिल (Non-gluttinous) चावल की अपेक्षा ओरिजेनिन अधिक मात्रा में होता है। इसके अतिरिक्त, अनेक आवश्यक एमिनो एसिड (लाइसिन, मेथिओनिन आदि) होते हैं।

जीवनीय द्रव्यों में विटामिन बी और ई विशेष रूप से होते हैं। चावल की भूसी में विटामिन बी विशेष रूप से होता है। खनिज द्रव्यों में कैल्शियम (१४.३–८५.७ मि० ग्रा०) तथा फास्फरस (१७१.६–५५८.८ मि० ग्रा०) प्रति १०० ग्राम भूसी सहित चावल में होते हैं। इनके अतिरिक्त, सोडियम (२० मि० ग्रा०), पोटाशियम (१०० मि० ग्रा०) प्रति १०० ग्राम, मैगनीशियम, गन्धक और क्लोरीन तथा स्वल्प परिमाण में ताम्र, यशद, आर्सेनिक, आयोडिन आदि तत्त्व होते हैं। आयोडिन का ६५% चावल की भूसी में होता है।

चावल में एमाइलेज, प्रोटिएज, लाइपेज, फेनोलेज आदि किण्वतत्त्व भी होते हैं। रंगयुक्त चावल में रंजकद्रव्य सायनिडिन (Cyanidin) और डेल्फिनिडिन (Delphinidin) होते हैं। अन्य घटकों में कैरोटिनायड, पेक्टिन, पालिफेनोल तथा स्टैकिड्रिन (Stachydrine) और ट्राइगोनेलिन (Trigonelline) नामक दो क्षाराभ होते हैं। निम्बुकाम्ल, सिरकाम्ल आदि अम्ल तथा कुछ सुगन्धित पदार्थ

के ऊपर यह विशेषतः निर्भर होता है। कुछ जातियाँ कम दिनमान (अधिक रात्रिमान) में शीघ्र परिपक्व होती हैं। षष्टिक इसी प्रकार की जाति है। इस सम्बन्ध में वार्त्तिककार का वचन 'षष्टिरात्रेण पच्यन्ते' महत्त्वपूर्ण है जो कम दिनमान और अधिक रात्रिमान का संकेत करता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भी होते है। पॉलिश किये हुए चावल से लाइसोलेसिथिन (Lysolecithin) नामक विषाक्त पदार्थ निकाला गया है।

चावल की भूसी में वसा, प्रोटीन, शर्करा तथा विटामिन वी मुख्यतः होते हैं। इससे एक साथ खाद्य तैल (Bran oil) भी २५% प्राप्त होता है।

गुण-कर्म

शालि स्निग्ध, मधुररस, मधुरविपाक, शीतवीर्य, किंचित् कफवातकारक, पित्त-शामक, पुरीष को कम तथा मूत्र को अधिक लाने वाला, शुक्रवर्धक एवं बृंहण है[1]। रक्तशालि त्रिदोषघ्न, चक्षुष, बल्य, वृष्य एवं मूत्रल है[2]।

षष्टिक लघु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, त्रिदोषघ्न तथा स्थैर्यकारक है[3]। व्रीहि गुरु, मधुररस, अम्लविपाक, पित्तकारक, मूत्र, पुरीष तथा ऊष्मा को बढ़ाने वाला होता है[4]।

भावप्रकाश ने प्रायः इसी के अनुसार इनके गुणकर्मों का वर्णन किया है[5]।

नया चावल गुरु, वृष्य तथा पुराना लघु होता है[6]। एक वर्ष का पुराना चावल लघु अकफकर[7] और पथ्य होता है। उसके बाद का और लघु, रूक्ष तथा वात-प्रकोपक हो जाता है[8]।

---

१. ''''''''ये चान्ये शालयः शुभाः। शीता रसे विपाके च मधुराः स्वल्पमारुताः॥
बद्धाल्पवर्चसः स्निग्धाः बृंहणाः शुक्रमूत्रलाः। (च. सू. २७।१०)

२. रक्तशालिस्त्रिदोषघ्नश्चक्षुष्यः शुक्रमूत्रलः।
तृष्णाघ्नो बलकृत् स्वर्यो हृद्यस्तद्वनु चापरे॥ (द्र. सं. २।१२)

३. शीतः स्निग्धोऽगुरुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरात्मकः। षष्टिकः (च. सू. २७।१३)
सुश्रुत इसे वातपित्तशामक किन्तु कफवर्धक बतलाते हैं। (सु. ४६।९)

४. मधुरश्चाम्लपाकश्च व्रीहिः पित्तकरो गुरुः। बहुमूत्रपुरीषोष्मा (च. सू. २७।१५)

५. शालयो मधुराः स्निग्धाः बल्या बद्धाल्पवर्चसः।
कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः॥
अल्पानिलकफाः शीताः पित्तघ्ना मूत्रलास्तथा।
'रक्तशालिर्वरस्तेषु बल्यो वर्ण्यस्त्रिदोषजित्।
चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्यः शुक्रलस्तृड्ज्वरापहः॥
विषव्रणश्वासकासदाहनुद् वह्निपुष्टिदः। तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः॥
'षष्टिकाः मधुराः शीता लघवा बद्धवर्चसः।
वातपित्तप्रशमनाः शालिभिः सदृशा गुणैः॥'
'व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्यतो हिमाः।
अल्पाभिष्यन्दिनो बद्धवर्चस्काः षष्टिकैः समाः॥' (भा. प्र. ,

६. रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः। (भा. प्र.)

७. च० सू० २७।४।

८. धान्यं सर्वं समातीतं पथ्यं लघ्वन्यथा नवम्।
ततः परं लघुतरं रूक्षं वातप्रकोपणम्॥ (द्र. सं. २।१५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग

आहारीय—चावल मनुष्य का प्रधान आहार है। इसे जल में पका कर ओदन (भात) बनाते हैं। चावल को आग में भून कर धाना (दाना या भूंजा) बनता है। उसे यों ही नमक आदि के साथ खाते हैं। चावल को पीस कर आँटा (पिष्ट) बनता है जिससे रोटी, पूप और पिष्टक (पिठ्ठा) आदि बनते हैं। धान को भून कर लाजा (लावा या खील) बनाते हैं तथा धान को उबालने के बाद कूट कर पृथुक (चूड़ा) बनता है। इस प्रकार विविध रूपों में चावल का प्रयोग आहार के रूप में होता है।

चावल अरवा (Raw) तथा उसना (Parboiled) दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है।

औषधीय—आहार का प्रमुख द्रव्य होने पर भी इसके औषधीय उपयोग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। शालिमूल तृणपञ्चमूल में डालते हैं जो एक उत्तम मूत्र-विरेचनीय औषध है। चरक ने शालि और षष्टिक का स्तन्यजनन गण में उल्लेख किया है[1]।

धान का लावा (लाजा) छर्दिनिग्रहण द्रव्यों में सर्वोत्तम माना गया है[2] जो एलादि चूर्ण का एक घटक है। इन रोगों में लाजमण्ड भी देते हैं।

तण्डुलोदक (चावल का धोवन) उत्तम रक्तपित्तशामक हैं। रक्तप्रदर में इसके अनुपान से औषध दी जाती है।

२. गोधूम

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी-Gramineae)

नाम—लै०-ट्रिटिकम इस्टिवम (Triticum aestivum Linn.); सं०-गोधूम; हि०-गेहूँ; ता०-गोधूमइ; ते०-गोधूमलु; कन्न०-गोधि; मल०-गेंदुम; अ०-हिंत:, कमुर; फा०-गंदुम; अं०-ह्वीट (Wheat)।

स्वरूप—इसका पौधा वर्षायु ६०-१५० से० मी० ऊँचा होता है। काण्ड प्राय: पोला, ५-७ पर्व युक्त, पर्व पूरे या अंशत: पत्रकोषावृत होते हैं। पत्र-लम्बे, पतले, स्पष्टसिरायुक्त तथा जिह्विका एवं कर्णक सहित होते हैं। बालियाँ-शूकयुक्त या निःशूक; पुष्पदंडक के समानान्तर, ५-९ पुष्पयुक्त होती हैं जिनमें केन्द्रस्थ ४-५ दाने पकते हैं, प्राय: ऊपरी या निचले भाग में कम होते हैं। दाने ५-१० मि० मी० लम्बे, संवगोल, गोलाग्र, फूले हुए, एक ओर हलकी परिखा से युक्त होते हैं।

---

१. च० सू० ४।१७।
२. 'लाजाश्छर्दिघ्नानाम्'। (अ. सं. सू. १३।१)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रायः शरद् (अक्टूबर-नवम्बर) में बोया जाता है और ग्रीष्म के प्रारंभ (अप्रिल-मई) में फल पक कर तैयार हो जाता है और पौधा भी सूख जाता है[1]।

उत्पत्तिस्थान—भारत में इसकी खेती विशेषतः पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा उत्तरी राजस्थान में होती है। हिमालय प्रदेश में इसकी खेती ४००० मीटर ऊँचाई तक होती है।

गोधूम मूलतः दक्षिण पश्चिमी एशिया एवं भूमध्यसागरतटवर्ती देशों का निवासी है। भारत में यवनों के साथ आया अतः इसे 'म्लेच्छभोजन' कहा गया[2]। ऋग्वेद में इसका उल्लेख नहीं है। यव प्राचीन भारतीय अन्न है।

जाति—इसके अनेक रूप तथा संकर जातियाँ विकसित हुई हैं। भावमिश्र ने इसके तीन भेद किये हैं—(१) महागोधूम (२) मधूली (३) नन्दीमुख। महागोधूम पश्चिमी देशों से आया है, मधूली कुछ छोटी और मध्यदेश में उत्पन्न होती है तथा नन्दीमुख निःशूक होता है जिसे दीर्घ गोधूम भी कहते हैं[3]।

रासायनिक संघटन—गेहूँ में भूसी १३–१४; मज्जा ८४–८५ तथा भ्रूण २–३ प्रतिशत होता है। इनमें क्रमशः सूत्र, स्टार्च तथा तैल की अधिकता रहती है। गेहूँ में आर्द्रता ८–१७, स्टार्च ६३–७१, शर्करा २–३, प्रोटीन ८–१५, सूत्र २–२.५, वसा १.५–२ और राख १.५–२ प्रतिशत होती है। खनिजों में कैल्शियम ४१, मैगनीशियम १३८, फास्फरस ३०६, लोह ४–९, सोडियम १७.१, पोटाशियम २८४, ताम्र ०.४९, गंधक १२८ तथा क्लोरीन ४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामिन ए, बी, और ई पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इसके अतिरिक्त, अनेक किण्वतत्त्व भी होते हैं। गेहूँ के चोकर में सेल्युलोज पर्याप्त मात्रा में होता है। भ्रूण (germ) से ८–१० प्रतिशत एक तैल (wheat oil or wheat germ oil) निकलता है जिसमें विटामिन ई पर्याप्त होता है। कुछ रंजक द्रव्य, फ्लेवोनॉयड, ऐन्थोसायनिन, पेक्टिन तथा फेनोलिक द्रव्य भी पाये जाते हैं[4]।

---

१. इसी वर्ग के पौधों को चरक ने 'ओषधि' कहा है—'ओषध्यः फलपाकान्ताः'।

२. गोधूमो यवकश्चैव ह्रस्वो म्लेच्छभोजनः। (ध. नि. ६।१९)
चरक ने बाह्लीक, पह्लव, चीन, शूलीक, यवन और शकों के लिए गोधूम सात्म्य कहा है। (च. चि. ३०।३१६)

३. गोधूमः सुमनोऽपि स्यात् त्रिविधः स च कीर्तितः।
महागोधूम इत्याख्यः पश्चाद्देशात् समागतः॥
मधूली तु ततः किञ्चिदल्पा सा मध्यदेशजा।
निःशूको दीर्घगोधूमः क्वचिन्नन्दीमुखाभिधः॥ (भा. प्र.)

४. W. I., X, 360–370।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण-कर्म

गोधूम गुरु-स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, वातपित्तशामक, सन्धानकर, जीवनीय, बृंहण, वृष्य, सर तथा स्थैर्यकारक है[1]। नन्दीमुखी और मधूली मधुर, स्निग्ध और शीतवीर्य हैं।

प्रयोग

आहारीय—आजकल सारे विश्व में गेहूँ एक मुख्य आहारद्रव्य है जिसका अनेक रूपों में उपयोग होता है। इसके आँटे की रोटी (चपाती), पूरी, डबलरोटी आदि बनाई जाती है। गेहूँ सन्तर्पण आहार कहा गया है (च. सू. २३।३१)। पुराना गेहूँ, कफवर्धक नहीं होता (च. सू. २७।४)। प्रमेह तथा शुक्रदोषों में गोधूम आहार विहित है।

औषधीय—वातरक्त में गेहूँ के आँटे को बकरी के दूध में पीस कर लेप करने का विधान है (च. सू. ३।२३)। व्रणपीड़न के लिए भी इसका कल्क लगाया जाता है (च. चि. २५।६२)।

यह वल्य और बाजीकरण के रूप में बहुशः प्रयुक्त होता है (च. चि. २.१.३९)

३. यव

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी–Gramineae)।

नाम—लै०–हॉर्डियम वल्गेर (Hordeum vulgare Linn); हि०–जौ; ता०–वार्लियरिसि; ते०–बार्लिबियम; कन्न०–जवे गोधि; अं०–वार्ली (Barley)।

स्वरूप—यह एक दृढ़, वर्षायु, गेहूँ के सदृश, २–४ फीट ऊँचा पौधा है। पत्र–चौड़े, रेखाकार–भालाकार; पत्रकोष–चिकना, धारीदार; जिह्विका छोटी झिल्लीदार होती है। **पुष्पमञ्जरी**–अन्त्य, रेखाकार–लंबगोल, २–२½ इंच लंबी; सघन-पुष्पित, शूकयुक्त होती है। मञ्जरीक (Spikelets) अवृन्त, छः या नौ कतारों में व्यवस्थित होते हैं। (इसके अनुसार यव के दो भेद किये गये हैं)। **फल**–अण्डाकार, $\frac{3}{8}$ इंच लंबे, दोनों सिरों पर नुकीले, चिकने, भीतर की ओर परिखायुक्त होते हैं।

---

१. सन्धानकृद् वातहरो गोधूमः स्वादुशीतलः।
जीवनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धः स्थैर्यकरो गुरुः॥ (च. सू. २७। २)
नन्दीमुखी मधूली च मधुरस्निग्धशीतले।
गोधूमः स्थैर्यकृद् हृद्यः स्निग्धशीतः सरो गुरुः।
सन्धाता बृंहणो बल्यो जीवनो वातपित्तहा॥ (द्र. सं. १।२४)
गोधूमः मधुरः शीतो वातपित्तहरो गुरुः।
कफशुक्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत् सरः॥
जीवनो बृंहणो वीर्यो [illegible] स्थिरत्वकृत्। ([illegible])

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्तिस्थान—यह भारत का प्राचीनतम अन्न ऋग्वेद में निर्दिष्ट है। आज भी धार्मिक कृत्यों में यव का ही प्रयोग होता है, गेहूँ का नहीं यद्यपि आहार के क्षेत्र में गेहूँ ने इसे पराजित कर दिया है।

उत्तर भारत में विशेषतः उत्तरप्रदेश, राजस्थान, विहार, पंजाब और मध्यप्रदेश में इसकी खेती होती है। हिमालय-प्रदेश में १४ हजार फीट की ऊँचाई तक उगाया जाता है।

जौ की खेती रबी की फसल के रूप में गेहूँ के समान अक्टूबर-नवम्बर से मार्च-अप्रिल तक होती है।

जाति—भारत में २४ प्रकार के यव निर्धारित किये गये हैं जिनमें ५ दो कतार वाली और १९ छः कतार वाली हैं। भावप्रकाश में निःशूक जाति (अतियव) तथा हरित जाति (तोक्म) का उल्लेख है[1]।

रासायनिक संघटन—यव में आर्द्रता १२·५, प्रोटीन ११·५, कार्बोहाइड्रेट ६९·३, सूत्र ३·९, खनिज पदार्थ १·५, कैल्सियम ०·०३, फास्फरस ०·२३ प्रतिशत तथा लोह ३·७ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम होता है। दो कतारवाली जाति में स्टार्च अधिक तथा उष्ण-शुष्क वातावरण में होने वाली में प्रोटीन अधिक होता है। ताजे यव में विटामिन ए, बी, डी, ई आदि होते हैं[2]।

गुण-कर्म

यव रूक्ष, ईषत् गुरु, मधुर-कषाय, शीतवीर्य, कफशामक एवं वातवर्धक, पुरीष-जनन, बल्य तथा स्थैर्यकृत् होता है[3]।

प्रयोग

आहारीय—यव का छिलका हटा कर पर्ल बार्ली, अंकुरित यव से माल्ट तथा

---

१. यवस्तु सितशूकः स्यान्निःशूकोऽतियवः स्मृतः।
तोक्मस्तद्वत् स हरितस्ततः स्वल्पश्च कीर्तितः॥ (भा. प्र.)
'यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः।
व्रणेषु तिलवत् पथ्यो रूक्षो मेधाग्निवर्धनः॥
कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्यो बलकरो गुरुः।
बहुवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः॥
कण्ठत्वगामयश्लेष्मपित्तमेदःप्रणाशनः। पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृट्प्रणुत॥
(भा. प्र.)

२. W. I., V, 126.

३. रूक्षः शीतोऽगुरुः स्वादुर्बहुवातशकृद् यवः।
स्थैर्यकृत् सकषायस्तु बल्यः श्लेष्मविकारनुत्॥ (च. सू. २७।१९)
यवः स्वादुः कषायश्च कफपित्तकरो हिमः। व्रणेषु सर्वदा पथ्यः। (द्र. सं. १।२२)
'यवः पुरीषजननानाम्'। (च. सू. २५।३८)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यव के आँटे से विविध भक्ष्य पदार्थ बनते हैं। यव का सत्तू भी प्रचलित है। मेदोरोग तथा प्रमेह में यवप्रधान आहार लेने का विधान है[1]। भूने यव का सेवन करने से प्रमेहरोग नहीं होता[2]। गेहूँ में यव का आँटा मिला देने से वह कफनाशक एवं अपतर्पण हो जाता है[3]। सुरा बनाने के लिए भी यव का प्रयोग होता है।

औषधीय—उदरशूल में यव के आँटे में क्षार मिला कर मट्ठे से गीला कर गरम लेप करने का विधान है[4]। यव चरक के छर्दिनिग्रहण, श्रमहर तथा स्वेदोपग गणों में पठित है अतः इन विकारों में इसका प्रयोग उचित है। पुरीषजनन होने के कारण यव की रोटी विबन्ध में लाभकर है।

क्षुद्रधान्य (inferior cereals)

इन्हें तृणधान्य या कुधान्य भी कहते हैं। सामान्यतः कषाय-मधुर, लघु, रूक्ष, क्लेदशोषक, विबन्धकारक, वातवर्धक तथा रक्तपित्त एवं कफ के शामक होते हैं[5]।

४. कोद्रव

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी-Gramineae)

नाम—लैं०-पास्पेलम स्क्रोबिकुलेटम (Paspalum scrobiculatum Linn.); सं०-कोद्रव, कोरदूष; हि०-कोदो; म०-कोदरा; गु०-कोदरो; ते०-अरुगु; ता०-मल०-वरुगु; कन्न०-हरक; अं०-कोदो मिलेट (Kodo millet)।

परिचय—यह तृणजाति का धान्य ३ फीट तक ऊँचा होता है। भौमिक काण्ड बहुत छोटा होता है। पत्र-कठिन, उत्थित, ६-१८ इञ्च लम्बे, २-८ मि० मी० चौड़े, मूल भाग से ऊपर तक दो कतारों में निकले रहते हैं। पुष्पव्यूह-दो या अधिक अवृन्त, पर्यायित (alternate) मंजरियों का होता है जो पूरा बाहर नहीं निकल पाती। दाने छोटे, सफेद, कृष्णाभ भूसी से ढंके होते हैं। अधिकांश

---

१. यवप्रधानस्तु भवेत् प्रमेही। (च. चि. ६।२१; सू. २१।२५)

२. भृष्टान् यवान् भक्षयतः प्रयोगात् शुष्कांश्च सक्तून् न भवन्ति मेहाः। (च. चि. ६।४८)

३. व्यायामनित्यो जीर्णाशी यवगोधूमभोजनः।
सन्तर्पणकृतैर्दोषैः स्थौल्यं मुक्त्वा विमुच्यते॥ (च. सू. २१।२५)

४. तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्त्ति जठरे निहन्यात्। (च. सू. ३।२०)

५. क्षुद्रधान्यं कुधान्यं च तृणधान्यमिति स्मृतम्।
क्षुद्रधान्यमनुष्णं स्यात् कषायं लघु लेखनम्॥
मधुरं कटुकं पाके रूक्षं च क्लेदशोषकम्।
वातकृद् बद्धविट्कं च पित्तरक्तकफापहम्॥ (भा, प्र.)
तृणधान्यं पवनकृल्लेखनं कफपित्तहृत्'। (अ. हृ. सू. ६।१२)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पौधों के विकासकाल में उन पर गाढ़ा बैंगनी रंग आ जाता है जिससे पूरा खेत बैंगनी रंग का दिखलाई पड़ता है।

जून-जुलाई में इसके बीज बोये जाते हैं और अक्टूबर-नवम्बर में फसल तैयार हो जाती है।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारत विशेषतः दक्षिण भारत में इसकी खेती होती है।

जाति—एक वन्य जाति होती है जिसे 'उद्दाल' कहा गया है[1]। वानस्पतिक दृष्टि से इसे एक पृथक् प्रजाति (P. scrobiculatum Var. commersonii Stapf) मानते हैं। कोद्रव में प्रभाव की दृष्टि से कुछ विषाक्त[2] एवं कुछ विविध भेद होते हैं।

रासायनिक संघटन—छिलका हटाये हुए दानों में आर्द्रता ११·७, प्रोटीन ११·६, वसा १·२, कार्बोहाइड्रेट ७४, सूत्र ०·४, खनिज द्रव्य १ प्रतिशत तथा कैल्शियम ३५ मि० ग्रा०, फास्फरस १२१ मि० ग्रा०, लौह १·७ मि० ग्रा० होता है। कुछ विटामिन बी भी होते हैं[3]।

दानों में छिलका ४० प्रतिशत होता है।

गुण-कर्म

कोद्रव लघु, रूक्ष, कषाय-मधुर, शीतवीर्य, वातवर्धक, कफपित्तशामक, शोषण और ग्राही है[4]। वनकोद्रव उष्ण होता है[5]। शार्ङ्गधर ने कोद्रव को 'विकाशि' के उदाहरण में दिया है[6]।

प्रयोग

आहारीय—कोदो को भात की तरह बना कर खाया जाता है। इसको पीस कर आँटे की रोटी भी बनाते हैं।

परिपक्व दानों को गेरू में मिला कर धूप में सुखाते हैं और फिर भूसी हटा देते हैं। छः मास तक रखने के बाद ही इसका प्रयोग आहार के रूप में करते हैं। अपरिपक्व तथा नया धान्य विषाक्त प्रभाव करता है।

---

१. उद्दालो वनकोद्रवः। (भा. प्र.)
२. विषाक्त कोद्रव को 'मदनकोद्रव' संज्ञा दी गई है।
३. W. I., VII, 272
४. सकोरदूषः श्यामाकः कषायमधुरो लघुः।
वातलः कफपित्तघ्नः शीतः संग्राहिशोषणः॥ (च. सू. २७।१६)
कोरदूषः परं ग्राही स्पर्शशीतो विषापहः। (अ. हृ. सू. ६।१३)
५. कोद्रवो वातलो ग्राही हिमः पित्तकफापहः।
उद्दालस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥ (भा. प्र.)
६. सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत्।
विश्लिष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवौ ॥ (शा. पूर्व. ४।२०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रमेह, मेदोरोग, ऊरुस्तम्भ तथा रक्तपित्त में यह पथ्य रूप में निर्दिष्ट है[1]। जलोदर में दुग्धाहार के बाद कोद्रव या श्यामाक का आहार देने का विधान है[2]।

औषधीय—इसके चूर्ण को तैल के साथ मिला कर नाडीव्रण में प्रयोग करने का विधान है। दारुणक नामक क्षुद्र शिरोरोग में इसके तृण के क्षारजल से क्षालन विहित है। वृश्चिक तथा अन्य कीटज विषों में इसके तृण के धूपन का प्रयोग है[3]। तृष्णारोग में कोद्रव की पेया दी जाती है[4]। रूक्षण के लिए कोद्रव आदि अन्नों का प्रयोग किया जाता है[5]। रूक्षणीय अन्नों में उद्दालक सर्वोत्तम है[6]।

विषाक्त लक्षण—अपरिपक्व तथा नये कोदो के सेवन से विषाक्त प्रभाव होता है जिसमें प्रलाप, आक्षेप, वमन, निगलने में कष्ट तथा संज्ञानाश होते हैं।

यह विषाक्त तत्त्व कोदो की भूसी या वाह्य आवरण में मुख्यतः होता है जिसमें एक फंगस भी प्रायः मिलती है। पेट्रोलियम ईथर में यह तत्त्व कोदो के तैलांश के साथ निकल आता है। अवशिष्ट अंश निर्विष रहता है।

विषाक्त कोदो के तैलांश में सान्द्र गन्धकाम्ल डालने से लाल रंग आता है, निर्विष में नहीं। इससे कोदो की सविष एवं निर्विष जातियों में भेद किया जा सकता है।

कोद्रवविष-चिकित्सा—कूष्माण्ड के जल में गुड़ मिला कर पीने से कोद्रवजन्य मदप्रधान विषलक्षण शान्त हो जाते हैं[7]।

५. श्यामाक

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी-Gramineae)।

नाम—लै०-एकिनोक्लोआ फ्रुमेण्टिसिया (Echinochloa frumentacea Linn.); सं०-श्यामाक; हि०-साँवा; म०-शामुल; गु०-शामो; ता०-कुदरई-

---

१. च. सू. २१।२५; चि. ६।२१; सु. चि. ११।३, च, चि. ४।३६;

२. सु. चि. १७।३५; २०।३०, क. ८।७३,

३. त्रीन् मासान् पयसा पेयां पिबेत् त्रींश्चापि भोजयेत्।
श्यामाकं कोरदूषं वा पयसाऽलवणं लघु॥
नरः संवत्सरेणैवं जयेत् प्राप्तं जलोदरम्। (च. चि. १३।१९०-९१)

४. पेयां वा शालीनां दद्याद् वा कोरदूषाणाम्। (च. चि. २२।२८)

५. अतिस्निग्धस्य रूक्षणम्। श्यामाककोरदूषान्नतक्रपिण्याकसक्तुभिः।
(सु. चि. ३१।५६)

६. उद्दालकान्नं विरूक्षणीयानाम्। (च. सू. २५।१८)

७. कूस्माण्डकरसः सगुडः शमयति मदमाशु मदनकोद्रवजम्। (चक्र., मदात्यय, २०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वल्लि पिल्लु; ते०—बोंटा शामा; कन्न०—शमइ; पं०—संवांक; अं०—वार्नयार्ड मिलेट (Barnyard millet)।

स्वरूप—यह दृढ़ बर्षायु, २–४ फीट ऊँचा पौधा है। पत्ते चौड़े तथा मंजरीक बड़े होते हैं। दाने छोटे, चिकने, चमकीले, शीर्ष पर तीक्ष्ण तथा मूल में गोल होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में प्रायः सर्वत्र और हिमालय प्रदेश में ६५०० फीट की ऊँचाई तक उगाया जाता है। विशेषतः पंजाब, गुजरात और दक्षिण भारत में इसकी खेती होती है।

इसकी फसल बहुत शीघ्र तैयार होती है। जून–जुलाई में वीज वोते हैं और सितम्बर–अक्टूबर में फसल काट लेते हैं।

जाति—श्यामाक के नाम से E. colonum Link तथा E. crus-galli Beauv. प्रजातियाँ भी चलती हैं। दूसरा पौधा बड़ी जाति का होने के कारण इसे 'बृहत् श्यामाक' भी कहते हैं। वस्तुतः E. frumentacea इन दोनों के बीच का है। प्राचीनोक्त अम्भःश्यामाक, हस्तिश्यामाक भेद इन्हींमें से हो सकते हैं।

रासायनिक संघटन—इसमें आर्द्रता ११·६, प्रोटीन ६·२, कार्बोहाइड्रेट ६५·५, खनिज पदार्थ ४·४, सूत्र ६·८, कैल्शियम ०·०२ तथा फास्फरस ०·२८ प्रतिशत तथा लौह २·२६ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। स्वल्प परिमाण में विटामिन ए और वी होते हैं। इसमें मुख्य प्रोटीन प्रोलेमिन है जिसमें लाइसिन, सिस्टिन तथा हिस्टिडिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं[1]।

गुण-कर्म

श्यामाक के गुणकर्म कोद्रव के समान होते हैं (देखें कोद्रव)। यह रूक्ष, शोषण, वातवर्धक तथा कफपित्तहर है[2]।

प्रयोग

आहारीय—इसे पका कर भात की तरह या भून कर दाना खाते हैं।

औषधीय—ऊरुस्तम्भ में रूक्षण के लिए दिया जाता है। जलोदर, स्नेहव्यापद् तथा मेदोरोग में भी देते हैं[3]।

६. नीवार

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी–Gramineae)।

---

१. W. I., III, 124-26.

२. श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः श्लेष्मपित्तहा।
तद्वच्च कङ्गुनीवारकोरदूषाः प्रकीर्तिताः॥ (द्र. सं. १।२४)

३. अ. हृ. चि. २१।४५, १५।११८, सू. १६।३४, १४।२१।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—लै०–हाइग्रोराइजा अरिस्टेटा (Hygroryza aristata Nees); सं०–नीवार, तृणान्न; हि०–तेनी; बं०–उड़ी; म०–देवभात; गु०–घन्टी; ता०–वल्लि-पुल्लु; मल०–निरवल्लिपुल्लु; कन्न०–ज्यारहुमेधे; आ०–फुटकी; अं०–वाइल्ड राइस (Wild rice)।

स्वरूप—यह एक जलीय चिकना तृणधान्य १–१·५ फीट ऊँचा होता है। दाने लंबगोल चावल की तरह होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह आनूप प्रदेशों (बंगाल, आसाम आदि) में विशेष होता है।

गुण-कर्म

यह रूक्ष, शीत, शोषण, वातवर्धक और कफपित्तशामक है। इसके गुणकर्म श्यामाक के समान हैं[1]।

प्रयोग

आहारीय—फलाहार में इसका चावल सिद्ध कर खाते हैं।

औषधीय—ग्रहणी, रक्तपित्त आदि में इसका पथ्य देते हैं। इसके अतिरिक्त, कास–श्वास, ऊरुस्तम्भ तथा स्वरभेद में प्रयोग करते हैं[2]।

७. गवेधुका

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी–(Gramineae)।

नाम—लं०–क्वायक्स लैक्रिमा–जोबी (Coix lacryma–jobi Linn.); सं०–गवेधुका, गवेधु; हि०–गरहेडुआ, सन्कु; बं०–गुड़गड़; म० गु०–कसइ; ता०–नेटपवलम्; अं०–ऐडले (Adlay); जोब्स टियर्स (Job's tears)।

स्वरूप—इसका वर्षायु पौधा–३–६ फीट ऊँचा होता है। **पत्र**–४–१८ इञ्च लंबे, १–२ इञ्च चौड़े, रेखाकार–भालाकार, तीक्ष्णाधार होते हैं। **पुष्पदण्ड**–१–२½ इञ्च लंबे, चपटे या त्रिकोण, प्रायः अनेक, पत्र के अक्षभाग से निकलते हैं। **फल**–नासपाती के आकार के या अण्डाकार, सफेद या भूरे रंग के, चमकीले होते हैं। अश्रुबिन्दु की आकृति का होने के कारण इन्हें जॉब्स टियर्स नाम दिया गया है।

उत्पत्तिस्थान—यह दक्षिणपूर्वी एशिया का मूल निवासी है। फिलिपाइन, वियतनाम, बर्मा और कुछ श्रीलंका में इसकी खेती विशेष रूप से की जाती है। भारत में यह समतल मैदानों में नदी–नालों के किनारे तथा पहाड़ियों पर ५०० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

---

१. देखें श्यामाक।

२. उडिका कोद्रवश्चैव हस्तिश्यामाकचीनकौ।
पीनासश्वासकासोरुस्तम्भकण्ठगदान् जयेत् ॥ (रा. व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्षा में इसकी खेती होती है और ४–५ मास में फसल तैयार हो जाती है।

जाति—वानस्पतिक दृष्टि से इसके अनेक प्रकार होते हैं।

रासायनिक संघटन—फल का बाह्याकरण ३०–७०% होता है। बीजों में आर्द्रता १०.१–११.३, प्रोटीन १०.३–१२.१, कार्बोहाइड्रेट ७२.७–७४.३, सूत्र-०.२९–०.३२, खनिज द्रव्य ०.७०–०.९९; कैलिशयम ०.००५–०.००६, फास्फोरस ०.३–०.५ प्रतिशत होता है[1]।

गुण-कर्म

गवेधुका के गुणकर्म श्यामाक के समान हैं। विशेषतः यह कृशता उत्पन्न करने वाला तथा कफनाशक है[2]।

प्रयोग

आहारीय—इसमें प्रोटीन तथा वसा अधिक होने के कारण यह चावल के प्रतिनिधि रूप में व्यवहृत किया जा सकता है। गेहूँ के आँटे में मिला कर इसकी रोटी भी बन सकती है। भून कर भी इसे खाते हैं। जापान में इससे शराब बनाई जाती है।

औषधीय—स्थौल्यनाशन के लिए भूने हुए दानों की यवागू मधु मिला कर दी जाती है[3]। कर्शनीय अन्नों में यह सर्वोत्तम है[4]। गवेधुकामूल का स्वरस (या क्वाथ) छर्दि और तृष्णा में प्रशस्त है[5]। शुक्ररोगज मूत्रकृच्छ्र में भी उपयोगी है[6]।

८. कङ्गु

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी–Gramineae)

नाम—लै०–सिटेरिया इटेलिका (Setaria italica (Linn.) Beauv); सं०–कङ्गु, प्रियङ्गु; हि०–कंगुनी; ता०–तेनइ; ते०–कोर्रा; मल०–तेना; कन्न०–प्रियंगु तेने; अं०–इटालियन मिलेट (Italian millet); फॉक्स टेल मिलेट (Fox-tail millet)।

स्वरूप—यह दृढ गुच्छवद्ध पौधा ०.६–१.५ मीटर ऊँचा होता है। काण्ड स्पष्टपर्वयुक्त तथा शीर्ष पर कुछ शाखान्वित होते हैं। पत्र-चपटे, रेखाकार या

१. W. I., II, 305–6.
२. गवेधुः कटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत् कफनाशिनी। (भा. प्र.)
३. गवेधुकानां भृष्टानां कर्शनीया समाक्षिका। (च. सू. २।२५)
४. गवेधुकान्नं कर्शनीयानाम्। (च. सू. २५।३८)
५. गवेधुकामूलजलं गुडूच्या जलं पिबेदिक्षुरसं पयो वा। (च. चि. २०।३?)
६. च. चि. २६।७०।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भालाकार, तीक्ष्णाग्र, १५–४५ से० मी० लम्बे, ०·७५–३·३ से० मी० चौड़े, चिकने होते हैं। मञ्जरियाँ उत्थित या झुकी हुई होती है। दाने—अंडाकार या गोल-अंडाकार, १·८–२·५ मि० मी० लम्बे, चिकने, चमकीले, अनेक रंगों के होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह पूर्वी एशिया, संभवतः चीन का मूलनिवासी है। भारत में महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, तामिलनाडु, कर्नाटक में इसकी खेती होती है। यह सूखी भूमि में होने वाला है तथा सालों भर उगाया जा सकता है। ३–४ मास में फसल तैयार हो जाती है।

रासायनिक संघटन—छिलका हटाये दानों में आर्द्रता ११·२, प्रोटीन १२·३, वसा ४·३, खनिज ३·३, सूत्र ८, कार्बोहाइड्रेट ६०·९ प्र० श० होते हैं। खनिजों में कैल्शियम ३१, मैगनीशियम १२०, फास्फरस २९०, लौह १२·९ प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामिन ए और बी भी होते हैं। कार्बोहाइड्रेट में स्टार्च तथा प्रोटीन में प्रोलेमिन मुख्यतः होता है। बीजों से पारदर्शक गाढ़े पीले रंग का तैल २–६% निकलता है। भूसी से भी कुछ तैल निकलता है[1]।

जाति—इसकी अनेक वानस्पतिक प्रजातियों में S. glauca Beauv. मुख्य है। भावप्रकाश में वर्णभेद से कृष्ण, रक्त, श्वेत और पीत चार प्रकार कहे गये हैं जिनमें पीत सर्वोत्तम है। चीनाक को भी कङ्गुभेद माना है। चरकसंहिता का 'अणु', जिसका उल्लेख प्रियंगु के साथ हुआ है (सू. २७।१७), S. glauca Beauv. या Panicum sumatrense Roth ex Roem et Schult (Little millet) प्रतीत होता है।

गुण-कर्म

कङ्गु गुरु, रूक्ष, वातवर्धक, कफनाशक, बृंहण एवं भग्नसंधान कर है। पशुओं के लिए अतीव गुणकारी है[2]।

प्रयोग

आहारीय—इसे दूध में उबाल कर[3], भून कर या इसके आँटे की रोटी बना कर खाते हैं। इसका माल्ट तथा मद्य बनाने में भी प्रयोग होता है।

औषधीय—व्रणरोपण चूर्ण और तैल में इसका प्रयोग है[4]। इसका तैल पाण्डूकरण के लिए विहित है[5]।

---

१. W. I., IX, 309.

२. कङ्गुस्तु भग्नसन्धानवातकृद् बृंहणी गुरुः।
रूक्षा श्लेष्महराऽतीव वाजिनां गुणकृद् भृशम्॥ (भा. प्र.)

३. चरक ने इसे विरुद्ध आहार कहा है। (सू. २६।८१)

४. सु. सू. ३७।२५, २६, १७

५. सु. चि. ३१।५

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

९. चीनाक

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी-Gramineae)

नाम—लै०-पैनिकम मिलिएसियम (Panicum miliaceum Linn.) सं०-चीनाक, वरक[1] हि०-चीना, माढ़ा; म०-वारो; गु०-वारी; ते०-वरगलु; ता०-पानिवरगु; कन्न०-वरगु; अं०-कॉमन मिलेट (Common millet)।

स्वरूप—यह उथले जड़ वाला वर्षायु क्षुप १–२½ फुट ऊँचा होता है। पत्र-६–१२ इञ्च लम्बे, ६–२० मि० मी० चौड़े होते हैं। मञ्जरियाँ कोमल, १½ फुट तक लम्बी होती है। मंजरीक ४–५ मि० मी० लम्बे, चिकने, हरे या भूरे-हरे होते हैं। दाने सफेद, लट्वाकार, प्रायः रंगीन होते हैं। पकने पर ये आसानी से झड़ जाते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारत में इसकी खेती आन्ध्र, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तामिलनाडु में विशेष और कुछ बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पंजाब में होती है। हिमालय में २७४० मीटर ऊंचाई तक इसकी खेती होती है। भारत के अतिरिक्त, मंगोलिया, जापान, रूस, अरबदेश, यूरोप और अमेरिका में भी इसकी खेती होती है।

चीनाक का मूल स्थान लोग मध्य या पूर्वी एशिया मानते हैं।

दक्षिण भारत में अक्टूबर-नवम्बर में बीज बोये जाते हैं और २–३ मास में फसल तैयार हो जाती है।

जाति—पौधे के रंग, रोमशता तथा दानों के वर्ण के अनुसार इसकी अनेक भेद होते हैं।

रासायनिक संघटन—बीजों में आर्द्रता ११·६, प्रोटीन १२·५, वसा १·१, कार्बोहाइड्रेट, ६८·६, सूत्र २·२, खनिज द्रव्य ३·४ प्रतिशत तथा कैलशियम १०, फास्फरस २३०, लौह ५·७ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होता है। विटामिन ए, बी और सी भी होते हैं।

बीजों से एक पीले रंग का तेल (७% तक) भी निकलता है। नये पौधे में एक क्षाराभ हॉर्डेनिन (Hordenine) होता है[2]।

गुण-कर्म

भावप्रकाश में चीनाक को कङ्गु का भेद माना है तथा इसके गुणकर्म कङ्गु के ही समान कहे गये हैं[3]।

---

१. चरकोक्त चीन षष्टिक या व्रीहि का भेद प्रतीत है। दक्षिणभारतीय नामों के आधार पर चरकोक्त 'वरक' चीनाक प्रतीत होता है।

२. W. I., VI, 227.

३. चीनाकः कङ्गुभेदोऽस्ति स ज्ञेयो कङ्गुवद् गुणैः।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग

इसके दाने भात के समान जल में सिद्ध कर तथा इसके आटे की चपाती बना कर खाते हैं। दानों को भून कर माढ़ा बनता है जो चूड़े की तरह गुड़ के साथ या दही में खाया जाता है, सत्तू भी बना कर खाते हैं।

१०. जूर्ण

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी–Gramineae)।

नाम—लै०–सोर्गम वल्गेर (Sorghum vulgare Pers) सं०–जूर्ण, चूर्णाह्व, यावनाल; हि०–जिनोर, जोंधरी, ज्वार; उ० ते०–जोन्ना; ता० मल०–चोलम् ; कन्न०–जोला; अं०–ग्रेट मिलेट (Great millet)।

परिचय—यह एक दृढ़ वर्षायु १०–१५ फीट लम्बा पौधा है। पत्ते रेखाकार चौड़े होते हैं जिसकी मध्यसिरा स्पष्ट एवं श्वेतवर्ण होती है। मञ्जरियाँ सघन, शाखाओं–उपशाखाओं से युक्त होती हैं। दाने–अभिलट्वाकार, अंडाकार या गोलाकार, विविध वर्ण के (श्वेत, भूरे, पीले या लाल) होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारत में इसकी खेती विशेषतः महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और तामिलनाडु में होता है। इसके अतिरिक्त, चीन, अमेरिका, नाइजेरिया, अर्जेण्टिना और सूडान में प्रचुर खेती होती है।

यह प्रायः जून-जुलाई में बोया जाता है और २–३ मास में तैयार हो जाता है।

रासायनिक संघटन—दानों में आर्द्रता १०·४–१३, प्रोटीन ९·७३–१०·२९, वसा २·८०–३·१८ तथा कार्बोहाइड्रेट ७२·६, प्रतिशत, कैल्शियम ५१·४–१२७·३, फास्फरस १४९·६–२०४·० तथा लोह १·१–२·७ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामिन ए और बी कम्प्लेक्स भी होते हैं। कुछ प्रजातियों में बालियों से एक शर्करा भी निकलती है (जूर्णशर्करा) जिसे कर्नाटक में 'तेल्ल जोआ' कहते हैं। इससे एक तैल (Sorghum oil) भी २·५% निकलता है। अंकुरित बीजों में धुरिन (Dhurrin) नामक ग्लुकोसाइड होता है। हरे पौधे में हार्डिनिन (Hordenine) नामक क्षाराभ भी मिलता है[1]।

जाति—इसकी अनेक प्रजातियाँ होती हैं। इनमें कुछ पशुओं के चारे के लिए और कुछ अन्न के लिए उगाये जाते हैं। यह संभव है कि जूर्ण प्राचीन प्रजाति तथा यावनाल इसकी कालान्तर में विकसित प्रजाति हो।

---

१. W. I., IX, 462-66.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण-कर्म

यावनाल लघु-रूक्ष, कषाय-मधुर, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, शुक्रनाशन, क्लेदहर होता है[1]।

प्रयोग

आहारीय—इसे चावल की तरह उबाल कर, आटे की चपाती बना कर या भून कर खाते हैं।

औषधीय—स्थौल्यरोग में कर्शन के लिए प्रयुक्त होता है[2]।

११. मधूलिका

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी-Gramineae)।

नाम—लै०-इल्युसिन कोराकाना (Eleusine coracana Gaertn); सं०-मधूली, रागिका, नर्त्तक; हि०-मडुआ, मंडल; म०-नाचनी; गु०-पागली; ता० कन्न०-रागी; ते०-एगुलु; मल०-मुत्तरि; अं०-फिंगर मिलेट (Finger millet)।

स्वरूप—यह वर्षायु पौधा २-४ फीट ऊँचा होता है। काण्ड-पार्श्व में चपटे, गुच्छबद्ध होते हैं जिनमें प्रौढ़ होने पर प्रायः ४-६, पाणिवत् सीधी या कुछ भीतर की ओर मुड़ी, ५-६ इञ्च लम्बी, ½ इञ्च चौड़ी बालियाँ निकलती हैं। दाने-गोलाकार या कुछ चपटे, चिकने या सिकुड़नयुक्त, रक्ताभ भूरे से श्वेतवर्ण तक होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—विशेषतः दक्षिण भारत में इसकी खेती होती है। भारत के अतिरिक्त, पूर्वी अफ्रीका, इथियोपिया और सोमालीलैंड में अनेक जनजातियों का प्रमुख खाद्य है।

मई-जुलाई में यह बोया जाता है और अगस्त-नवम्बर में फसल तैयार हो जाती है। ५० वर्षों तक इसका संग्रह कर रक्खा जा सकता है।

रासायनिक संघटन—पोषण की दृष्टि से इसका स्थान लगभग गेहूँ के बराबर है[3]। इसमें आर्द्रता १३·१, प्रोटीन ७·१, वसा १·३, कार्बोहाइड्रेट ७६·३,

---

१. यावनालो हिमः स्वादुर्लोहितः श्लेष्मपित्तजित्।
अवृष्यस्तुवरो रूक्षः क्लेदहृत् कथितो लघुः ॥ (भा. प्र.)

२. तथा मेदोऽनिलश्लेष्मनाशनं सर्वमिष्यते।
कुलत्थजूर्णश्यामाकयवमुद्गमधूकम् ॥ (अ. हृ. १४।२१)

३. भावप्रकाश में यह गेहूँ का ही भेद माना गया है। चरकसंहिता में भी गेहूँ के बाद ही इसका वर्णन है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खनिज पदार्थ २·२, कैल्शियम ०·३३, फास्फरस ०·२७ प्रतिशत तथा लोह ५·४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होता है। विटामिन ए और बी होते हैं। इसमें आयोड़िन सभी धान्यों से अधिक होता है। गन्धक और यशद भी है[१]।

जाति—आकृति, वर्ण आदि के अनुसार इसके अनेक भेद होते हैं। इसकी एक प्रजाति E. indica Gaertn. (उ० नन्दिया) इससे मिलती जुलती है और मधूलिका का भेद नन्दीमुखी प्रतीत होता है। E. flagellifra Nees (हि० छिम्बर) शिम्बिर हो सकता है।

गुण-कर्म

मडुआ लघु, कषाय-तिक्त-मधुर, शीत, तृप्तिकारक, त्रिदोषशामक विशेषतः पित्तशामक है[२]।

प्रयोग

आहारीय—इसके आटे की रोटी बनाते हैं, सत्तू भी बनाते हैं। अंकुरित धान्य का माल्ट भी बनाते हैं। कहीं-कहीं मद्य बनाने में भी इनका उपयोग होता है।

औषधीय—जलोदर रोग में मडुए की रोटी खिलाने से लाभ होता है[३]। बिहार में प्रसूति स्त्री को मडुआ की रोटी खिलाते हैं।

वक्तव्य—मधूली और नन्दीमुखी को भावमिश्र ने गोधूम का भेद लिखा है। चरकसंहिता में गोधूम के बाद ये पठित हैं—और गुण में प्रायः समान (मधुर स्निग्धशीत) ही कहे गये हैं। सुश्रुत ने भी ये ही गुण कहे हैं। मडुआ व्यवहार में अत्यन्त रूक्ष होता है अतः मधुरस्निग्धशीतल मधूली या नन्दीमुखी से इसका सामंजस्य करना कठिन प्रतीत होता है। 'नृत्यकुण्डक' 'मर्कट' (मकड़ा) आदि नाम नन्दीमुखी के हैं। इसके बीज अश्मरीनाशन हैं[४]। आधुनिक काल में निघण्टु-रत्नाकर ने 'नर्त्तक' नाम से मडुआ का वर्णन किया है।

१२. वज्रान्न

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी–gramineae)।

---

१. W. I., III, 165.

२. नर्त्तकस्तुवरस्तिक्तो मधुरस्तर्पणो लघुः। बल्यःशीतः पित्तहरस्त्रिदोषशमनीमतः॥
रक्तदोषहरश्चैव मुनिभिः पूर्वमीरितः। (नि. र.)

३. भागलपुर (बिहार) आयुर्वेदिक कालेज के प्राचार्य स्व. पं. शशीन्द्र पाठक से व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर।

४. नृत्यकुण्डलबीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्।
अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरिपातनम्॥ (अ. हृ. चि. ११।३०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—लै०-पेनिसेटम टाइफायडिस (Pennisetum typhoides Burm. f. Stapf. & Habbard); सं०-वज्रान्न, साजक;[1] हि०-बाजड़ा; म० गु०-बाजरी; ते०-सज्जा; कन्न०-सज्जे; ता०-कम्बु; अं०-पर्ल मिलेट (Pearl millet)।

स्वरूप--यह वर्षायु पौधा १० फीट तक ऊँचा होता है। पत्र-भालाकार १-३ फीट लम्बे, ½-२½ इञ्च चौड़े होते हैं। बाली-सघन, बेलनाकार, हरिताभ पीत या गुलाबी आभा लिये, २½ इञ्च से १४ इञ्च तक लम्बी, ½ इञ्च से १¾ इञ्च व्यास की होती है। दाने इसके पीले, सफेद या हलके नीले रंग के, मोती के समान गोलाकार होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूलस्थान अफ्रीका माना जाता है। यह शुष्क उष्ण प्रदेशों में होता है। भारत में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, मद्रास, कर्नाटक और मध्यप्रदेश में इसकी खेती होती है। भारत के अतिरिक्त, अफ्रीका और अरब में इसकी खेती प्रचुर होती है।

प्रायः बरसात के पूर्व या प्रारम्भ में इसे बोया जाता है।

जाति—इसके अनेक भेद होते हैं।

रासायनिक संघटन—इसके दानों में आर्द्रता १२.४, प्रोटीन ११.६, वसा ५, कार्बोहाइड्रेट ६७.१, सूत्र १.२, खनिज पदार्थ २.७ प्रतिशत तथा कैलशियम ५० मि० ग्रा०, फास्फरस ३५० मि० ग्रा०, लौह ८·८६ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। विटामिन ए और बी भी होते हैं[2]।

गुण-कर्म

वज्रान्न रूक्ष, मधुर, उष्ण, कफवातनाशक, बल्य, पुंस्त्वहर तथा दुर्जर है[3]।

प्रयोग

गरम होने से जाड़े में इसका प्रयोग विशेष करते हैं। इसे उबाल कर, भून कर या आँटे की रोटी बना कर खाते हैं। अंकुरित धान्य का माल्ट बनता है तथा इससे एक मद्य भी बनाया जाता है।

बाजड़ा में कभी-कभी अर्गट का संक्रमण हो जाने के कारण वह विषाक्त हो जाता है अतः सावधानी से प्रयोग करना चाहिए।

---

१. निघण्टुरत्नाकर, शालिग्राम निघण्टु।

२. W.I., VII, 305-6.

३. वज्रान्नं मधुरं रूक्षमुष्णं बल्यं च दुर्जरम्।
वातपित्तकरं पुंस्त्वहरमग्निप्रदीपनम्

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१३. महाकाय

परिचय

कुल—यव-कुल (ग्रामिनी–Gramineae)

नाम—लै०–जिया मेस (Zea mays Linn); सं०–महाकाय; हि०–मक्का, मकई, भुट्टा; ते०–मक्का जोन्नालु; ता०–मक्का-चोलम्; कन्न०–मेक्केजोल; मल०–चोलम्; अं०–मेज (Maize)।

स्वरूप—इसका पौधा वर्षायु प्रायः ८–१० फीट ऊँचा होता है। इसके काण्ड के निचले पर्वों से अनियमित सौत्रिक मूल निकले रहते हैं। **पत्तियाँ**–आवरक कोष तथा छोटी, रोमश जिह्विका से युक्त, भालाकार, १–४ फीट लम्बी, १–५ इञ्च चौड़ी होती हैं। पुंमञ्जरी अन्त्य तथा स्त्रीमंजरी पत्तियों के अक्ष में होती हैं। दाने ८–१६ पंक्तियों में एक काष्ठीय अक्ष पर व्यवस्थित होते हैं। दाने प्रायः गोलाकार, बड़े, अधस्तल पर चपटे, चमकीले, पीताभ और पकने पर कड़े होते हैं।

प्रायः गर्मियों में इसे बोते हैं और बरसात में यह पक कर तैयार हो जाता है।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल स्थान मध्य अमेरिका (दक्षिणी मैक्सिको) है। यह उष्ण वातावरण में होता है। पैदावार की दृष्टि से अमेरिका, ब्राजील, चीन और मैक्सिको के बाद भारत का स्थान है। भारत में विशेषतः उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, जम्बू-कश्मीर, गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में इसकी खेती होती है।

रासायनिक संघटन—दानों में आर्द्रता १४·९, प्रोटीन ११·१, वसा ३·६, सूत्र २·७, कार्बोहाइड्रेट ६६·२, खनिज पदार्थ १·५ प्रतिशत होते हैं। खनिजों में कैल्शियम १०, फास्फरस ३४८, लौह २ मि.ग्रा. प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामीन बी और ई पाया जाता है। दानों से १·२–५·७% तैल (Maize or Corn oil) निकलता है[1]।

जाति—इसकी अनेक संकर जातियों का विकास हुआ है।

गुण-कर्म

यह रूक्ष मधुर, वातवर्धक, कफपित्तशामक तथा विष्टम्भी है[2]।

प्रयोग

मक्का के दानों को उबाल कर दलिया के रूप में, आटे की रोटी बनाकर या भून कर खाते हैं। सत्तू बना कर भी खाते हैं। इससे शर्करा तथा सुरा भी बनाई जाती है।

---

1. W. I., XI, 63–70

२. महाकायस्तृप्तिकरो वातलः कफपित्तहृत्।
विष्टम्भजनको रूक्षः कोमलो रुचिपुष्टिकृत्॥ (शा० नि०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इन प्रमुख धान्यों के अतिरिक्त निम्नांकित का भी वर्णन मिलता है जो परिस्थितिवश अन्न के रूप में प्रयुक्त होते हैं :—

१४. वेणुयव—बांस के यवाकार बीजों का प्रयोग अन्न रूप में होता है। ये रूक्ष, कषाय, कटुविपाक, कफनाशक, वातपित्तवर्धक, मूत्रावरोधक होते हैं[1]।

१५. चारुक—शर के बीज चारुक कहलाते हैं। ये रूक्ष, लघु, कषाय-मधुर, शीतवीर्य, वातकोपन, रक्तपित्तहर, कफघ्न और वृष्य होते हैं[2]।

१६. कुसुम्भ—(Carthamus tinctorius Linn.)

इसके बीज वरटा या वरट्टिका (बर्रे) कहलाते हैं। ये गुरु, स्निग्ध, कषाय-मधुर, शीत, त्रिदोषहर तथा अवृष्य हैं[3]।

शिम्बीधान्य

ये शमीधान्य, वैदल या द्विदल कहलाते हैं क्योंकि इनके बीज द्विदलीय होते हैं तथा दालों के रूप में उनका प्रयोग होता है।

सामान्यतः शिम्बीधान्य रूक्ष, कषाय-मधुर, शीत, कटुविपाक, वातवर्धक, कफपित्तहर तथा मूत्रावरोधक और मलविबन्धकारक होते हैं। मुद्ग और मसूर को छोड़ कर सभी आध्मान उत्पन्न करते हैं[4]।

शिम्बीधान्यों में मुद्ग हिततम और माष अहिततम कहा गया है।

१७. मुद्ग

कुल—शिम्बीकुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae).

उपकुल—अपराजिता–उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae)

नाम—लै०–विगना रेडिएटा (Vigna radiata (Linn) Wilczek. सं०–मुद्ग; हि०–मूंग, पेसार; गु०–माग; ते०–पच्चपेसालु; ता०–पासिपचारु; कन्न०–हेसारु; मल०–चेरुपचारु; अं०–ग्रीन ग्राम (Green gram).

१, यवा वंशयवा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः।
बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्तकराः मताः॥ (भा० प्र०)

२. चारुको मधुरो रूक्षो रक्तपित्तकफापहः।
शीतलो लघुवृष्यश्च कषायो वातकोपनः॥ (भा० प्र०)

३. वरटा मधुरा स्निग्धा रक्तपित्तकफापहा।
कषाया शीतला गुर्वी स्यादवृष्याऽनिलापहा॥ (भा० प्र०)

४. वैदला मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः।
वातलाः कफपित्तघ्नाः बद्धमूत्रमला हिमाः॥
ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारिणः। (भा० प्र०)
कषायमधुराः शीताः कटुपाका मरुत्कराः। बद्धमूत्रपुरीषाश्च पित्तश्लेष्महरास्तथा॥
(सु. सू. ४६।४८)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप—यह उत्थित या ऊर्ध्व-उत्थित वर्षायु पौधा १½–४ फीट ऊँचा होता है। ऊपरी शाखायें ईषत्वल्लित होती हैं। **पत्र**–त्रिपत्रक; **पत्रक**–लट्वाकार, कभी-कभी त्रिखण्ड होते हैं। **पुष्प**–पीले या पीतहरित, लम्बे वृन्त पर १०–२५ के गुच्छों में होते हैं। **शिम्बी**–२–४ इञ्च लम्बी, पतली, वेलनाकार प्रायः चिकनी या किंचित् रोमश होती है। **बीज**–प्रायः गोलाकार और हरितवर्ण, कभी-कभी पीले या भूरे[1], पृष्ठ पर सूक्ष्म रेखांकित, भ्रूणद्वार चपटा, एक सफेद उभड़े आवरण से आवृत होता है।

यह प्रायः खरीफ फसल के रूप में उगायी जाती है किन्तु कहीं-कहीं जाड़ों में भी लगाई जाती है।

उत्पत्तिस्थान—भारत में इसकी खेती विशेषतः आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा और तमिलनाडु में होती है।

जाति—इसकी अनेक वानस्पतिक जातियाँ होती हैं। भावप्रकाश में एक वन्य जाति का उल्लेख है।

रासायनिक संघटन—मूंग की दाल में आर्द्रता १०.१, प्रोटीन २४.५, वसा १.२, सूत्र ०.८, कार्बोहाइड्रेट ५९.९, खनिज द्रव्य ३.५ प्रतिशत होते हैं। खनिजों में कैलशियम ७५, फास्फरस ४०५, लोह ७.३, पोटाशियम ११५० मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। इसमें विटामिन ए, बी, सी और के होते हैं। अनेक किण्वतत्व भी होते हैं[2]।

गुण-कर्म

मुद्ग लघु, रूक्ष, विशद, कषाय-मधुर, कटुविपाक, शीत, कफपित्तहर, चक्षुष्य है। यह सभी दालों में श्रेष्ठ है। इसमें भी हरी मूंग सर्वोत्तम है[3]।

भावमिश्र ने इसे ग्राही और ज्वरघ्न भी कहा है[4]।

प्रयोग

आहारीय—इसका मुख्य प्रयोग दाल के रूप में है। इसके अतिरिक्त, इसे

---

१. मुद्गो बहुविधः श्यामो हरितः पीतकस्तथा।
श्वेतो रक्तश्च तेषां तु पूर्वः पूर्वो लघुः स्मृतः॥ (भा० प्र०)
सुश्रुतेन पुनः प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः—

2. W. I., X, 410–94

३. कषायमधुरो रूक्षः शीतः पाके कटुर्लघुः।
विशदः श्लेष्मपित्तघ्नो मुद्गः सूप्योत्तमो मतः॥ (च. सू. २७।२३)
मुद्गाः दृष्टिप्रसादनाः। प्रधानाः हरितास्तत्र वन्या मुद्गसमाः स्मृताः॥
(सु. सू. ४६।२७)

४. मुद्गो रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः।
स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भून कर, आँटे की रोटी, दालमोट की तरह नमकीन बना कर खाते हैं। इसकी हरी छेमी तथा अंकुरित धान्य की सब्जी बनाते हैं। मूंग के अनेक कृतान्न पापड़, लड्डू आदि बनते हैं।

औषधीय—ज्वर तथा उदर रोगों में मुद्गयूष पथ्य रूप में देते हैं। इसके अतिरिक्त सामान्य दौर्बल्य, श्रम, बेरी-बेरी, वातविकार आदि में देते हे। मुद्गपायस (खीर) का उपनाह दाह, शूल को नष्ट करता है जो व्रण, वातरक्त आदि में विहित है[१]। वीसर्प में मूंग, पटोलपत्र और आमलक का क्वाथ घी मिला कर पिलाना चाहिये[२]। मूंग और पिप्पली का हिम तृष्णार्छर्दिनाशक है[३]। कंटकारी के रस में सिद्ध मुद्गयूष समस्त कास में लाभकर है[४]। अपस्मार में प्रयुक्त एक वर्त्ति में शारद (शरद् में होने वाले) मुद्ग का विधान है[५]। प्रमेह और कुष्ठ में मुद्गामलक का प्रयोग विहित है[६]। मुद्ग का हिम (लाजा, उशीर आदि के साथ) रक्तपित्त में लाभकर है[७]।

१८. माष

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae)।

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae).

नाम—लै०–विगना मुंगो (Vigna mungo (Linn) Hepper. syn. Phaseolus mungo Linn); सं०–माष; हि०–उड़द; बं०–माषकलाई; गु०–उड़द; ता०–उलुन्दु; ते०–मिनुमु; अं०–ब्लैक ग्राम (Black gram)।

स्वरूप—(देखें द्वितीय भाग, पृ० ३९४)।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः भारत में सर्वत्र इसकी खेती होती है।

जाति—दानों के वर्ण के अनुसार दो प्रकार होते हैं—(१) Var. mungo इसके दाने बड़े और काले होते हैं। (२) Var. viridis इसके दाने छोटे, हरिताभ होते हैं। अधिकांश काली जाति की ही खेती होती है।

रासायनिक संघटन—उड़द के बीजों में आर्द्रता १०·९, प्रोटीन २४, वसा १·४, सूत्र ०·९, कार्बोहाइड्रेट ५९·६ तथा खनिज पदार्थ ३·२ प्रतिशत

---

१. च. चि. २५।७९, २९।१३४।
२. च. चि. २१।६०।
३. च. चि. २०।३१।
४. च. चि. १८।१८४।
५. च. चि. १०।४५।
६. च. चि. ६।४८।
७. च. चि. ४।७८।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होते हैं। खनिजों में कैल्शियम १५४, फास्फोरस ३८५, लोह ९.१, मैगनीशियम १८५, सोडियम ३९.८, पोटाशियम ८००, ताम्र ०.७२ तथा गंधक १७४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामिन ए, बी और कुछ किण्वतत्त्व भी होते हैं। बीजों से २ प्रतिशत स्थिर तैल निकलता है[1]।

गुण-कर्म

माष गुरु, स्निग्ध, मधुर, उष्णवीर्य, उत्तम वातशामक, कफपित्तवर्धक, वृष्य, बल्य, क्लैब्यनाशक, स्तन्यजनन और पुरीषजनन है[2]। यह कफपित्तकर पदार्थों में अग्रणी है तथा दालों में अहिततम माना गया है।

प्रयोग

आहारीय—यह विशेषतः भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में दाल के रूप में व्यवहृत होता है। इससे पापड़, वड़ा, इटली, दोशा, नमकीन तथा मिष्टान्न बनते हैं।

औषधीय—यह वातव्याधि, शुक्रदौर्बल्य आदि के लिए प्रसिद्ध औषध है[3]।

१९. आढकी

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae)।

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae).

नाम—लै०–कैजानस केजान (Cajanus cajan (Linn.) Millsp.); सं०–आढकी; हि०–अरहर; ता०–तोवरे; ते०–कंदुलु; कन्न०–तोगरे; मल०–तुवर; अं०–रेड ग्राम (Red gram), पिजन पी (Pigeon Pea).

स्वरूप—इसका वर्षायु या बहुवर्षायु गुल्म ४–१० फीट ऊंचा होता है। शाखायें धूसरवर्ण, धारिखायुक्त होती है। पत्रक–रोमश, आयताकार–भालाकार, १.५–२.५ इञ्च लम्बे, निचले पृष्ठ पर श्वेताभ होते हैं। [illegible]-पीतवर्ण, ३/४ इञ्च [illegible] अक्षीय या अन्त्य मंजरियों में लगते हैं। [illegible]सरसूत्र पर्यायक्रम से वड़े और छोटे होते हैं। फली–२–३ इञ्च लम्बी, रेशमी, प्रायः गहरे बैंगनी धब्बों से युक्त

---

1. W. I., X. 481–83.
2. वृष्यः परं वातहरः स्निग्धोष्णो मधुरो गुरुः।
   बल्यो बहुमलः पुंस्त्वं माषं शीघ्रं ददाति च॥ (च. सू. २७।२४)
   'माषाः श्लेष्मपित्तजननानाम्'। (च. सू. २५।३८)
   'माषाः शमीधान्यानां (अपथ्यत्वेन प्रकृष्टतमाः)।' (च. सू. २५।२७)
   और देखें। (सु. सू. ४६।२४; अ. हृ. सू. ६।२२;)
3. देखें। (द्र० गु. भाग २, पृ० १९१–९५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होती है। बीज-प्रत्येक फली में ३–४, गोलाकार, मटर के बराबर, हलके भूरे रंग के होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह अफ्रीका का मूल निवासी माना जाता है। भारत में इसकी खेती अधिकांश उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और तामिलनाडु में होती है। यह खरीफ फसल के रूप में वर्षा के प्रारंभ में बोई जाती है और फरवरी-मार्च में तैयार हो जाती है।

जाति—इसके अनेक प्रकार हैं। मुख्यतः दो जातियाँ होती हैं—

१. Var. bicolor DC.—(आढ़की–अरहर) इसका पौधा प्रायः बहुवर्षायु, बड़ा, पुष्प–बैंगनी धारीयुक्त पीले; फलियाँ गहरे रंग की ४–५ बीज युक्त होती हैं।

२. Var. flavus DC.—यह तुर (तुवरी[1]) जाति है। इसका पौधा छोटा, पीत पुष्प, सादी फलियाँ २–३ बीजयुक्त होती हैं।

रासायनिक संघटन–दाल में आर्द्रता १५·२, प्रोटीन २२·३, वसा १·७, कार्बोहाइड्रेट ५७·२, खनिज पदार्थ ३·६, कैलशियम ९·१४, फास्फरस ०·२६ प्रतिशत होते हैं। विटामिन ए और बी भी होते हैं[1]।

गुण-कर्म

अरहर लघु-रूक्ष, कषाय-मधुर, शीत, वातवर्धक, कफपित्तशामक, वर्ण और ग्राही है[2]।

प्रयोग

आहारीय—पूर्वी प्रदेशों में यह सर्वाधिक प्रचलित दाल है। हरी फलियों का शाक भी बनाते हैं।

औषधीय—यह स्थौल्यहर है[3]। पित्तातिसार में इसका यूष विहित है[4]। अरहर के पत्तों की धूमवर्त्ति हिक्का में लाभकर है[5]। वातरक्त में इसका यूष प्रचुर घी देकर पिलाना चाहिए[6]।

२०. मसूर

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae).

---

१. तुवरी (तोरी) एक शिम्ब धान्य भी है।

१. W. I., II. 10

२. आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः।
   ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित्॥ (भा. प्र.)

३. च. सू. २१।२६

४. च. चि. १९।५१

५. च. चि. २३।९८,

६. च. चि. २९।५१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae).

नाम—लै०–लेन्स क्युलिनरिस (Lens culinaris Medic). सं०–मसूर, मंगल्यक[1]; हि०–मसूर, मसुरी; ते०–मिसुरपप्पु; कन्न०–मस्सुर; अं०–लेन्टिल (Lentil)।

स्वरूप—यह किञ्चित् रोमश ½–२½ फीट ऊँचा पौधा है। **पत्र**–संयुक्त, पक्षवत्; **पत्रक**–४–६ जोड़े, भालाकार छोटे होते हैं। **पुष्प**–श्वेत, रक्ताभ या बैंगनी, अक्षीय पुष्पदंड पर एकल या २–४ एक साथ होते हैं। **फली**–चिकनी, चपटी, आयताकार या विषम चतुर्भुजाकार १–१½ सें.मी. लम्बी होती हैं जिसमें दो बीज, चिकने लेन्स की आकृति के, गुलाबी रंग के होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसकी खेती उत्तर भारत में विशेषतः उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल में होती है। इसका आदिम वासस्थान एशिया माइनर, फारस या हिन्दुकुश माना जाता है। रबी की फसल के रूप में अक्तूबर-नवम्बर में बोई जाती है।

जाति—इसके अनेक भेद होते हैं, किन्तु व्यवहार में दो जातियाँ प्रचलित हैं—बड़ी और छोटी। बड़ी जाति मसूर कहलाती है और छोटी मसूरी या मसूरिका।

रासायनिक संघटन—मसूर में आर्द्रता १२४, प्रोटीन २५·१, वसा ०·७, कार्बोहाइड्रेट ५९·७, खनिज पदार्थ २·१ प्रतिशत होता है। खनिजों में कैलशियम ३८·६, फास्फरस २४२, लौह ७·६२, गन्धक १२२ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामिन बी पर्याप्त प्रमाण में होता है, इसके अतिरिक्त, ए, सी, के और ई भी होते हैं। कुछ किण्वतत्त्व भी होते हैं[2]।

गुण-कर्म

मसूर लघु, रूक्ष, मधुररस, मधुरविपाक, शीत, वातल, कफपित्तशामक, रक्तपित्तहर, ज्वरघ्न, ग्राही होता है[3]।

प्रयोग

आहारीय—मसूर का प्रयोग दाल के रूप में विशेष होता है। इसकी

---

१. सुश्रुत ने इसका पाठ मसूर से पृथक् किया है। भावप्रकाश में दोनों पर्यायवाची हैं। सुश्रुतोक्त मंगल्यक और भावप्रकाशोक्त मसूरिका सम्भवतः एक हो। डल्हण ने कृष्णाभ को मसूर तथा पाण्डुवर्ण को मंगल्यक कहा है।

२. W. I., VI, 63–64

३. मसूरो मधुरः पाके संग्राही शीतलो लघुः।
कफपित्तास्रजिद् रूक्षो वातलो ज्वरनाशनः॥ (भा. प्र.)
'विपाके मधुराः प्रोक्ता मसूरा बद्धवर्चसः' (सु. सू. ४६।१०)
कृते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारकाः' (सु. सू. ४६।२३)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दालमोट भी बनाते हैं। दाल पीस कर बड़ी भी बनती है। हरी छीमी की सब्जी बनाते हैं।

औषधीय—ज्वर, ग्रहणी आदि में इसका यूष के रूप में प्रयोग प्रशस्त है। मुंह में झाँई होने पर मसूर की दाल बकरी के दूध में पीस कर लेप करते हैं।

२१. चणक

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी-Leguminosae)

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी-Papilionatae)

नाम—लै०-साइसर एरिएटिनम् (Cicer arietinum Linn.) सं०-चणक, हरिमन्थ; हि०-चना, बूट; बं०-छोला; म०-हरबरा; ता०-कडलै; ते०-सनगालु; कन्न०-कडले; अ०-हुमेज; अं०-ग्राम (Gram), बंगाल ग्राम (Bengal Gram).

स्वरूप—इसका पौधा उत्थित या प्रसरी, अनेकशाखायुक्त, वर्षायु, ग्रन्थिक-रोमश, १–२ फुट ऊँचा होता है। **पत्र**–पक्षवत्; **पत्रक**–अंडाकार, ·१५–·३ इञ्च लंबे, दन्तुर, १–२ इञ्च लंबे पत्रदंडक पर होते हैं। **पुष्प**–नीलाभ बैंगनी, कोमल पुष्पदंडों पर होते हैं। **फली**–आयताकार, ¾–१ इञ्च लंबी, जिसमें १–२ बीज, ०·२–०·४ इञ्च व्यास के, अग्रभाग नुकीला, पृष्ठभाग चिकना या सिकुड़नयुक्त, भूरे, पीले या सफेद रंग के होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल निवास मध्य एशिया में काकेशस तथा हिमालय के मध्यवर्ती क्षेत्र में मानते हैं जहाँ से यह दक्षिणी युरोप, फारस, मिस्र और भारत में फैला। भारत में इसकी खेती विशेषतः पूर्वी पञ्जाब, उ०प्र०, बिहार तथा मध्य प्रदेश में होती है। रबी फसल के रूप में बोया जाता है, ४–६ मास में फसल तैयार होती है।

जाति—वर्ण एवं आकृति के अनुसार इसके अनेक भेद हैं। स्थूल रूप से दो जातियाँ हैं—भूरा और सफेद। भूरा या देशी चना सर्वत्र प्रचलित है। सफेद 'काबुली चना' कहलाता है, इसकी फसल कम होती है। कुछ लोग इसे एक भिन्न प्रजाति C. kabulium मानते हैं।

रासायनिक संघटन—चने का रासायनिक संघटन निम्नाङ्कित है:—

	चना	चने की दाल
आर्द्रता	९·८%	११·२%
प्रोटीन	१७·१%	२२·५%
वसा	५·३%	५·२%

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कार्बोहाइड्रेट	६१·२%	५८·९%
खनिज पदार्थ	२·७%	२·२%
सूत्र	३·९%	०%
कैलशियम	०·१९%	०·०७%
फास्फरस	०·२४%	०·३१%

विटामिन ए और बी भी होते हैं। चने में तैल ४–५% होता है। अंकुरित चने के भ्रूण से तीन स्फटिकीय पदार्थ निकाले गये हैं—बायोचनिन ए, बी और सी।

चने पौधे के ग्रन्थि के रोमों से एक अम्ल तीक्ष्ण द्रव का स्राव होता है जिसे 'चणकाम्ल' कहते हैं। इसमें मेलिक एसिड ९४·२ तथा आक्जलिक एसिड ५·६ प्रतिशत होते हैं[1]।

गुण-कर्म

चना लघु, रूक्ष, कषाय-मधुर, शीत, वातवर्धक, कफपित्तरक्तशामक, पुंस्त्व-नाशक तथा विरूक्षण होता है। घी मिला कर खाने से त्रिदोषशामक हो जाते हैं[2]।

प्रयोग

आहारीय—चना एक ऐसा शिम्बीधान्य है जिसका विविध रूपों में आहार में प्रयोग होता है। चने को कच्चा, फुला कर या घुघनी (कुल्माष) बना कर खाते हैं। चने की दाल बनती है। दाल का बेसन बना कर उसकी बड़ी, कढ़ी, लड्डू इत्यादि मिष्टान्न तथा हलवा आदि बनते हैं। चने को भून कर खाते हैं। दाल भून कर सत्तू बनाया जाता है। प्राचीनकाल में ग्रीष्म ऋतु में सत्तू का मन्थ लोग पीते थे जैसा आजकल लस्सी का प्रचलन है। सत्तू भोजपुर का प्रिय आहार हे। सत्तू को रोटी या बाटी में भर कर भी बनाते हैं। चने को पीसकर उसकी चटनी और अचार भी बनता है।

हरा चना तथा कोमल पत्तियों का शाक में प्रयोग होता।

औषधीय—मधुमेह, स्थौल्य, रक्तविकार के लिए चना प्रशस्त अन्न है। चने का सत्तू अम्लपित्त और परिणामशूल में आहार रूप में देते हैं।

---

१. W. I., II, 158–59.

२. वातलाः शीतमधुराः सकषाया विरूक्षणाः।
कफशोणितपित्तघ्नाश्चणकाः पुंस्त्वनाशनाः॥
त एव घृतसंयुक्तास्त्रिदोषशमनाः परम्। (सु. सू. ४६)
चणकाश्च मसूराश्च खण्डिकाः सहरेणवः।
लघवः शीतमधुराः सकषाया विरूक्षणाः॥ (च. सू. २७।२८)
'चणको वातलः शीतः कफास्रकृपित्तपुंस्त्वनुत्' (द्र. सं. १।२९)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२२. सतीन

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी-Leguminosae)

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी-Papilionatae)

नाम—लैं०-पिसम सेटाइवम् (Pisum sativum Linn.). सं०-सतीन; हि०-मटर, केराव, म०गु०-वतनी; ते०-पटनलु; ता०मल०-पट्टनी; कन्न०-वतनी; अं०-पी (Pea)।

स्वरूप—इसका वर्षायु क्षुप पोले काण्ड युक्त होता है जिसके अग्रभाग के अन्त में एक या अधिक तन्तु होते हैं। **पत्र**-पक्षवत्; **पत्रक**-२-३ जोड़े, सकणंक, उपपत्र युक्त होते हैं। **पुष्प**-श्वेत, नीलाभ या बैंगनी होते हैं। **छिमी**-सीधी या टेढ़ी, नुकीली या कुण्ठिताग्र, २-४ इञ्च लम्बी होती है जिसमें ६-९, हरे, श्वेतधूसर या भूरे, चिकने-गोल या चपटे-सिकुड़नयुक्त, ३·५-५ मि.मी. व्यास के बीज होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—बड़ी मटर का मूल उद्भव भूमध्यसागरीय क्षेत्र तथा छोटी मटर का पश्चिमोत्तर भारत और अफगानिस्तान मानते हैं। मुख्यतः चीन, रूस तथा भारत में इसकी उपज होती है। भारत में इसकी खेती मुख्यतः उत्तरप्रदेश में होती है। उसके वाद बिहार, मध्यप्रदेश का नम्बर आता है।

रबी की फसल के रूप में बोई जाती है।

जाति—आयुर्वेदीय ग्रन्थों में सतीन (बड़ी या काबुली मटर) और हरेणु (छोटी या देशी मटर) ये दो जातियां हैं। वानस्पतिक दृष्टि से ये निम्नांकित रूप में रक्खे जा सकते हैं :—

१. सतीन—(subsp. sativum, covar. sativum. (Garden Pea)

२. हरेणु—subsp. sativum, covar. speciosum (Dierb) Alef. (Field Pea)

एक तीसरी जाति जो सब्जी के लिए उगाई जाती है वह subsp. sativum covar. axiphium Alef. (Sugar Pea) है।

भावमिश्र तथा कुछ अन्य निघण्टुकारों ने कलाय को सतीन का पर्यायवाची रक्खा है। वस्तुतः कलाय बड़ा त्रिपुटक है।

सुश्रुत ने सतीन, हरेणु, कलाय और त्रिपुटक चारों का पृथक् उल्लेख किया है।

रासायनिक संघटन—हरे और सूखे दानों का संघटन निम्नाङ्कित है :—

१२ द्र० वि० तृ०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

	हरा दाना	सूखा दाना	
आर्द्रता	७२%	१६%	
प्रोटीन	७·२%	१९·७%	
वसा	०·१%	१·१%	
कार्बोहाइड्रेट	१५·९%	५६·५%	
सूत्र	४%	४·५%	
कैलशियम	२० मि.ग्रा.	७५ मि.ग्रा.	प्रति १०० ग्रा०
फास्फरस	१३९ ,,	२९८ ,,	,,
लौह	१·५ ,,	५·१ ,,	,,

विटामिन् ए और बी भी पाये जाते हैं। हरे दाने में विटामिन सी भी होता है। सूखे दानों से १–२% सुनहले पीले रंग का एक तैल निकलता हैं। इसमें त्रिपुटक के समान खञ्जताजनक क्षाराभ भी होता है[1]।

गुण-कर्म

सतीन और हरेणु रूक्ष, मधुर, शीत, वातवर्धक, रक्तपित्तशामक तथा विबन्धजनक होता है। कलाय अतिवातल है[2]।

प्रयोग

आहारीय—सूखे दानों का दाल में प्रयोग होता है। उसको पीस कर बेसन भी बनाते हैं। भून कर भी खाते हैं। हरे दानों तथा नई पत्तियों का शाक में प्रयोग होता है।

औषधीय—सतीन तैल (Pea oil) में गर्भनिरोधक तथा शुक्रनाशन कर्म पाया गया है। रूक्षण के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

२३. त्रिपुटक

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae)।

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae).

नाम—लै०–लैथिरस सेटाइवस (Lathyrus sativus Linn.)

---

१. W. I., VIII, 134–36.

२. 'हरेणवः सतीनाश्च विज्ञेया बद्धवर्चसः'। (सु. सू. ४६।१३)

'कलायाः प्रचुरानिलाः'। (सु. सू. ४६।१०)

'सतीना वातला रक्तपित्तघ्ना बद्धवर्चसः'। (द्र. सं. १।२९)

'कलायो वातलः परम्'। (च. सू. २७।२९)

'कलायो मधुरः स्वादुः पाके रूक्षश्च शीतलः'। (भा. ३.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सं०–कलाय, त्रिपुटक, खण्डिक; हि०–खेसारी, लतरी; म०=लाख; गु०–लांग; अं०–ग्रास पी (Grass pea).

स्वरूप—इसका अर्ध–उत्थित, वर्षायु क्षुप होता है। **काण्ड**–सपक्ष, ४ फीट तक लम्बा होता है। **पत्र**–पक्षवत्, पत्रक–दो, कभी-कभी चार, रेखाकार, १–२½ इञ्च लम्बे; ऊपरी पत्रक तथा पत्रदंडक तन्तु में परिणत होते हैं। उपपत्र–भालाकार, कर्णकयुक्त होते हैं। **पुष्प**–एकल, अक्षीय, नीले बैंगनी या सफेद होते हैं। **फली**–आयताकार, १–१½ इञ्च लम्बी, चपटी, कुछ टेढ़ी, नीचे की ओर द्विपक्षयुक्त होती हैं। **बीज**–प्रत्येक फली में ४–५, कोणयुक्त, धूसर भूरे, प्रायः चित्रित होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—त्रिपुटक दक्षिणी युरोप और पश्चिमी एशिया का मूल निवासी कहा जाता है। भारत में इसकी खेती मुख्यतः बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र में होती है।

रबी की फसल के रूप में यह बोया जाता है।

जाति—डल्हण के अनुसार छोटी जाति को त्रिपुटक तथा बड़ी जाति को कलाय कहते हैं। चरक ने 'खण्डिक' और सुश्रुत ने त्रिपुटक शब्द का प्रयोग किया है। 'कलाय' शब्द आगे चल कर सतीन का पर्याय बन गया। इसका कारण संभवतः सतीन की एक जाति कलाय (त्रिपुटक) से मिलती-जुलती (कोणीय) तथा उसमें कलाय के समान खञ्जत्वजनक घटक की उपस्थिति होना है।

रासायनिक संघटन—दानों में आर्द्रता १०, प्रोटीन २८·२, वसा ०·६, कार्बोहाइड्रेट ५८·२ तथा खनिज पदार्थ ३ प्रतिशत पाये जाते हैं। विटामिन ए, बी और सी भी पाये जाते हैं। सैपोनिन तथा क्षाराभ भी होते हैं[1]।

गुण-कर्म

त्रिपुटक रूक्ष, मधुर–तिक्त–कषाय, शीत, अत्यन्त वातवर्धक, कफपित्तहर, विबन्धकर तथा खञ्जत्व, पंगुत्व उत्पन्न करने वाला है[2]। इसके अतिसेवन से 'कलाय-खञ्ज' नामक रोग उत्पन्न होता है। दाल में स्थित एक विषाक्त क्षाराभ के कारण यह रोग होता है। उबालने से यह निकल जाता है।

प्रयोग

आहारीय—इसकी दाल तथा इसके बेसन की रोटी, वड़ी आदि बना कर खाते हैं। चने के बेसन में इसकी मिलावट करते हैं।

इसकी हरी पत्तियों का साग खाते हैं।

---

१. W. I., VI., 37-40.

२. त्रिपुटो मधुरस्तिक्तस्तुवरो रूक्षणो भृशम् । कफपित्तहरो रुच्यो ग्राहकः शीतलस्तथा ॥
किन्तु खञ्जत्वपङ्गुत्वकारी वातातिकोपनः । (भा॰ प्र॰)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२४. मकुष्ठक

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae) ।

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae).

नाम—लै०–विगना एकोनाइटिफोलिया (Vigna aconitifolia (Jacq.) Marechal). सं०–मकुष्ठक, मकुष्ठ; हि०–मोठ; बं०–खेरी; म०–माठ, मटकी; गु०–माठ; ता०–तुलुक्कापचिर; ते०–कुंचुमापेसालु; कन्न०–मडिके; पं०–भिओनी; अं०–एकोनाइट–बीन (Aconite bean); मोठ बीन (moth bean) ।

स्वरूप—इसका पौधा वर्षायु या बहुवर्षायु, अर्ध-उत्थित या प्रसरी, किंचित् रोमश होता है । **काण्ड**–अनेक, कई फीट लम्बे होते हैं । **पत्र**–त्रिपत्रक, पत्रक–गहरे ३–५ रेखाकार या भालाकार खण्डों में विभक्त; उपपत्र–पतले, तीक्ष्णाग्र होते हैं । **पुष्प**–लम्बे पुष्पदंडों में, शीर्षस्थ गुच्छों में होते हैं । **फली**–१–२ इञ्च लम्बी, ·१५–·१७ इञ्च चौड़ी, बेलनाकार, चिकनी, ६–१२ बीजयुक्त होती है । **बीज**–छोटे, ४ मि० मी० लम्बे, २ मि० मी० चौड़े, पीले से भूरे या चित्रित-कृष्ण, सिरों पर गोल या रुण्डित होते हैं ।

उत्पत्तिस्थान—भारत में इसकी खेती विशेषतः राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार में होती है । खरीफ फसल के रूप में जून-जुलाई में बोते हैं जो अक्टूबर-नवम्बर में तैयार हो जाती है ।

जाति—यह दो प्रकार का प्रचलित है—१. कृष्ण मोठ २. श्वेताभ हरित (गौर) मोठ । दूसरा प्रकार विशेष प्रचलित है ।

रासायनिक संघटन—इसमें आर्द्रता १०·८, प्रोटीन २३·६, वसा १·६; सूत्र ४·५; कार्बोहाइड्रेट ५६·५, खनिज ३·५ प्रतिशत होते हैं । खनिजों में कैलशियम २०२, फास्फरस २३०, लौह ९·५, ताम्र ०·८, गन्धक १८० मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं । विटामिन ए, बी, सी भी होते हैं । इससे एक स्थिर तैल ०·९% निकलता है[1] ।

गुण-कर्म

मकुष्ठ रूक्ष, मधुर, शीत, ग्राही होता हैं तथा रक्तपित्त, ज्वर आदि (पैत्तिक) विकारों में प्रशस्त है । यह कफपित्तशामक तथा वातवर्धक है[2] । यह कृमिकर है ।

1. W. I., X. 473

२. मधुराः मधुराः पाके ग्राहिणो रूक्षशीतलाः ।
मकुष्ठकाः प्रशस्यन्ते रक्तपित्तज्वरादिषु ॥ (च. सू. २७।२७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग

आहारीय—दानों को उबाल कर, भून कर या दाल के रूप में प्रयोग करते हैं। 'दालमोठ' संज्ञा 'मोठदाल' पर ही आधारित है, उस रूप में इसका प्रयोग बहुलता से होता है। इसके आटे की रोटी भी बनती है। हरी फलियों का शाक बनता है।

औषधीय—ज्वर, रक्तपित्त, अतिसार, यक्ष्मा आदि में मकुष्ठ का यूष लाभकर है[1]।

२५. कुलत्थ

इसके नाम-रूप का विवरण द्वितीय भाग में देखें।

रासायनिक संघटन—बीजों में आर्द्रता ११·८, प्रोटीन २२, वसा ०·५, कार्बोहाइड्रेट ५७·३, सूत्र ५·३, खनिज पदार्थ ३·१, कैलशियम ०·२८, फास्फरस ०·३९ प्रतिशत तथा लौह ७·६ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होते हैं। विटामिन ए, बी तथा युरियेज भी होते हैं[2]।

जाति—वानस्पतिक दृष्टि से इसके अनेक भेद होते हैं। संहिताओं में कुलत्थ के अतिरिक्त एक वन्यकुलत्थ[3] (कुलत्थिका या चक्षुष्या) भी वर्णित है।

गुण-कर्म

कुलत्थ कषाय, अम्लविपाक (सुश्रुतमत से कटुविपाक), उष्णवीर्य, कफवातशामक, रक्तपित्तकर, ग्राही, शुक्रघ्न, अश्मरीघ्न, कास-श्वास-हिक्का-अर्श में लाभकर है[4]।

वन्यकुलत्थ कफशामक एवं विशेषतः नेत्ररोगनाशक है[5]।

मकुष्ठः शीतलो ग्राही कफपित्तज्वरापहः। (द्र. सं. २।३०)
मकुष्ठो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः।
वह्निजित् मधुरः पाके कृमिकृज्ज्वरनाशनः॥ (भा. प्र.)
मकुष्ठकाः कृमिकराः (सु. सू. ४६।३०)

१. च. चि. ३।१८९; ४।३७; ८।११६; १९।५६।

२. W. I. III., 101

३. Cassia absus Linn. इसका विवरण द्वितीय भाग में देखें।

४. उष्णाः कषायाः पाकेऽम्लाः कफशुक्रानिलापहाः।
कुलत्थाः ग्राहिणः कासहिक्काश्वासार्शसां हिताः॥ (च. सू. २७।२६)
'उष्णः कुलत्थो रसतः कषायः कटुर्विपाके कफमारुतघ्नः।
शुक्राश्मरीगुल्मनिषूदनश्च सांग्राहिकः पीनसकासहारी॥
आनाहमेदोगुदकीलहिक्काश्वासापहः शोणितपित्तकृच्च॥' (सु. सु. ४६-३७।३८)

५. कफस्य हन्ता नयनामयघ्नो विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः। (सु. सू. ४६।३८)
'वन्यः कुलत्थस्तद्गुणः विशेषान्नेत्ररोगनुत्'। (द्र. सं. २।१२)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग

आहारीय—दाल के रूप में तथा भून कर इसे खाते हैं।

औषधीय—अश्मरीनाशन के रूप में इसका प्रयोग प्रसिद्ध है। कुलत्थ अम्लपित्तजनन द्रव्यों में सर्वोत्कृष्ट है[1] अतः इससे जन्तुओं में प्रायोगिक अम्लपित्त उत्पन्न किया जा सकता है।

२६. राजमाष

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae)।

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae)।

नाम—लै० विगना अंग्विकुलेटा (Vigna unguiculata (Linn.) Walp.); सं०–राजमाष, अलसान्द्र, चवल; हि०–लोबिया, बोड़ा; बं०–बर्बटी; गु०–चोला; म०–चावली; ते०–अलसेन्दी; ता०–करमनी; कन्न०–अलसन्दी; मल०–वेल्लपयारू; अं०–काउ पी (Cow pea)।

स्वरूप—इसका पौधा अर्ध-उत्थित, प्रसरी या आरोही, झाड़ीदार, वर्षायु होता है। काण्ड चिकने; **पत्र**–पक्षवत्, पत्रक–२–६ इञ्च लंबे, लट्वाकार या विषम चतुर्भुजाकार होते हैं। **पुष्प**–श्वेत, हलके नीले बैंगनी रंग के, मञ्जरियों में होते हैं। ये मुरझाने पर पीले पड़ जाते हैं। **फली**–अनेक प्रकार की, ३ फीट तक लंबी होती है। **बीज**–प्रत्येक फली में १०–२०, विविध वर्ण एवं आकार के होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह प्रायः भारत में सर्वत्र सब्जी के खेतों में लगाया जाता है। अधिकतर यह खरीफ फसलों के साथ लगाया जाता है।

जाति—वानस्पतिक दृष्टि से इसकी तीन उपप्रजातियाँ (subspecies) निर्धारित की गई हैं :—

१. subsp. unguiculata–(Wild cowpea.)–यह प्रायः वल्लीरूप में होता है और फली २०–३० सें० मीटर लंबी होती है।

२. subsp. cylindrica (Linn.) Van-Eseltine. (cultivated cowpea)–इसका पौधा प्रायः उत्थित होता है और फली ७–१३ सें० मी० लंबी होती है।

३. subsp. sesquipedalis (Linn.) Verdcourt. (Asparagus or yardlong Bean.)–पौधा प्रसरी या आरोही होता है और फली ३०–९०

---

१. च. सू. २७।२८।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सें० मी० लंबी, मुड़ी हुई, मांसल; बीज वृत्ताकार ८–१२ मि० मी० लंबे होते हैं। यह अधिकतर इण्डोनेशिया, फिलिपाइन और श्रीलंका में होता है।

भावप्रकाश में बीज के वर्णानुसार श्वेत, रक्त और कृष्ण ये तीन भेद किये हैं।

रासायनिक संघटन—

	हरी फलियाँ	सूखे बीज
आर्द्रता	८५·३%	१३·४%
प्रोटीन	३·५%	२४·१%
कार्बोहाइड्रेट	८·१%	५४·५%
वसा	०·२%	१·०%
सूत्र	२·०%	३·८%
खनिज पदार्थ	०·%६	३·२%
कैलशियम	७२ मि० ग्रा०	७७ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम
फास्फरस	५६ ,, ,,	४१४ ,, ,, ,, ,, ,,
लौह	२·५ ,, ,,	५.६ ,, ,, ,, ,, ,,

इनके अतिरिक्त, हरी फलियों में विटामिन ए, बी और सी पाये जाते हैं। कुछ किण्वतत्त्व भी होते हैं। बीजों में ०·६५% हलके पीले रंग का तैल निकलता है[1]।

गुण-कर्म

राजमाष गुरु, रूक्ष, विशद, सर, कषाय-मधुर, वातवर्धक, कफपित्तशामक, शुक्रघ्न, अम्लपित्तशामक बल्य, स्तन्यजनन तथा रुचिकर है[2]।

प्रयोग

आहारीय—परिपक्व सूखे बीज उबाल कर खाये जाते हैं। दाल के रूप में तथा आंटा बना कर विविध कृतान्न बनाते हैं। बीजों को अंकुरित कर भी खाते हैं। हरी कच्ची फलियों का शाक बनता है।

औषधीय—अम्लपित्त में इसका यूष देते हैं।

वक्तव्य—आजकल राजमा में बृहत् शिम्बी (Phaseolus vulgaris Linn) हि०–फराश बीन, अं०–French bean) के बीजों का प्रयोग होता है। इसकी

१. W. I., X, 506–508.

२. राजमाषः सरो रुच्यः कफशुक्राम्लपित्तनुत्।
तत् स्वादुर्वातलो रूक्षः कषायो विशदो गुरुः॥ (च. सू. २७।२५)
स्वादुर्विपाके मधुरोऽलसान्द्रः संतर्पणः स्तन्यरुचिप्रदश्च। (सु. सू. ४६।१५)
राजमाषो गुरुः स्वादुस्तुवरः तर्पणः सरः।
रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यो भूरिबलप्रदः॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हरी फलियों का शाक बनाते हैं। राजमा (सूखे बीजों) में प्रोटीन २२·९, वसा १·३, कार्बोहाइड्रेट ६०·६ और खनिज पदार्थ ३·२ प्र० श० होते हैं। कैलशियम २६०, फास्फरस ४१० तथा लोह ५·८ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। विटामिन बी और सी भी होते हैं[1]।

२७. निष्पाव

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae)।

उपकुल—अपराजिता-उपकुल (पॅपिलिओनेटी–Papilionatae).

नाम—लै०-डॉलिकस लब्लब् (Dolichos lablab Linn.); सं०–निष्पाव, वल्ल; हि०–सेम, बरसीम; गु०–बल; म०–पावटा; ता०–अवरै; ते०–चिक्कुडु; कन्न०–चप्परडा अवरे; मल०–अवरा; अं०–लब्लब् बीन (Lablab bean), इंडियन बटर बीन (Indian butter bean).

स्वरूप—इसकी दृढ़ आरोहिणी लता होती है। **पत्र**–त्रिपत्रक; **पत्रक**–रोमश, लट्वाकार या त्रिभुजाकार, लंबाग्र २–४ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**–लाल, बैंगनी या सफेद, ३–६ इञ्च लम्बी अक्षीय या अन्त्य मंजरियों में लगते हैं। **फली**–सफेद से बैंगनी तक, प्रायः चमकीले, २–३ इञ्च लम्बी, अर्धचन्द्र-आयताकार, या मध्यभाग से ऊपर अधिक चौड़ी, अग्रभाग पर मुड़े हुए कुक्षिवृन्त से युक्त होती है। **बीज**–प्रायः ½ इञ्च लम्बे, सफेद, पीले, बैंगनी या काले होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह प्रायः भारत में सर्वत्र वाटिकाओं में सब्जी के रूप में उगाया जाता है।

बरसात में बीज बोये जाते हैं और दिसम्बर से अप्रिल तक की अवधि में पक्व फलियों का संग्रह कर लेते हैं।

जाति—इसके दो भेद हैं :—

१. var. typicus Prain.
२. var. lignosus Prain.

प्रथम भेद का वर्णन ऊपर किया गया है। द्वितीय भेद का पौधा झाड़ीदार, अर्धउत्थित होता है और खेतों में लगाया जाता है। पुष्पमंजरी लम्बी और उत्थित होती है, फलियाँ भी बड़ी होती हैं। यह दक्षिण भारत विशेषतः तामिलनाडु और कर्नाटक में दाल के लिए उगाया जाता है। प्रथम भेद की हरी फलियों का प्रयोग शाक में होता है।

---

१. W. I., VIII, 11

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संघटन—

	प्रथम भेद (हरी फली)	द्वितीय भेद (दाल)
आर्द्रता	८२·४%	९·६%
प्रोटीन	४·५%	२४·९%
वसा	०·१%	०·८%
खनिज पदार्थ	१·०%	३·२%
सूत्र	२·०%	१·४%
कार्बोहाइड्रेट	१०·०%	६०·१%
कैलशियम	०·०५%	०·०६%
फास्फरस	०·०६%	०·४५%
लोह	१·६७ मि० ग्रा०	२·० मि० ग्रा०/१०० ग्रा०

प्रथम भेद में विटामिन सी और दोनों में विटामिन बी पाया जाता है[१]।

गुण-कर्म

निष्पाव गुरु, रूक्ष, सर, कषाय-मधुर, अम्लविपाक, उष्णवीर्य, कफघ्न, वातपित्तवर्धक, विदाही, विबन्धकारक, शुक्रघ्न है[२]।

प्रयोग

आहारीय—उत्तरभारतीय निष्पाव की हरी फलियों का शाक में तथा दक्षिण भारतीय जाति के बीजों का दाल के रूप में प्रयोग होता है।

औषधीय—निष्पाव रक्तपित्त, पाण्डु, हिक्का-श्वास तथा वातरक्त के निदान में पठित है अतः इन रोगों में इसका परिवर्जन करना चाहिए।

२८. शिम्बी

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae)।

उपकुल—अपराजिता–उपकुल (पैपिलिओनेटी–Papilionatae).

नाम—लै०–फैसिओलस लुनेटस (Phaseolus lunatus Linn); सं०–

---

१. W. I., III, 105–6.

२. निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाकेऽम्लो गुरुः सरः।
कषायः स्तन्यपित्तास्रमूत्रवातविबन्धकृत्॥
विदाह्युष्णो विषश्लेष्मशोथहृच्छुक्रनाशनः। (भा. प्र.)
'निष्पावा वातपित्तलाः'। (च. सू. २७।२१)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शिम्बी; हि०—सेम; पं०—लोबिया; ता०—खासी कोल्लु; म०—डाफुल अं०—लाइमा बीन (Lima bean), डबल बीन (Double bean).

स्वरूप—इसकी बल्ली होती है। **पत्र**—त्रिपत्रक; **पत्रक**—२–४ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्पमंजरी**—प्रायः १–३½ इञ्च लम्बी, रोमश होती है जिसके प्रत्येक पर्व पर प्रायः तीन, श्वेत या पीताभ हरित, रोमश १७–२५ इञ्च लम्बे पुष्प लगते हैं। **फली**—२–२½ इञ्च लम्बी, ६–७ इञ्च चौड़ी, कुछ मुड़ी हुई और चंचुयुक्त, चिकनी होती है जिसमें २–४ बड़े प्रायः सफेद, कभी-कभी गहरे भूरे बीज होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारत में इसे गृहवाटिकाओं में प्रायः सर्वत्र विशेषतः आसाम, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, तामिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पंजाब में होती है।

जाति—वानस्पतिक दृष्टि से इसके अनेक रूप होते हैं। बीजों के वर्ण की दृष्टि से दो प्रकार का होता है—सफेद और गहरे भूरे। सफेद बीज उत्तम माने जाते हैं।

रासायनिक संघटन—सूखे सफेद बीजों में आर्द्रता १३·३, प्रोटीन १९·७; कार्बोहाइड्रेट ५७·८, तैल १·२, सूत्र ४·३ होते हैं। हरी फलियों में प्रोटीन, खनिज पदार्थ तथा विटामिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं। सूखे बीजों से एक भूरे रंग का तैल भी १–२% निकलता है।

बीजों में एक ग्लुकोसाइड, फैसिओलुनेटिन, होता है जो एक विशिष्ट किण्वतत्त्व द्वारा ग्लुकोज, एसिटोन और हाइड्रोसायनिक एसिड में परिणत हो जाता है। भूरे बीजों में हाइड्रोसायनिक अधिक होता है, जिसके कारण कभी-कभी विषाक्त लक्षण होते हैं। भूनने और उबालने से प्रायः विषाक्त तत्त्व नष्ट हो जाता है। पत्तियों में भी हाइड्रोसायनिक एसिड होता है[1]।

गुण-कर्म

शिम्बी रूक्ष, कषाय, विष्टम्भी, कोष्ठवातवर्धक, अवृष्य एवं अचक्षुष्य होती है[2]। शिम्बी जाति के अन्य बीज भी गुरु, रूक्षण, बलनाशक होते हैं, उनका सेवन पर्याप्त स्नेह के साथ करना चाहिए[3]।

प्रयोग

इसकी हरी फलियों का शाक बनाते हैं। बीज उबाल कर या भून कर खाते हैं।

---

१. W. I., VIII, 7-8.

२. शिम्बी रूक्षा कषाया च कोष्ठवातप्रकोपिणी।
न च वृष्या न चक्षुष्या विष्टभ्य च विपच्यते॥ (च. सू. २७।३२)

३. शीतला मधुरा गुर्व्यो बलघ्न्यो रूक्षणात्मिकाः।
सस्नेहा बलिभिर्भोज्या विविधा शिम्बिजातयः॥ (च. सू. २७।३१)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२९. राजशिम्बी

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी-Leguminosae)।

उपकुल—अपराजिला-उपकुल (पैपिलिओनेटी-Papilionatae)।

नाम—लॅ०-ग्लाइसिन मैक्स (Glycine max Merrill): सं०-राजशिम्बी; हि०-भटवांसु, भटवार; रामकुर्थी; बं०-गर्ज कलाई; अं०-सोया बीन (Soya bean)।

स्वरूप—यह वर्षायु, उत्थित या आरोही, सघनरोमश, १½-६ फीट ऊंचा होता है। **पत्र**-त्रिपत्रक, पत्रक-लट्वाकार-भालाकार, दीर्घवृन्त होते हैं। **पुष्प**-छोटे, सफेद, रक्ताभ या बैंगनी, छोटी अक्षीय मञ्जरियों में लगते हैं। **फली**-१½-२ इञ्च लंबी, ३-५ के गुच्छों में, सघन रोमश होती है जिसके भीतर २-४ अंडाकार, दबे हुए; पीले, भूरे या काले रंग के होते है।

उत्पत्तिस्थान—सुदूर पूर्व का यह एक प्रमुख शिम्बी धान्य है। चीन, जापान, कोरिया आदि में यह प्राचीन काल से प्रयुक्त होता रहा है। भारत में भी चिरकाल से उत्तरी भारत विशेषतः आसाम, बंगाल, मणिपुर और नागालैंड में इसे उगाया जाता है। कुछ कुमाऊँ, नेपाल, भूटान और सिक्किम में भी होता है। देश के अन्य भागों में भी इसे उगाने का प्रयास होता रहा है।

यह खरीफ फसल के रूप में जून-जुलाई में बोया जाता है और दिसम्बर-जनवरी में तैयार हो जाता है।

जाति—इसके अनेक रूप हैं जिनमें दो वर्ग स्थूलतः किये गये हैं—१. उत्तरीय-पौधा उत्थित, बीज गोल हलके रंग के, २. उष्णकटिबन्धीय-पौधा प्रसरी, बीज चपटे, गहरे रंग के।

रासायनिक संघटन—बीजों में आर्द्रता ५·०२-९·४२, प्रोटीन २९·६-५०·३, वसा १३·५-२४·२, सूत्र २·८४-६·२७, कार्बोहाइड्रेट १४·०७-२३·८८, कैलशियम ०·२४, फास्फरस ०·६९ प्रतिशत तथा लौह ११·५ मि.ग्रा. प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामिन ए, बी, सी, डी, ई, और के तथा कुछ किण्वतत्त्व होते हैं। दो ग्लाइकोसाइड, जेनिस्टिन (Genistin) और डायडजिन (Daidzin), चार सैपोनिन तथा तीन स्फटिकीय आइसोफ्लैवोन भी होते हैं[1]।

गुण-कर्म

सोयाबीन गुरु, स्निग्ध, मधुर-कषाय, उष्ण, दुर्जर, वातशामक, स्तन्यजनन तथा बल्य है[2]।

---

1. W. I., IV, 146-47

२. राजशिम्बी सुप्तशिम्बी ज्ञेया च गिरिकन्यका।
राजशिम्बी गुरुः स्निग्धा मधुरोष्णा कषायका॥
दुर्जरा वातशमनी स्तन्यदा बलवर्धनी। (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रयोग

हरे दानों को सब्जी में या भून कर खाते हैं। सूखे बीजों का आँटा तथा दूध बनता है। इससे तैल निकलता है तथा मद्य भी बनता है। इसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक है तथा यह एक पौष्टिक अन्न है। अंकुरित धान्य का भी शाक बनता है।

३०. तुवरी

परिचय

कुल—सर्षप-कुल (क्रुसिफेरी–Cruciferae).

नाम—लैं०–एरुका सेटाइवा (Eruca sativa Mill), हि०–तोरी; पं०–तरा; अस्सु; अं०–तारमीरा (Taramira), रॉकेट सलाद (Rocket salad)।

स्वरूप—इसका पौधा वर्षायु २–४ फीट ऊँचा होता है। **पत्ते**–स्थूल, माँसल, दन्तुर होते हैं। **पुष्प**–पीत या रक्ताभ होते हैं। **फली**–१ इञ्च लम्बी, उत्थित, काण्डसंसक्त होती है। **बीज**–छोटे, अनेक, रक्ताभ भूरे, चिकने, अण्डाकार, प्रत्येक कोष्ठ में दो पंक्तियों में व्यवस्थित होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसकी खेती विशेषतः पंजाब और उत्तरप्रदेश में होती है। हिमालय में १० हजार फीट की ऊँचाई तक होती है।

रबी की फसलों के साथ बोई जाती है।

रासायनिक संघटन—बीजों में आर्द्रता ५·३, वसा ३२·१, प्रोटीन २६·७, सूत्र ६·३, खनिज पदार्थ ७·७, कैलशियम ०·६७, फास्फरस १·४० प्रतिशत होते हैं। बीजों से २० प्रतिशत एक हलके पीले रङ्ग का, उग्रगन्धि एवं कटु–तिक्त तैल निकलता है। ५–६ मास रखने पर इसकी कटुता समाप्त हो जाती है[1]।

गुण-कर्म

तुवरी लघु-तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कफघ्न, दीपन, ग्राही, क्रिमिघ्न एवं कुष्ठघ्न है[2]।

प्रयोग

बीजों का सरसों के प्रतिनिधि रूप में प्रयोग होता है। राई में भी इसकी मिलावट करते हैं। इसका तेल खाने में तथा अचार वगैरह में काम आता है। नया पौधा शाक में प्रयुक्त होता है।

वक्तव्य—तिल, अतसी, सर्षप राजिका आदि का भी धान्यवर्ग में अनेक ग्रन्थकारों ने वर्णन किया है। वस्तुतः ये आहारयोगी वर्ग के द्रव्य हैं अतः इनका विचार यहीं किया जायगा। तुवरी भी उन्हीं में है किन्तु 'आढकी' का भी एक

---

१. W. I., III, 191.

२. तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता लघ्वी कफविषास्रजित्।
तीक्ष्णोष्णा वह्निदा कण्डूकोठकुष्ठक्रिमिप्रणुत्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पर्याय तुवरी दिया है अतः उससे पार्थक्य दिखलाने के लिए इसका वर्णन इसी प्रकरण में किया।

उपसंहार

धान्यवर्ग के द्रव्यों में शूकधान्य में षष्टिक, यव, गोधूम और रक्तशालि तथा शमीधान्य में मुद्ग, मसूर और आढकी (अरहर) श्रेष्ठ माने गये हैं[1]।

ऋतुविपरीत, रोगग्रस्त, अपरिपक्व, प्रतिकूल भूमि में उत्पन्न तथा नवीन धान्य गुणकारी नहीं होता[2]।

नया धान्य अभिष्यन्दी होता हैं। एक वर्ष पुराना धान्य लघु हो जाता है। उसके बाद उसका वीर्य नष्ट होने लगता है। असम्यक् विकसित धान्य विदाही, गुरु, विष्टम्भी तथा दृष्टिदूषक होता है[3]।

यव, गेहूँ, उड़द और तिल नवीन ही प्रशस्त होते हैं, पुराना होने पर उतने कार्यकर नही होते[4]।

---

१. षष्टिका यवगोधूमा लोहिता ये च शालयः।
मुद्गाढकीमसूराश्च धान्येषु प्रवराः स्मृताः॥ (सु. सू. ४६।३३२)

२. अनार्त्तवं व्याधिहतमपर्यागतमेव च।
अभूमिजं नवं चापि न धान्यं गुणवत् स्मृतम्॥ (सु. सू. ४६।५०)

३. नवं धान्यमभिष्यन्दि लघु संवत्सरोषितम्।
विदाहि गुरु विष्टम्भि विरूढं दृष्टिदूषणम्॥ (सु. सू. ४६।५१)
धान्यं सर्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम्।
तत्त वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हि तत्॥
वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति।
न तु त्यजति वीर्यं स्वं क्रमान् मुञ्चत्यतः परम्॥ (भा. प्र.)

४. यवगोधूममाषाश्च तिलाश्चाभिनवा हिताः।
पुराणा नीरसा रूक्षा न तथाऽर्थकराः मताः॥ (द्र. तं. २।४३)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तृतीय अध्याय

शाकवर्ग

शूकधान्य (चावल, रोटी) और शमीधान्य (दाल) के बाद तीसरा स्थान शाक का है। खनिज लवण तथा विटामिन की आपूर्ति शाक द्वारा होती है। प्राचीन काल में वनों में लोग कन्द और मूल यों ही खा लेते थे किन्तु सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ उनसे विविध शाक और व्यञ्जन बनने लगे। अनेक फल भी शाकरूप में व्यवहृत होते हैं। पाणिनीय व्याकरण में एक राजा का उल्लेख किया गया है जिसे शाक अत्यन्त प्रिय था (शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः)।

इनमें लवणांश तथा जलांश अधिक होने से शाकों के अतियोग से रक्तविकार, शोथ आदि होने की संभावना होती है। इसके अतिरिक्त, शाक की पत्तियों और फलों के माध्यम से अनेक विकारोत्पादक पराश्रयी जीवाणु तथा कृमि शरीर में प्रविष्ट कर प्रवाहिका, कृमि आदि रोग उत्पन्न करते हैं। इसी कारण कुछ मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने शाक के इस पक्ष से सतर्क करने के लिए किंचित् व्याजस्तुति की है[1] यद्यपि प्राचीन संहिताओं में ऐसा निर्देश नहीं मिलता।

शाकों का वर्गीकरण

चरक ने शाकों का वर्गीकरण रस तथा दोषप्रभाव की दृष्टि से किया है प्रयोज्य अंगों की दृष्टि को उतना महत्त्व नहीं दिया। प्रकरण के अन्त में पत्र, कन्द और फल का उल्लेख किया[2]। चक्रपाणि इसकी व्याख्या में कहते हैं कि प्रधानतः इन तीन का ही उल्लेख किया गया इससे पुष्प आदि का भी बोध करना चाहिए[3]। चरक ने शाक के अतिरिक्त हरित तथा आहारयोनि द्रव्यों के पृथक् वर्ग निर्धारित किये।

सुश्रुत ने पुष्प, पत्र, फल, नाल और कन्द इन पाँच अंगों का विभाजन किया[4]।

---

१. 'शाकं भिनत्ति वपुरस्थि निहन्ति नेत्रं वर्णं विनाशयति रक्तमथापि शुक्रम्।
प्रज्ञाक्षयं च कुरुते पलितं च नूनं हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥
शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देहविनाशनाय।
तस्माद् बुधः शाकविवर्जनं तु कुर्यात्तथाम्लेषु स एव दोषः॥' (भा. प्र.)

२. चतुर्थः शाकवर्गोऽयं पत्रकन्दफलाश्रयः। (च. सू. २७।१२४)

३. पत्रकन्दफलाश्रय इति प्राधान्येन, तेन पुष्पाद्याश्रयत्वमपि शाकवर्गस्य ज्ञेयम्। (चक्र०)

४. पुष्पं पत्रं फलं नालं कन्दाश्च गुरवः क्रमात्। (सु. सू. ४६।२९६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हरित और आहारयोगिवर्ग पृथक् नहीं रक्खे। इन द्रव्यों का पिप्पलादिगण (सु. सू. ४६।२२१) में समावेश कर दिया। वाग्भट ने भी इसीका अनुकरण किया। हरित द्रव्यों के लिए कुठेरादि गण (अ. हृ. सू. ६।१०६) बनाया।

चक्रपाणि ने अपने द्रव्यगुणसंग्रह में छः प्रकार का शाक कहा[1]। भावप्रकाश में भी यही उद्धृत किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भी यही व्यावहारिक क्रम अपनाया गया है।

सतीन, वास्तुक, चुच्चू, चिल्ली, बालमूलक, मण्डूकपर्णी और जीवन्ती शाकवर्ग में प्रशस्त हैं[3]। शाकों में जीवन्ती सर्वश्रेष्ठ तथा सर्षप निकृष्ट माना गया है[3]।

पत्रशाक

१. वास्तुक

कुल—वास्तूक-कुल (चिनोपोडिएसी–Chenodiaceae)।

नाम—लै०–चिनोपोडियम मुरेल (Chenopodium murale Linn.); सं०–वास्तूक, यवशाक (यह के खेतों में होने वाला शाक), क्षारपत्र; हि०–बथुआ खरथुआ; बं०–बेथुसाग; म०–चकवत; गु०–टांको, ता०–परपुक्किरइ; ते०–पप्पुकुरा; अं०–लैम्बस क्वार्टर्स (Lamb's quarters)।

जाति—श्वेत और रक्त दो प्रकार का है। बृहत्पत्र एवं लाल जाति को गौडवास्तूक कहते हैं। चिल्ली चिनोपोडियम ऐलबम (Chenopodium album Linn.) है।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में सर्वत्र १४ हजार फीट की ऊँचाई तक होता है। पश्चिमी हिमालय-क्षेत्र में यह शाक और बीजों के लिए उगाया जाता है।

रासायनिक संघटन—पौधे में एक उड़नशील तैल, कोलेस्टराल सदृश पदार्थ तथा अमोनिया होता हैं। बीजों से एक तैल निकलता है।

गुण-कर्म—दोनों प्रकार का बथुआ लघु, क्षारीय मधुर, कटुविपाक, दीपन, पाचन, भेदन, बल्य, त्रिदोषघ्न, कृमिघ्न तथा रक्तपित्त और अर्श में लाभकर है[4]।

---

१. पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा।
शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद् यथोत्तरम्॥ (द्र. सं. श२)

२. सतीनो वास्तुकश्चुच्चूचिल्लीमूलकपोतिकाः।
मण्डूकपर्णी जीवन्ती शाकवर्गे प्रशस्यते॥ (सु. सू. ४६)

३. वरा शाकेषु जीवन्ती सार्षपं त्ववरं परम्। (अ. सं. सू. ७।१६८)

४. त्रिदोषघ्नं भिन्नवर्चस्तु वास्तुकम्। (च. सू. २७।८८)
कटुर्विपाके कृमिहा मेधाग्निबलवर्धनः। सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तूकः रोचनः सरः॥
(सु. सू. ४६।२६०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२. उपोदिका

कुल—वास्तूक-कुल (चिनोपोडिएसी–Chenopodiacece)।

नाम—लै०–बैसेला रुब्रा (Basella rubra Linn.) सं०–उपोदिका, उपोदका, (जलीय प्रदेश में होने वाली) पोतकी, मालवा (मालव देश में होने वाली) हि०–पोई; ते०–बटसला; कन्न०–बसले; मल०–वसला; अं०–इण्डियन स्पिनक (Indian spinach).

स्वरूप—यह एव बहुवर्षायु वल्ली है। काण्ड और पत्र स्थूल–मांसल होते हैं।

जाति—यह दो प्रकार की होती है—१. हरितपत्रा २. लोहितपत्रा।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में प्रायः सर्वत्र होती है।

रासायनिक संघटन—पौधे में प्रोटीन १·२%, कैलशियम ०·१५%, लोह १·४ मि० ग्रा०/१०० ग्राम, विटामिन ए और बी, म्युसिलेज और रंजक द्रव्य होते हैं।

गुण–कर्म

उपोदकी गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, मधुर, कफवर्धक, वातपित्तशामक, अनुलोमन, बल्य, वृष्य, बृंहण, मदनाशक, निद्राजनन है[1]।

३. मारिष

कुल—अपामार्ग-कुल (अमरैण्टेसी–Amaranthaceae)।

वास्तूकद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं लघुशुक्रबलप्रदम्॥
सरं प्लीहास्रपित्तार्शःकृमिदोषत्रयापहम्।' (भा. प्र.)
भुक्त्वा वास्तुकशाकेन सतक्रं लवणं पिब।
हरीतकीं भुङ्क्ष्व राजन् नश्यन्तु व्याधयश्च ते॥ (शो.)

१. 'उपोदक्यूर्ध्वगा वल्ली पिच्छिलच्छदना स्थिरा।
वृत्तपत्रा रक्तदण्डा रक्तबीजा च सा स्मृता॥' (शि.)
'स्वादुपाकरसा वृष्या वातपित्तमदापहा।
उपोदिका सरा स्निग्धा बल्या श्लेष्मकरी हिमा॥' (सु. सू. ४६।२५९)
'मधुरा मधुरा पाके भेदिनी श्लेष्मवर्धिनी।
वृष्या स्निग्धा च शीता च मदघ्नी चाप्युपोदिका॥' (च. सू. २७।९१)
'पोतक्युपोदिका सा तु मालवाऽमृतवल्लरी।
पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत्॥
अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रदा रक्तपित्तजित्।
बलदा रुचिकृत् पथ्या बृंहणी तृप्तिकारिणी॥' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—लै०-अमैरण्टस ब्लिटम वेरा० ओलरेसिया[1] (Amaranthus blitum var. oleracea Duthie) सं०—मारिष, वाष्पक; हि०—मरसा; बं०—सादा नटे; म०—माठाची भाजी, भाजी, गु०—डांभो, ते०—टोटाकुड़ा; ता०—तण्डुकिरई।

स्वरूप—यह एक मांसल क्षुप है। पत्ते आयताकार बड़े होते हैं।

जाति—यह दो प्रकार का होता है—श्वेत और रक्त। रक्तमारिष (लाल साग) के पत्ते रक्तवर्ण होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसकी खेती भारत में प्रायः सर्वत्र की जाती है। बीज अप्रिल से अगस्त तक बोये जाते हैं और साग ३०-४० दिनों में तैयार हो जाता है। बीज भी भून कर खाये जाते हैं।

रासायनिक संघटन—पौधे में प्रोटीन २·९% तथा लोह १८·१८ मि० ग्रा०/१०० ग्रा० होता है।

गुण-कर्म—मारिष गुरु, मधुर, शीत, पित्तशामक, वातश्लेष्मकर, विष्टम्भी, तथा रक्तपित्तशामक है। लाल साग क्षारीय, सर, और अल्पदोष होता है[2]।

४. तण्डुलीय

कुल—अपामार्ग-कुल (Amaranthaceae)।

नाम—लै०-अमैरण्टस स्पाइनोसस (Amaranthus spinosus Linn), सं०—तण्डुलीय, मेघनाद; हि०—चौलाई; काँटा चौलाई; बं०—काँटा नटे; म०—काँटे माठ; गु०—कांटानु दांत; ते०—मुल्ला टोटा कुड़ा; ता०—मुल्लुक-किरई; कन्न०—मुल्लु हरिवे सोप्पु; मल०—कट्टु-मुल्लेन-कीरा।

स्वरूप—इसका कण्टकित क्षुप १-२ फुट ऊँचा, हरे से लाल या बैंगनी होता है। **पत्र**—½-४ इञ्च लम्बे, प्रायः लट्वाकार होते हैं। **पुष्प**—हरितवर्ण, अक्षीय या अन्त्य, गुच्छों में होते हैं।

भारत में प्रायः सर्वत्र खर-पतवार के रूप में पाया जाता है।

जाति—भावप्रकाश में तण्डुलीय के एक भेद पानीयतण्डुलीय या कच्चट का वर्णन किया है। A. paniculatus Linn. भी चौलाई के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी खेती विशेषतः पार्वत्य क्षेत्रों में होती है। इसके कोमल काण्ड एवं पत्र का

---

१. यह श्वेत मारिष है। रक्त मारिष अमैरण्टस गैंगेटिकस (Amaranthus gangeticus Linn.) है।

२. मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुद् गुरुः।
वातश्लेष्मकरो रक्तपित्तनुद् विषमाग्निजित्॥
रक्तमार्षो गुरुर्नाति सक्षारः मधुरः सरः।
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शाक में तथा बीजों का प्रयोग 'अनारदाना' के नाम से धान्य के रूप में प्रयोग होता है। इसी प्रकार A. caudatus Linn. के बीज रामदाना के नाम से प्रचलित हैं।

रासायनिक संघटन—इसमें आर्द्रता ८५, प्रोटीन ३, वसा ०·३, कार्बोहाइड्रेट ८·१, खनिज ३·६, कैलशियम ०·८, फास्फोरस ०·०५ प्रतिशत तथा लौह २२·६ मि० ग्रा०/१०० ग्रा० होता है।

गुण-कर्म—तण्डुलीय लघु, रूक्ष, मधुररस, मधुरविपाक, शीतवीर्य, कफपित्त-शामक, रक्तपित्तहर, मदघ्न, विषघ्न, मूत्रल तथा सारक है। रक्तपित्त (प्रदर, रक्तार्श आदि) में विशेष लाभकर है[१]।

५. पालङ्क्या

कुल—वास्तूक-कुल (चिनोपोडिएसी–Chenopodiaceae)।

नाम—लै०–स्पाइनेसिया ओलरेसिया (Spinacia oleracia Linn.); सं०–पालङ्क्या, पालङ्क्य; हि०–पालक, पलाकी; बं०–पालंग; ते०–डुम्पाबच्छलि; ता०–वसेलेकिरे; कन्न०–स्पाइनक सोप्पु; पं०–इस्फानख; अ०–इस्फानाख, फा०–इस्पानाख, अं०–स्पाइनक (Spinach).

स्वरूप—इसका वर्षायु पौधा १–२ फुट ऊँचा होता है। **पत्र**–चिकने, मांसल, लट्वाकार-आयताकार, पर्यायक्रम से होते हैं। **पुष्प**–एकलिंगी, हरिताभ, पुंपुष्प अन्त्य मंजरियों में तथा स्त्रीपुष्प अक्षीय गुच्छों में होते हैं। फल कड़े तथा बीज लम्बे होते हैं। शीतकाल में विशेष होता है।

भारत में सर्वत्र इसकी खेती होती है।

जाति—यह दो प्रकार का होता है:—एक में त्रिकोणाकार पत्र तथा कण्टकित बीज और दूसरे में गोल पत्ते तथा चिकने बीज होते हैं।

रासायनिक संघटन—पालक में विशेष रूप से खनिज पदार्थ, विटामिन ए, बी काम्लेक्स, सी और के पाये जाते हैं। बीजों से एक गहरे हरे रंग का तैल ३·१% निकलता है।

गुण-कर्म—पालक मधुर, रूक्ष, शीत, कफनाशक, विष्टम्भी होता है[२]।

---

१. रूक्षो मदविषघ्नश्च प्रशस्तो रक्तपित्तिनाम्।
मधुरो मधुरः पाके शीतलस्तण्डुलीयकः॥ (च. सू. २७।९४)
तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पितकफास्रजित्।
सृष्टमूत्रमलो रूच्यो दीपनो विषहारकः॥ (भा. प्र.)
तण्डुलीयो ह्यसृक्पित्तविषनुत् स्वादुपाकतः। (द्र. सं.)

२. पालङ्क्या बद्धविण्मूत्रा कफघ्नी तण्डुलीयवत्। (द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसमें सोआ मिला देने से इसका विष्टम्भ दोष दूर हो जाता है इसी कारण सोआ-पालक साग खाने की प्रथा है। रक्तपित्त तथा ग्रहणी में लाभकर है[1]।

६. कलम्बी

कुल—त्रिवृत्-कुल (कन्वॉल्वुलेसी–Convolvulaceae)।

नाम—लै०–आइपोमिया एक्वेटिका (Ipomoea aquatica Forsk.) सं०–कलम्वी, शतपर्वी, हि०–करमी; म०–नाड़ीशाक, गु०–नलनीभाजी, ते०–टुटिकुरा; ता०–वेल्लइक्कीरई; अं०–स्वाम्प कैबेज (Swamp cabbage).

स्वरूप—इसका जलीय पौधा आर्द्र भूमि, गढ़ों में फैला हुआ तथा पानी पर तैरता हुआ बहुवर्षायु (कभी-कभी वर्षायु) होता है। **काण्ड**–सुषिर, पर्वों पर मूलयुक्त होता है। **पत्र**–लट्वाकार–आयताकार या कुन्तवत् होते हैं। **पुष्प**–घंटिकाकार, १–२ इञ्च लम्बे, सफेद या बैंगनी; एकल या पञ्चक होते हैं। **फल**–अंडाकार, चिकना होता है जिसमें २–४, सघनरोमश बीज होते हैं।

यह वन्य एवं कृषिज दोनों रूपों में मिलता है।

रासायनिक संघटन—इसमें खनिज पदार्थ तथा विटामिन (विशेषतः ए) पाये जाते हैं।

गुण-कर्म—कलम्वी मधुर, स्तन्यजनन तथा शुक्रजनन है[2]।

७. चञ्चु

कुल—परुषक-कुल (टिलिएसी–Tiliaceae)

नाम—लै० कार्कोरस एक्युटैंगुलस (Corchorus acutangulus Linn.) सं०–चञ्चु, चुञ्चू; हि०–चेंच, बाफली; गु०–बहुफली; छुंछ।

स्वरूप—इसका प्रसरी या उत्थित क्षुप होता है। **पत्र**–लट्वाकार या आयताकार-लट्वाकार होते हैं। **फल**–½–१ इञ्च लम्बा, षट्कोण होता है जिसके अग्रभाग में ३–४ चंचु होते हैं। पुष्प और फल वर्षा से हेमन्त तक लगते हैं।

यह भारत में सर्वत्र होता है।

जाति—इसके अनेक भेद होते हैं। इसीकी एक प्रजाति (C. capsularis Linn.) कालशाक नाम से प्रसिद्ध है। दूसरी प्रजाति (C. olitorius Linn.) पट्टशाक (पटुआ) कहलाता है। भावप्रकाश में दोनों के गुणकर्म निर्दिष्ट हैं[3]।

---

१. रक्तपित्तहरं ग्राहि ज्ञेयं संतर्पणं परम्। (रा. नि.)

२. कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी। (भा. प्र.)
कलम्बिका गुरुर्वृष्या कषाया स्तन्यशुक्रदा॥ (द्र. सं.)

३. कालशाकं सरं रुच्यं वातकृत् कफशोफहृत्।
बल्यं रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम्॥
नाडीको (पट्टशाकः) रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भी वातकोपनः। (भा. प्र.)
चरक ने कालशाक को कटु, उष्ण और दीपन कहा है। (च. सू. २७।९१)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म—चञ्चु मधुर, पिच्छिल, शीत, सर, रोचन, त्रिदोषहर, बल्य, वृष्य और मेध्य है[१]।

८. लोणिका

कुल—लोणिका-कुल (पोर्टुलेकेसी–Portulacaceae)

नाम—लै०–पोर्टुलेका क्वाड्रिफिडा (Portulaca quadrifida Linn.) सं०–लोणिका, लोणी; हि०–नोनी; म०–भुइं घोल; गु०–लुणी; ते०–पविलि; ता०–चिन्नापारपुक्किरई; कन्न०–गुनीसोप्पु; मल०–नीलाकीरा।

स्वरूप—इसका छोटा प्रसरी मांसल वर्षायु क्षुप होता है। पत्ते अंडाकार या लट्वाकार, ३–६ मि. मी. लम्बे होते हैं। **पुष्प**–पीतवर्ण, एकल, अन्त्य होता है। **फल**–शंक्वाकार तथा बीज उभारयुक्त होते हैं।

यह भारत के उष्ण प्रदेशों में होता है।

जाति—इसकी एक बड़ी जाति बृहत् लोणिका (घोटिका, हि०–कुलफा) (P. oleracea Linn) है जिसके वन्य और ग्राम्य दो प्रकार होते हैं। ये क्रमशः Var. oleracea और Var. sativa DC. हैं। यह ऑक्जेलिक एसिड की उपस्थिति के कारण स्वाद में अम्ल होती है।

गुण-कर्म—लोणिका रूक्ष, गुरु, लवण, वातश्लेष्महर, दीपन, अर्शोघ्न, विषघ्न है। बृहत् लोणिका अम्ल, सर, उष्ण, वातकर, कफपित्तशामक है तथा स्वरभेद, व्रण, गुल्म, कास-श्वास, प्रमेह, शोथ और नेत्ररोग में उपयोगी है।[२]

९. चांगेरी

कुल—चांगेरी-कुल (ऑक्सेलिडेसी–Oxalidaceae).

नाम—लै०–ऑक्सेलिस कार्निकुलेटा (Oxalis corniculata Linn.)

गुण-कर्म—चांगेरी[३] अम्ल, रूक्ष, उष्णवीर्य, कफवातशामक, दीपन और

---

१. चञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वाद्वी दोषत्रयापहा।
धातुपुष्टिकरी बल्या मेध्या पिच्छिलका स्मृता॥ (भा. प्र.)
लघुः पाके च जन्तुघ्नः पिच्छिलो व्रणिनां हितः।
कषायमधुरो ग्राही चुच्चूस्तेषां त्रिदोषहा॥ (सु. सू. ४६)

२. लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वातश्लेष्महरी पटुः।
अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्निविषनाशिनी॥
घोटिकाऽम्ला सरा चोष्णा वातकृत् कफपित्तहृत्।
वाग्दोषव्रणगुल्मघ्नी श्वासकासप्रमेहनुत्॥
शोथे लोचनरोगे च हिता तज्ज्ञैरुदाहृता। (भा. प्र.)

३. विवरण द्वितीय भाग में देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ग्राही तथा ग्रहणी और अर्श के लिये विशेष लाभकर है।[1]

१०. चुक्र

कुल—चुक्र-कुल (पौलिगोनेसी–Polygonaceae)।

नाम—लै०–रुमेक्स वेसिकेरियस (Rumex vesicarius Linn.); सं०–चुक्र, चुक्रिका, पत्राम्ला (अम्लपत्र होने से); शतवेधनी (तीक्ष्ण); हि०–चूका; बं०–चूकपालङ्; म०–चाकवत; गु०–चुको, खाटी भाजी; ता०–शुकानकिराई; ते०–शुकककुराकु; अ०–हुम्माज; फा०–तुर्शः; अं०–कण्ट्री सोरेल (Country sorrel)।

स्वरूप—यह वर्षायु **क्षुप** ६–१२ इञ्च ऊँचा होता है। **पत्र**–अंडाकृति, लगभग १–३ इञ्च लम्बे तथा ३–५ सिराओं से युक्त होते हैं। **फल**–छोटे, श्वेत या रक्ताभ होते हैं जिनमें छोटे-छोटे बीज होते हैं। बीजों को यूनानी वैद्यक में 'तुख्म हुम्माज' या 'तुख्म तुर्शः' कहते हैं। पत्तियों का साग बना कर खाते हैं।

जातियाँ—इसकी अनेक प्रजातियाँ होती हैं। इसकी एक प्रजाति हिमालय प्रदेश में होती है जिसे वहाँ 'चुलमोरा' (Rumex hastatus D. Don.) कहते हैं। इसके पत्र भी अम्ल और त्रिकोणाकार होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह सर्वत्र होता है विशेषकर पार्वत्य प्रदेश तथा उसकी तराई में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—ताजे क्षुप में ९२ प्रतिशत जल होता है। सूखे क्षुप में ईथर एक्स्ट्रैक्ट ४.६२%, अलब्युमिनायड १९.२७%, कार्बोहाइड्रेट ५७.८६%, काष्ठभाग १०.५०% तथा क्षार १०.७५% होते हैं। इसके मूल में रुमिसिन (Rumicin) तथा लेपाथिन (Lapathin) नामक दो तत्त्व होते हैं जिनके गुणधर्म क्राइसोफेनिक अम्ल के समान होते हैं।

गुण-कर्म—चुक्र लघु, अम्ल, उष्णवीर्य, वातशामक, कफपित्तवर्धक, रोचन, दीपन तथा भेदन है। इसके बीज शीत और पिच्छिल हैं। इसका शाक वातगुल्म में पथ्य है[2]।

---

१. दीपनी चोष्णवीर्या च ग्राहिणी कफमारुते।
प्रशस्यतेऽम्लचांगेरी ग्रहण्यर्शोहिता च सा॥ (च. सू. २७।९२)
चांगेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफवातनुत्।
पित्तलाऽम्ला ग्रहण्यर्शःकुष्ठातीसारनाशिनी॥ (भा. प्र.)

२. चुक्रं स्यादम्लपत्रं तु लघूष्णं वातगुल्मनुत्।
रुचिकृद् दीपनं पथ्यमीषत् पित्तकरं स्मृतम्॥ (रा. नि.)
चुक्रा स्वम्लतरा स्वाद्वी वातघ्नी कफपित्तकृत्।
रुच्या लघुतरा पाके वृन्ताकेनातिरोचनी॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

११. हिलमोचिका

कुल—भृङ्गराज-कुल (कम्पोजिटी–Compositae)।

नाम—लै०-एनहाइड्रा फ्लक्चुएन्स (Enhydra fluctuans Lour.) सं०-हिलमोचिका; हिलमोची, जलब्राह्मी; हि०-हरकुच; बं०-हिंगचा, हिलञ्च।

स्वरूप—यह एक प्रसरी क्षुप है जो बिहार, बंगाल और आसाम के जलीय प्रदेशों में होता है। **पत्र**-अवृन्त, अभिमुख, रेखाकार-आयताकार, १–३ इञ्च लम्बे, किंचित् तिक्त होते हैं।

रासायनिक संघटन—सूखे पौधे से एक सुगन्धित तैल (०·२१%), स्टिग्मास्टेरॉल (०·०५%) तथा एक तिक्त घटक प्राप्त होता है।

गुण-कर्म—यह तिक्तरस, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, भेदन और कुष्ठघ्न है[1]।

१२. सुनिषण्णक

कुल—सुनिषण्णक-कुल (मार्सिलिएसी–Marsileaceae)

नाम—लै०–मार्सिलिया माइनुटा (Marsilea minuta Linn.). सं०-सुनिषण्णक, चतुष्पत्री, हि०-चौपतिया, सुनसुनिया; बं०-सुसनी शाक।

यह जलीय स्थानों में होता है।

गुण-कर्म—सुनिषण्णक लघु शीतवीर्य, त्रिदोषघ्न, ग्राही चक्षुष्य तथा मेध्य है। यह विशेषतः नेत्ररोग, रक्तपित्त, अर्श तथा मानसरोगों में पथ्य है[2]।

१३. पत्रगोभी

कुल—सर्षप-कुल (क्रुसीफेरी–Cruciferae)

नाम—लै०-ब्रासिका ओलेरसिया वेरा. कैपिटेटा (Brassica oleracia Var. capitata Linn.); सं०-पत्रगोभी; हि०-पातगोभी, बन्दगोभी।

आजकल यह सर्वत्र उगायी जाती है।

रासायनिक संघटन—पत्रगोभी में आर्द्रता ९०·२, प्रोटीन १·८, वसा ०·१, सूत्र १·०, कार्बोहाइड्रेट ३·३, खनिज पदार्थ ०·६, कैलशियम ०·०३, फास्फरस ०·५% तथा लोह ०·८ मि० ग्रा०; विटामिन ए, बी और सी होते हैं।

---

१. हिलमोची तु कुष्ठघ्नी भेदनी कफपित्तनुत्। (द्र. सं.)
शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिलमोचिका। (भा. प्र.)
जलब्राह्मी सरा शोफकुष्ठपित्तकफप्रणुत्। (कै. नि.)

२. अविदाही त्रिदोषघ्नः संग्राही सुनिषण्णकः। (सु. सू. ४६)
सुनिषण्णो हिमो ग्राही लघुः स्निग्धस्त्रिदोषहृत्।
अविदाही रसे स्वादुः कषायो वह्निदीपनः॥
व्रण्यो ग्राही विषघ्नः स्यात् मेध्यो निद्राप्रदः परम्।
चक्षुष्यस्तिमिरे रक्तपित्ते चार्शःसु शस्यते॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण-कर्म—पत्रगोभी गुरु, मधुर, रुचिकर, दुर्जर और सारक होता है[1]।

१४. मूलकंदपत्र

मूली[2] के कोमल पत्ते लघु, उष्ण, रुचिकर तथा पाचन होते हैं। स्नेह (तैल या घी) में पकाने पर त्रिदोषशामक अन्यथा कफपित्तकारक होते हैं[3]।

१५. द्रोणपुष्पीपत्र

द्रोणपुष्पी (गूमा) का पत्र गुरु, रूक्ष, कटु-मधुर, पित्तवर्धक, भेदन तथा कामला, शोथ, प्रमेह और ज्वर में लाभकर है[4]।

१६. यवानीपत्र

यवानी (अजवायन) के पत्ते का शाक लघु, कटुतिक्त, उष्णवीर्य, वातकफशामक, पित्तवर्धक, रुचिकर तथा शूलनाशक है[5]।

१७. चक्रमर्दपत्र

चक्रमर्द (चकवड़) के पत्ते लघु, अम्लरस, कफवातशामक तथा दद्रु, कण्डू आदि चर्मरोग, कास-श्वास और क्रिमिरोग में लाभकर हैं[6]।

१८. सेहुण्डपत्र

सेहुण्ड का पत्र तीक्ष्ण, रेचन है तथा आध्मान, गुल्म, शूल, उदररोग एवं शोथ में लाभप्रद है[7]।

१९. पर्पटपत्र

पर्पट (पित्तपापड़ा) के पत्ते तिक्त, शीतवीर्य, पित्तशामक, ग्राही, दाहप्रशमन

---

१. पत्रगोभी सरा रुच्या वातला मधुरा गुरुः। (शा. नि.)

२. इसका वर्णन हरितवर्ग में देखें।

३. पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम्। स्नेहसिद्धं त्रिदोषघ्नमसिद्धं कफपित्तकृत्॥ (भा. प्र.)

४. द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत्। भेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु॥ (भा. प्र.)

५. यवानीशाकमाग्नेयं रुच्यं वातकफप्रणुत्। उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघु शूलहृत्॥ (भा. प्र.)

६. दद्रुघ्नपत्रं दोषघ्नमम्लं वातकफापहम्। कण्डूकासक्रिमिश्वासदद्रुकुष्ठप्रणुल्लघु॥ (भा. प्र.)

७. सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रेचनं हरेत्।
आध्मानाष्ठीलिकागुल्मशूलशोथोदराणि च॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हैं तथा ज्वर, तृष्णा, कफपैत्तिक रोग तथा रक्तविकार में उपयोगी हैं[१]।

२०. गोजिह्वापत्र

गोजिह्वा के पत्र लघु, कुष्ठ, प्रमेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र और ज्वर में लाभकर हैं[२]।

२१. पटोलपत्र

पटोल (परवल) की पत्ती लघु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पित्तशामक, दीपन-पाचन, वृष्य तथा ज्वर, कास और क्रिमि में हितकर है[३]।

२२. गुडूचीपत्र

गुडूची (गिलोय) का पत्र लघु कषाय-कटुतिक्त, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, सर्वज्वरहर, रसायन, बल्य, संग्राही, त्रिदोषघ्न है तथा ज्वर, दाह, तृष्णा, प्रमेह, वातरक्त, कुष्ठ, कामला, पाण्डु में लाभकर है[४]।

२३. कासमर्दपत्र

कासमर्द (कसौंदी) का पत्र विशेषतः कफवातशामक, कण्ठशोधन तथा कासहर है[५]।

२४. सर्षपपत्र

सर्षप (सरसों) के पत्ते का शाक गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, लवण, क्षारीय, अम्लविपाक, विदाही, उष्णवीर्य और त्रिदोषकोपक होता है। यह सभी शाकों में निन्दित माना गया है।[६]

---

१. पर्पटो हन्ति पित्तास्रज्वरतृष्णाकफभ्रमान्।
संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद् वातलो लघुः॥ (भा. प्र.)

२. गोजिह्वा कुष्ठमेहास्रकृच्छ्रज्वरहरी लघुः। (भा. प्र.)

३. पटोलपत्रं पित्तघ्नं दीपनं पाचनं लघु।
स्निग्धं वृष्यं तथोष्णं च ज्वरकासक्रिमिप्रणुत्॥ (भा. प्र.)

४. गुडूचीपत्रमाग्नेयं सर्वज्वरहरं लघु। कषायं कटु तिक्तं च स्वादुपाकं रसायनम्॥
बल्यमुष्णं च संग्राहि हन्याद् दोषत्रयं तृषाम्।
दाहप्रमेहवातासृक्कामलाकुष्ठपाण्डुताः ॥ (भा. प्र.)

५. कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत्।
मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम्॥
विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु। (भा. प्र.)

६. कटुकं सार्षपं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु। अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषकृत्॥
सक्षारलवणं तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम्। (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२५. पूतिहा (पुदीना)

पूतिहा (पुदीना) की पत्ती रुचिकर, दीपन-पाचन, अनुलोमन है तथा आध्मान, छर्दि, शूल और कृमि में लाभकर है[1]।

२६. निम्ब

निम्ब की पत्ती का शाक कफपित्तशामक तथा कुष्ठघ्न है और छर्दि, हृल्लास, व्रण तथा रक्तविकार में उपयोगी है[2]।

२७. पुनर्नवा

पुनर्नवा का शाक उष्णवीर्य, सारक तथा रसायन है और कफवातिक विकार, अर्श, शोथ और उदररोग में लाभकर है[3]। शोथ में विशेष प्रशस्त है[4]।

२८. न्यग्रोधादि पल्लव

न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष आदि के पल्लव (कोमल पत्ते) कषाय, शीतवीर्य तथा स्तम्भन हैं और रक्तपित्त तथा अतिसार में पथ्य हैं[5]।

२९. चिरबिल्व

चिरबिल्व के अंकुर (पुञ्ज) सारक, दीपन तथा कफवातशामक हैं और गुल्मरोग में लाभकर हैं[6]।

३०. चणक

चणक (चने) का शाक मधुराम्ल, मधुरविपाक, दुर्जर, पित्तशामक दन्तशोथ को दूर करने वाला है[7]।

---

१. पूतिहा कटुरुष्णश्च रोचनो दीपनो लघुः।
हन्ति वातकफाध्मानशूलच्छर्दिक्रिमींस्तथा ॥ (स्व.)

२. निम्बः पित्तकफच्छर्दिव्रणहृल्लासकुष्ठनुत्। (द्र. सं.)

३. पुनर्नवायुगं चोष्णवीर्यं रसायनं सरम्। कफानिलार्शदुर्नामश्वयथूदरापहम् ॥ (द्र. सं.)

४. तेषु पौनर्नवं शाकं विशेषाच्छोफनाशनम्। (सु. सू. ४६)

५. न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षपद्मादिपल्लवाः।
कषायाः स्तम्भनाः शीताः हिताः पित्तातिसारिणाम् ॥ (च. सू. २७)

६. दीपनाः कफवातघ्नाश्चिरबिल्वाङ्कुराः सराः। (द्र. सं.)

७. स्वादुपाकरसं शाकं दुर्जरं हरिमन्थजम्। (सु. सू. ४६)
हृद्यं चणकशाकं स्याद् दुर्जरं कफवातकृत्।
अम्लं विष्टम्भजनकं पित्तनुद् दन्तशोथहृत् ॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३१. कलाय

कलाय (खेसारी) का शाक मधुर, रूक्ष, भेदन तथा अत्यन्त वातल होता है[1]।

३२. सतीन

सतीन (मटर) का शाक ईषत् तिक्त, कटुविपाक, त्रिदोषघ्न विशेषतः कफपित्तशामक होता है[2]।

३३. काकमाची

काकमाची (मकोय) का शाक ईषत् तिक्त, नात्युष्णशीत, त्रिदोषहर, भेदन एवं कुष्ठघ्न होता है[3]। यह यकृत्विकार, शोथ तथा रक्त के विकारों में परम पथ्य है।

पुष्पशाक

३४. अगस्त्य

अगस्त्य के फूलों का शाक तिक्त-कषाय, कटुविपाक, नातिशीतोष्ण तथा त्रिदोषघ्न है। यह विशेषतः चातुर्थिक ज्वर, नक्तान्ध्य, कास तथा क्षय में उपयोगी है[5]।

३५. शाल्मली

शाल्मली (सेमल) के फूल का शाक मधुर-कषाय, मधुरविपाक, शीतवीर्य, रक्तपित्तशामक तथा वातवर्धक है। सेमल फूलों का शाक घी और सेंधा नमक

---

१. भेदनं मधुरं रूक्षं कलायमतिवातलम्। (सु. सू. ४६)
कलायपत्रं मधुरं रूक्षं भेदि च वातलम्। (द्र. सं.)

२. सतीनकं त्रिदोषघ्नं कटुपाकं सतिक्तकम्। (द्र. सं.)
अस्य त्रिदोषहरत्वेऽपि विशेषात् कफपित्तहरत्वं ज्ञेयम्। (शिवदाससेन)

३. नात्युष्णशीतं कुष्ठघ्नं काकमाच्यास्तु तद्विधम्। (सु. सू. ४६)
त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रसायनी।
नात्युष्णशीतवीर्या च भेदनी कुष्ठनाशिनी॥ (द्र. सं.)

४. पत्रगोभी स्वरा रुच्या वातला मधुरा गुरुः। (शा. नि.)

५. 'वृषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटुविपाकानि क्षयकासापहानि।'
'आगस्त्यं नातिशीतोष्णं नक्तान्ध्यानां प्रशस्यते।' (सु. सू. ४६)
'अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्थिकनिवारणम्।
नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च॥
पीनसश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम्।' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

से सिद्ध कर सेवन करने से प्रदररोग में अतिशय लाभ होता है[1]।

३६. कदली

कदली (केला) के फूल मधुरकषाय, गुरु, स्निग्ध, वातपित्तशामक तथा रक्तपित्त और क्षय में पथ्य होते हैं[2]।

३७. शिग्रु

शिग्रु (सहिजन) के फूल कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कफवातशामक, कृमिघ्न एवं शोथहर होते हैं। मधुशिग्रु के फूल चक्षुष्य एवं रक्तपित्तशामक हैं[3]।

३८. कोविदार-काञ्चनार

कोविदार (कोइलार) तथा काञ्चनार (कचनार) के फूल ग्राही तथा रक्तपित्त में विशेषतः पथ्य हैं[4]।

३९. कुमुद

कुमुद (कोई) के फूल मधुर, स्निग्ध, पिच्छिल, शीतवीर्य होते हैं। कमल के फूल किंचित् तिक्त, मधुर, शीतवीर्य तथा कफपित्तशामक होते हैं[5]।

४०. पुष्पगोभी

कुल—सर्षप-कुल (क्रुसिफेरी–Cruciferae)।

---

१. रसे पाके च मधुरं कषायं शीतलं गुरु। कफपित्तास्रजिद् ग्राहि वातलं च प्रकीर्तितम्॥
शाल्मलीपुष्पशाकं तु घृतसैन्धवसाधितम्। प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यं न च संशयः॥
(भा. प्र.)

२. कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु। वातपित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत्॥
(भा. प्र.)

३. शिग्रोः पुष्पं तु कटुकं तीक्ष्णोष्णं स्नायुशोथनुत्।
कृमिहृत् कफवातघ्नं विद्रधिप्लीहगुल्मजित्॥
मधुशिग्रोस्तथाविहितं रक्तपित्तप्रसादनम्। (भा. प्र.)

४. शणस्य कोविदारस्य कर्बुदारस्य शाल्मलेः।
पुष्पं ग्राहि प्रशस्तं च रक्तपित्ते विशेषतः॥ (च. सू. २६)

५. 'मधुरं पिच्छिलं स्निग्धं कुमुदं ह्लादि शीतलम्।
'सतिक्तं मधुरं शीतं पद्मं पित्तकफापहम्॥ (सु. सू. ४६)
'कुमुदोत्पलनालास्तु सपुष्पाः सफलाः स्मृताः।
शीताः स्वादुकषायाश्च कफमारुतकोपनाः॥ (च. सू. २४)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—लै०—ब्रासिका ओलेरेसिया वेरा: बोट्राइटिस (Brassica oleracea var. botrytis Linn.); हि०—फूलगोभी।

पुष्पगोभी (फूलगोभी) का शाक गुरु, उष्ण मधुर, बल्य, ग्राही, कफवातशामक है[1]।

फूलगोभी में आर्द्रता ८९·४, प्रोटीन ५·३, वसा ०·४, कार्बोहाइड्रेट ५·३, खनिज पदार्थ १·४, कैलशियम ०·०३, फास्फरस ०·०६ प्रतिशत तथा लौह १·३ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। इनके अतिरिक्त विटामिन ए, बी[1] तथा सी पाये जाते हैं।

फलशाक

४१. कूष्माण्ड

कूष्माण्ड (पेठा) बाल अवस्था में पित्तशामक, मध्यावस्था में कफकारक तथा पक्व (प्रौढ़) होने पर लघु क्षारीय और उष्ण हो जाता है। यह सर्वदोषहर, मूत्रल, सारक, हृद्य तथा रक्तपित्त एवं मानस विकारों में विशेष लाभकर है। यह वल्लीफलों में श्रेष्ठ माना गया है[2]।

४२. अलाबू

कुल—कोशातकी-कुल (कुकुर्बिटेसी–Cucurbitaceae)।

नाम—लै०—लैगिनेरिया सिसरेरिया (Lagenaria siceraria (Mol.) Standl.); सं०—अलाबू, तुम्बी; हि०—कद्दू, लौकी, लौआ।

स्वरूप—इसकी विस्तृत आरोहिणी या प्रसरणशील रोमश लता होती है। काण्ड–पञ्चकोणीय, तन्तु द्विविभक्त, पत्र–दीर्घवृन्त, पञ्चधा खण्डित। पुष्प–बड़े,

---

१. पुष्पगोभी गुरुः स्वाद्वी कफवातहरी मता।
ग्राहिणी बल्या चोष्णा दुर्जरा च प्रकीर्तिता॥ (स्व.)

२. पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डं बालं मध्यं कफावहम्।
पक्वं लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्तिशोधनम्॥
सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतोविकारिणाम्। (सु. सू. ४६)
'मूत्राघातहरं प्रमेहशमनं कृच्छ्राश्मरीच्छेदनं,
विण्मूत्रग्लपनं तृषार्तिशमनं जीर्णाङ्गपुष्टिप्रदम्।
वृष्यं स्वादुतरं स्वरोचकहरं बल्यं च पित्तापहं
कूष्माण्डं प्रवरं वदन्ति भिषजो वल्लीकफलानां पुनः॥ (रा. नि.)
'वल्लीफलानां प्रवरं कूष्माण्डं वातपित्तजित्। बस्तिशुद्धिकरं वृष्यम्—
(सु. सू. ७।११४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्वेत, एकल, द्विधैकलिंगी या अद्विधैकलिंगी होते हैं। फल–बड़े, गोल या लम्बे (पांच फीट तक), पकने पर काष्ठीय हो जाते हैं। बीज–अनेक, लम्बे, सफेद, किनारे पर परिखायुक्त होते हैं।

यह ग्राम्य और वन्य दो प्रकार का होता है। ग्राम्य का फल मधुर, शाकोपयोगी तथा वन्य जाति का फल तिक्त, औषधोपयोगी होता है जो इक्ष्वाकु या कटुतुम्बी के नाम से प्रसिद्ध है।

रासायनिक संघटन—कद्दू के फल में आर्द्रता ९६·३, प्रोटीन ०·२, वसा ०·१, कार्बोहाइड्रेट २·९, खनिज पदार्थ ०·५, कैलशियम ०·०२ तथा फास्फरस ०·०१ प्रतिशत होते हैं। खनिजों में लौह तथा आयोडिन होते हैं। विटामिनों में बी तथा सी पर्याप्त प्रमाण में होते हैं। बीजों से हलके पीले रंग का एक तैल ४५% निकलता है।

गुण-कर्म—कद्दू गुरु, रूक्ष, शीत और सारक है। यह बल्य, वृष्य, बृंहण, हृद्य तथा कफपित्तशामक है[1]।

४३. महाकोशातकी

Luffa cylindrica (Linn.) M. J. Roem.

हि०—नेनुआ, घियातरोई

महाकोशातकी (नेनुआ) के फल में आर्द्रता ९३·१६, प्रोटीन १·२१, वसा ०·२३, कार्बोहाइड्रेट २·९२, सूत्र १·९५ और राख ०·४९ प्रतिशत; कैलशियम ३६ मि० ग्रा०, फास्फरस १९ मि० ग्रा०, लोह १·१ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम; विटामिन ए, बी और किंचित् सी; कोलिन (१०·४५/ मि० ग्रा०/ ग्रा०) तथा फाइटिन पाये जाते हैं। इसके बीजों से गहरे लाल रंग का एक तैल निकलता है। बीजों में एक तिक्त घटक भी पाया जाता है।

गुण-कर्म—इसका शाक स्निग्ध, वातशामक तथा रक्तपित्तहर होता है[2]।

४४. कोशातकी

Luffa acutangula (Linn.) Roxb.

हि०—तरोई, झिंगा, खर्रो

रासायनिक संघटन—इसके कोमल फलों में आर्द्रता ९५·४, प्रोटीन ०·५, वसा ०·१, कार्बोहाइड्रेट ३·७, खनिज पदार्थ ०·३, कैलशियम ०·०४, फास्फरस

---

१. वर्चोभेदीन्यलाबूनि रूक्षशीतगुरूणि च। (च. सू. २७)
मिष्टतुम्बीफलं हृद्यं पित्तं श्लेष्मापहं गुरु। वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्धनम्॥ (भा. प्र.)

२ महाकोशातकी स्निग्धा रक्तपित्तानिलापहा। (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

०·०४ प्रतिशत; लौह १·६ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। इसके अतिरिक्त, विटामिन ए, आयोडिन तथा फाइटिन भी होते हैं। पके बीजों से लगभग २० प्रतिशत हलके भूरे रंग का तैल निकलता है। पके बीजों में कुकर्बिटेसिन नामक तिक्त घटक भी पाये जाते हैं।

गुण-कर्म—कोशातकी का फल शाक मधुर, शीत, अनुलोमन, पित्तशामक, तथा ज्वरकास आदि में उपयोगी होता है[1]।

वक्तव्य—इसी की एक जाति 'सतपुतिया' (सप्तपुत्री) नाम से प्रचलित है[2]।

४५. कर्कटी

Cucumis melo var. Utilissimus Duthie & Fuller.

सं०—एर्वारु हि०—ककड़ी

कर्कटी (ककड़ी) गुरु, रूक्ष, शीतवीर्य, मधुर, ग्राही, पित्तशामक तथा कफवातवर्धक है। पक्व कर्कटी किंचित् उष्ण और दीपन होती है[3]।

४६. त्रपुस

Cucumis sativus Linn.

हि०—खीरा

रासायनिक संघटन—खीरे के फल में आर्द्रता ९६·४, प्रोटीन ०·४, वसा ०·१, कार्बोहाइड्रेट २·८, खनिज द्रव्य ०·३, कैलशियम ०·०१ तथा फास्फरस ०·०३ प्रतिशत; लौह १·५ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम तथा विटामिन बी[1] तथा सी होते हैं। इसके बीजों में प्रोटीन ४२ तथा वसा ४२·५ प्रतिशत होता है तथा इनसे एक हलके पीले रंग का तैल निकलता है।

गुणकर्म—खीरे का कोमल फल मधुर-शीत तथा पित्तशामक होता है तथा प्रौढ़ फल उष्ण और पितवर्धक होता है। ये गुरु एवं विष्टम्भी होते हैं। खीरे का

---

१. कोशातकी सरा शीता मधुरा कफवातकृत्।
पित्तघ्नी ज्वरकासादौ मन्दाग्नीनां च शस्यते ॥ (स्व.)

२. सप्तपुत्री शीतला स्याद् हृद्या स्निग्धा च पित्तनुत्।
स्वाद्वी किंचित् कफकरी वातप्रशमनी मता ॥ (स्व.)

३. कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः।
रुच्या पित्तहरा साम्ला पक्वा तृष्णाग्निपित्तकृत् ॥ (भा. प्र.)
एर्वारुकं च सपक्वं दाहतृष्णाक्लमार्त्तिनुत्। (च. सू. २७)
एर्वारुकं सकर्कारु संपक्वं कफवातकृत्।
सक्षारं मधुरं रुच्यं दीपनं नातिपित्तलम् ॥ (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बीज शीत एवं अतिमूत्रल होता है तथा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है[1]।

खीरे की सब्जी विशेषतः रायता बनाते हैं।

४७. कर्चरी

Cucumis species

हि०—कचरी, गुर्मी

स्वरूप—कचरी के अण्डाकार कच्चे फलों के अनुप्रस्थ टुकड़े काट कर सुखा देते हैं। ये सूखे टुकड़े कचरी या गुर्मी के नाम से बिकते हैं। ये स्वाद में तिक्त और किंचित् अम्ल होते हैं। इन्हें घी में भून कर खाते हैं। ज्वर के बाद पथ्य में दिया जाता है[2]।

यह विशेषकर बिहार के पलामू जिले में होता है और बिहार में इसका विशेष प्रचलन है।

गुणकर्म—कचरी रस में तिक्त, किंचित् अम्ल, लघु, उष्णवीर्य, त्रिदोषशामक है। इसका प्रयोग ज्वर, कास तथा वातविकारों में किया जाता है।

४८. चिचिण्ड

कुल—कोशातकी-कुल (Cucurbitaceae)

नाम—लै०-ट्राइकोसैन्थस ऐंग्विना (Trichosanthus anguina Linn.)

स्वरूप—इसकी लता लम्बी प्रसरणशील होती है। **काण्ड**—कोमल तथा परिखायुक्त होता है। तन्तु द्विधा या त्रिधा विभक्त होते हैं। **पत्र**—५–८ सें० मी० लम्बे, खण्डित, अनेक आकार होते हैं, पत्राधार गहरा हृदयाकृति होता है। **पुष्प**—पीतवर्ण; पुंपुष्प—अक्षीय मञ्जरियों में तथा स्त्रीपुष्प एकल होते हैं। **फल**—४ मीटर तक लम्बे और ७·५ सें० मी० तक मोटे, मुड़े हुए, दोनों सिरों पर पतले, प्रायः सफेद धारियों से युक्त (श्वेतराजि), तरुणावस्था में हरे और पकने पर चमकीले

---

१. त्रपुसैर्वारुके स्वादुगुरुविष्टम्भिशीतले।
सुखप्रियं च रूक्षं च मूत्रलं त्रपुसं त्वति॥ (च. सू. २७)
बालं सुनीलं त्रपुसं तेषां पित्तहरं स्मृतम्।
तत्पाण्डु कफकृज्जीर्णमम्लं वातकफापहम्॥ (सु. सू. ४६)
त्रपुसं लघु नीलं च नवं तृट्क्लमदाहजित्।
स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम्॥
तत् पक्वमम्लमुष्णं स्यात् पित्तलं कफवातनुत्।
तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित्॥ (भा. प्र.)

२. कर्चरी तु रसे तिक्ता साम्ला लघ्वी त्रिदोषनुत्।
सोष्णा कासे ज्वरे वातविकारे च प्रशस्यते॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नारंगी रंग के हो जाते हैं। ये देखने में साँप के सदृश प्रतीत होते हैं। (Snake-gourd)।

दक्षिण भारत में इसका विशेष प्रचलन है।

रासायनिक संघटन—इसके फलों में आर्द्रता ९४.६, प्राटीन ०.५, वसा ०.३; कार्बोहाइड्रेट ४ और खनिज पदार्थ ०.५ ग्राम प्रति १०० ग्राम होते हैं। बीजों से रक्ताभ भूरे रंग का एक तैल ३२ प्रतिशत निकलता है।

गुणकर्म—चिचिण्ड वातपित्तशामक, रुचिकर, बल्य है तथा शोषरोगियों के लिए विशेष हितकर है। प्रायः इसके गुणकर्म पटोल के सदृश किन्तु कुछ न्यून होते हैं[1]।

४९. कारवेल्ल

Momordica charantia Linn.

हि०—करैला

इसकी छोटी जाति कारवेल्ली कहलाती है।

गुणकर्म—करैले का फल लघु, तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन तथा भेदन होता है। कफपित्त का शमन करता है किन्तु उष्ण होने के कारण वात को बढ़ाता नहीं। यह ज्वर, प्रमेह, पित्तविकार, रक्तविकार, कृमि, कास-श्वास में विशेष रूप से पथ्य है[2]।

५०. पटोल

Trichosanthes dioica Roxb.

हि०—परवल, परोरा

इसकी एक छोटी जाति पटोलिका (परोरी) होती है।

गुणकर्म—परवल लघु, स्निग्ध, उष्ण, दीपन, पाचन, हृद्य तथा वृष्य होता है। यह कास, ज्वर, क्रिमि तथा त्रिदोषज विकारों में उपयोगी होता है[3]।

---

१. चिचिण्डो वातपित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः।
शोषिणेऽतिहितः किञ्चिद् गुणै न्यूनः पटोलतः॥ (भा. प्र.)

२. कारवेल्लं सकटुकं कटुपाकमवातलम्। दीपनं भेदनं तिक्तमवृष्यमहिमं लघु॥
हन्त्यरोचकपित्तास्रकफपाण्डुव्रणक्रिमीन्। श्वासकासप्रमेहाश्मकोठकुष्ठज्वरानपि॥
(कै. नि.)

३. पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम्।
स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्रज्वरदोषत्रयक्रिमीन्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५१. बिम्बी

Coccinia indica W. & A.

हि०—कुन्दरू

रासायनिक संघटन—कोमल फलों में आर्द्रता ९३·१, प्रोटीन १·२, वसा ०·१, सूत्र १·६, कार्बोहाइड्रेट ३·५, खनिज ०·५ प्रतिशत होते हैं।

गुण-कर्म—बिम्बी का फल मधुर, गुरु, शीतवीर्य, वातपित्तहर, स्तम्भन, लेखन, रुचिकर किन्तु विबन्ध एवं आध्मान करने वाला होता है[1]।

५२. शिम्बी

शिम्बी (सेम) की अनेक जातियाँ हैं[2]। इसके फल शाकार्थ तथा बीज दाल के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

गुणकर्म—सेम की फली मधुर, गुरु, शीतवीर्य, वातपित्तशामक, कफवर्धक है। यह बल्य है किन्तु अधिक लेने पर आध्मान उत्पन्न करता है[3]।

५३. शोभाञ्जन

शोभाञ्जन (सहजन, मुनगा) की फलियों का शाक बनता है।

गुणकर्म—शोभाञ्जन का फल मधुर, किञ्चित् तिक्त-कटु, उष्णवीर्य, कफवातशामक, दीपन एवं अनुलोमन होता है तथा उदरशूल, गुल्म में विशेष रूप से उपयोगी है[4]।

५४. वृन्ताक

कुल—कण्टकारी-कुल (Solanaceae)

नाम—लै०-सोलेनम मेलोगेना (Solanum melongena Linn.); सं०-वार्त्ताकु, भण्टाक; हि०-बैंगन, भण्टा।

स्वरूप—बैंगन की खेती प्रायः सर्वत्र शाकार्थ फलों के लिए की जाती हैं। इसका प्रायः कण्टकित क्षुप ४–७ फीट ऊँचा होता है। पत्र-लट्वाकार, खण्डित; ३–६ इञ्च लम्बे; पुष्प-नीले, २–५ के गुच्छों में होते हैं। फल-लंबे या अंडाकार;

---

१. बिम्बीफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्रवातजित्।
स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मानकारकम्॥ (भा. प्र.)

२. इनका वर्णन निष्पाव तथा शिम्बी के अन्तर्गत (धान्यवर्ग में) देखें।

३. शिम्बीद्वयं च मधुरं रसे पाके हिमं गुरु।
बल्याध्मानकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वातपित्तजित्॥ (भा. प्र.)

४. शोभाञ्जनफलं स्वादु सतिक्तकटुकं सरम्।
उष्णं वातकफघ्नं स्याद् दीपनं शूलगुल्मनुत्॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

८–१० इञ्च तक लंबे, सफेद, बैंगनी या हरे रंग के, चिकने, स्थूल, बाह्यकोशयुक्त होते हैं जिसके भीतर अनेक छोटे-छोटे बीज होते हैं।

जाति—इसके चार वानस्पतिक प्रकार हैं :—

१. इनकानम (Var. incanum)
२. मेलोंगेना (Var. melongena)
३. डिप्रेसम (Var. depressum)
४. सर्पेण्टिनम Var. serpentinum)

सामान्य प्रचलित बैंगन द्वितीय प्रकार का है।

रासायनिक संघटन—बैंगन के फल कैलशियम, फास्फरस, लौह तथा विटामिन बी के उत्तम स्रोत हैं। इनमें आर्द्रता ९२·७, प्रोटीन १·४, वसा ०·३, खनिज ०·३, सूत्र १·३ तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट ४·० प्रतिशत होते हैं। बीजों से २१·२ प्रतिशत एक तैल निकलता है।

गुणकर्म—वृन्ताक मधुर, लघु, उष्ण, कफपित्तवर्धक, दीपन होता है। बाल (कोमल), फल त्रिदोषहर, मध्यम (प्रौढ) फल पित्तकारक तथा पक्व (कठिन) फल वातवर्धक होता है। आग पर पकाया बैंगन अतिलघु, कफवातशामक, मेदोहर तथा दीपन होता है। तैल आदि में तलने पर यह भारी हो जाता है। सफेद भण्टा अर्शरोग में विशेष पथ्य है[1]।

५५. कदली

कदली (केला[2]) के कच्चे फलों का शाकार्थ प्रयोग होता है।

---

१. वृन्ताकं स्वादु हृद्योष्णं कफपित्तकरं लघु। वीरनं प्रइगोरोगज्वराशःसु प्रशस्यते'॥ (स्व.)

'कफपित्तकराः माषाः कफपित्तकरं दधि।
कफपित्तकराः मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत्॥'
'वृन्तकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम्।
कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यर्थं लघु दीपनम्॥
तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैललवणान्वितम्।
अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्डसमं भवेत्॥
तदर्शःसु विशेषेण हितम्। भा. प्र.)
'वार्त्ताकं कोमलं पथ्यं चक्षुष्यं सर्वदोषजित्।
मध्यमं पित्तजननं पक्वं वातप्रकोपणम्॥' (रा. व.)
'अग्निप्रदा मारुतनाशिनी च शुक्रप्रदा शोणितवर्धनी च।
हृल्लासकासारुचिनाशिनी च वार्त्ताकुरेषा गुणसप्तयुक्ता॥ (रा. व.)
लवणमरिचचूर्णेनाकृतं रामठाढ्यं दहनवदनपक्वं जम्बुकान्तं नितान्तम्।
हरति पवनदोषं श्लेष्महन्तृ प्रसिद्धं जठरभरणभव्यं चारुभोज्यं मरिस्थम्॥(रा.नि.)

२. विवरण फलवर्ग में देखें।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म—कदली का कच्चा फल कषाय, शीतवीर्य, गुरु तथा स्तम्भन होता है और रक्तपित्त आदि तथा अतीसार के लिए उत्तम पथ्य है[1]।

५६. डिण्डिश

कुल—कोशातकी-कुल (Curcurbitaceae)

नाम—लै०-सिट्रुलस वलगेरिस वेरा. फिस्टुलोसस (Citrullus vulgaris Schrad. var. fistulosus (Stocks) Duthie and Fuller.); हि०-टिण्डा ।

स्वरूप—इसकी प्रसरणशील, वर्षायु, दृढ लता होती है। इसके फल गोल, पाण्डुवर्ण या हलके हरे रंग के, कृष्णबीजी होते हैं। विशेषतः पश्चिमी उत्तरप्रदेश, पंजाब और राजस्थान में इसकी खेती होती है।

रासायनिक संघटन—इसके फलों में आर्द्रता ९२·३, प्रोटीन १·७, वसा ०·१, खनिज द्रव्य ०·६ तथा कार्बोहाइड्रेट ५·३ प्रतिशत होते हैं।

गुणकर्म—डिण्डिश रूक्ष, शीतल, कफपित्तशामक, भेदन, मूत्रल एवं अश्मरीघ्न है[2]।

५७. कर्कोटी

कुल—कोशातकी-कुल (Cucurbitaceae)

नाम—लै०-मोमोर्डिका डायोंका (Momordica dioica Roxb. ex Willd.); सं०-कर्कशा; हि०-ककोड़ा, खेकसा ।

स्वरूप—इसकी कन्दयुक्त लता होती है। **पत्ते**-लट्वाकार, ३·५ इञ्च व्यास के, गहरे ३-५ खण्डयुक्त होते हैं। **पुष्प**-एकल, पीतवर्ण तथा **फल**-अण्डाकार, १-२½ इञ्च लम्बे, ईषत् चंचुयुक्त, सघन मृदु कण्टकित होते हैं। **बीज**-कुछ चपटे, ६-७ मि० मी० लम्बे, अनियमित झुर्रीदार होते है। फलों का प्रयोग शाकार्थ होता है।

नर जाति के पौधे में फल नहीं लगते। इसे 'वन्ध्याकर्कोटकी' कहते हैं। इसके कन्द का चिकित्सा, रसशास्त्र तथा तान्त्रिक कर्मों में प्रयोग होता है।

रासायनिक संघटन—इसके फलों में आर्द्रता ८४·१, प्रोटीन ३·१, कार्बोहाइड्रेट ७·७, सूत्र २·९७ तथा वसा ०·९७ प्रतिशत होते हैं। इसमें विटामिन सी

---

१. कदलीफलमपक्वं स्यात् कषायं शीतलं गुरु।
स्तम्भनं रक्तपित्तादावतीसारे च युज्यते॥ (स्व.)

२. डिण्डिशो रुचिकृद् भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः।
सुशीतो वातलो रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरीहरः॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रचुर (२७५·१ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा०) होता है। बीजमज्जा से गहरे भूरे रंग का तैल ३३·५% निकाला जाता है।

गुणकर्म—कर्कोटी के फल रुचिकर, किंचित् तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य; कफवातशामक, दीपन, अनुलोमन तथा रक्तशोधक है[1]। ज्वर, कास-श्वास, कुष्ठ और प्रमेह में इसका प्रयोग होता है।

५८. शृङ्गाटक

शृङ्गाटक (सिंघाड़े) से फलों की सब्जी बनाते हैं या उनकी गिरी फल के रूप में कच्चा या उबाल कर खाते हैं।

गुणकर्म—सिंघाड़ा गुरु, शीत, मधुर-कषाय, पित्तशामक, कफवातवर्द्धक, विष्टम्भी, स्तम्भन तथा वृष्य होता है[2]। रक्तपित्त में उपयोगी होता है।

५९. जीवन्ती

Leptadenia reticulata W. & A.

इसे डोडिका या डोडीशाक भी कहते हैं। प्रशस्त गुणयुक्त होने के कारण यह 'शाकश्रेष्ठा' कही गई है।

गुणकर्म—यह मधुर, शीत, सर्वदोषघ्न, जीवनीय तथा चक्षुष्य है[3]।

६०. भिण्डिका

कुल—कार्पास-कुल (Malvaceae)

नाम—लै०-हिबिस्कस एस्कुलेण्टा (Hibiscus esculenta Linn.) हि०-भिण्डी, रामतरोई; अं०-Lady's finger।

स्वरूप—इसका वर्षायु रोमश क्षुप ३-७ फीट ऊंचा होता है। पत्र-हृद्वत्; पाणिवत्, ३-५ खण्डयुक्त, स्थूलदन्तुर होते हैं। पुष्प-बड़े, पीले रंग के, केन्द्र में रक्तवर्ण, फली-५-१२ इञ्च लम्बी, शृङ्गाकार, अनुलम्बरेखायुक्त, हरे रंग की

---

१. कर्कोटी मलहृत् कुष्ठहृल्लासारुचिनाशिनी।
श्वासकासज्वरान् हन्ति कटुपाका च दीपनी॥ (भा. प्र.)

२. सुश्रुत ने कशेरुक के साथ शृङ्गाटक का वर्णन कन्दशाकों में किया है यद्यपि यह फलशाक है। सम्भवतः आकृति-साधर्म्य के या आधार पर ऐसा किया गया या शृङ्गाटक के कन्द का शाक में प्रयोग होता हो।
'गुरु विष्टम्भिशीतौ च शृङ्गाटककशेरुकौ'। (सु. सू. ४६)
शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम्।
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं दाहास्रपित्तनुत्॥ (भा. प्र.)

३. 'चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती समुदाहृता'। (सु. सू. ४६)
'जीवन्ती सर्वदोषघ्नी चक्षुष्या मधुरा हिमा'॥ (द्र. सं. २।१)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होतो है जिसमें अनेक, गोल, धारीदार, रोमश बीज होते हैं। आजकल इसकी खेती सर्वत्र की जाती है।

रासायनिक संघटन—ताजी फली में आर्द्रता ८८, प्रोटीन २.२, वसा ०.२, खनिज द्रव्य ०.७, सूत्र १.२, कार्बोहाइड्रेट ७.७ प्रतिशत होते हैं। इसमें कैलशियम तथा लौह पर्याप्त परिमाण में होते हैं। पेक्टीन और म्युसिलेज (पिच्छिल द्रव्य) भी प्रचुर होते हैं। बीज भून कर कॉफी के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। बीजों से एक खाद्य तैल १६–२२% प्राप्त होता है।

गुणकर्म—भिण्डी का फल मधुर, गुरु, पिच्छिल, शीतवीर्य, वातपित्तशामक, कफवर्धक, बल्य तथा वृष्य होता है[1]।

६१. राजमाष

Vigna unguiculata (Linn.) Walp

हि०–बोड़ा, लोबिया

राजमाष की कच्ची फलियों का शाकार्थ प्रयोग होता है।

६२. गोपशिम्बी

कुल—शिम्बी-कुल (Leguminosae)

नाम—लै०-सायमोप्सिस टेट्रागोनालोबा (Cyamopsis tetragonaloba (Linn.) Taub; सं०–गुच्छशिम्बी, वाकुचीशिम्बी; हि०–गोआर, ग्वालिन।

परिचय—इसका दृढ़ वर्षायु क्षुप ३–१० फीट ऊँचा होता है। फलियाँ गुच्छों में, स्थूल, मांसल, १½–४ इञ्च लम्बी होती हैं। प्रत्येक फली में ५–१२ बीज होते हैं।

प्रकार—पौधे तथा फली के आकार-प्रकार के अनुसार दो प्रकार का ग्वार होता है एक लघु और दूसरा बृहत्। लघु प्रकार पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में और बृहत् प्रकार गुजरात में अधिक प्रचलित है। चिकनी फलियों का प्रयोग शाकार्थ तथा रोमश फलियों का पशुओं के चारे के रूप में होता है। बीजों का दाल भी पशुओं को खिलाते हैं।

रासायनिक संघटन—फलियों में आर्द्रता ८२.५, प्रोटीन ३.७, वसा ०.२, सूत्र २.३, कार्बोहाइड्रेट ९.९, खनिज पदार्थ १.४ प्रतिशत होते हैं। बीजों के बाह्यावरण से एक प्रकार की गोंद (Guar gum) प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग कागज तथा वस्त्र उद्योग में होता है।

---

१. भिण्डिकायाः फलं स्वादु महिलांगुलिकोमलम्।
पिच्छिलं गुरु शीतं स्याच्छ्लेष्मलं वातपित्तनुत्॥
बलवर्णकरं वृष्यं शुक्रवृद्धिकरं परम्। (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म—गोपशिम्बी गुरु, रूक्ष, मधुर, सर, रुचिकर, कफवातवर्धक; पित्तनाशक एवं बल्य है। इसका पत्र निशान्धता (रतौंधी) में उपयोगी तथा पित्तघ्न है[1]।

६३. पीतकूष्माण्ड

कुल—कोशातकी-कुल (Cucurbitaceae)

नाम—लै०-कुकुर्बिटा मॅक्सिमा (Cucurbita maxima Duchesne); सं०-काशीफल; हि०-कोहड़ा, कदीमा।

स्वरूप—इसकी प्रसरणशील वर्षायु लता होती है। काण्ड लंबा, रोमश, **पत्ते**-वृक्काकार या वृत्ताकार गोलखण्डयुक्त होते हैं। **फल**-गोल या अंडाकार, बड़े आकार के, भूरे पीले रंग के होते हैं जिनके भीतर पक्व होने पर मधुर, पीताभ या रक्ताभ, सूक्ष्मकणयुक्त मज्जा होती है। बीज अनेक, श्वेत या भूरे रंग के होते हैं।

इसकी खेती सर्वत्र की जाती है। काशी में इसका विशेष प्रचलन होने के कारण इसकी संज्ञा 'काशीफल' है। यहाँ विशिष्ट अवसरों पर भोज में 'आलू-कोहड़े' की सब्जी अवश्य बनती है।

C. moschata Duchesne ex Poir के फल भी इससे मिलते जुलते हैं किन्तु इस पौधे का काण्ड पञ्चकोणीय, अरोमश; पत्ते मखमली और बिन्दुयुक्त; फलवृन्त धारीदार तथा फलसंसक्त भाग में फूला हुआ और बीजों के किनारे पर गहरे रंग की धारियाँ होती हैं। इसके फल भी कोंहड़े के नाम से ही चलते हैं।

रासायनिक संघटन—पीतकूष्माण्ड के फल में आर्द्रता ९२·६, प्रोटीन १·४, वसा ०·१, कार्बोहाइड्रेट ५·३, खनिज पदार्थ ०·६ प्रतिशत होते हैं। बीजों से ३६·६ प्रतिशत भूरे लाल रंग का तैल निकलता है। बीज भी भून कर खाये जाते हैं।

गुणकर्म—पीतकूष्माण्ड गुरु, मधुर, ईषदुष्ण, विष्टम्भकारक, कफवातकोपक तथा मलवर्धक है[2]।

६४. रक्तवृन्ताक

कुल—कण्टकारी-कुल (Solanaceae)

---

१. गोपशिम्बी गुरू रूक्षा वातला मधुरा सरा।
रुच्या कफकरी पित्तनाशिनी बलवर्धनी॥ (स्व.)
पत्रमस्याः निशान्ध्यघ्नं पित्तनाशकरं परम्। (शा. नि.)
२. कोष्णं तु पीतकूष्माण्डं रूक्षं विष्टम्भकृद् गुरु।
स्वादु वातकरं श्लेष्मकोपनं मलवर्धनम्॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—लै०-लाइकोपर्सिकन एस्कुलेण्टम (Lycoprslcon esculentum Mill.); हि०-टमाटर, विलायती बैंगन; अं०-Tomato।

स्वरूप—इसका प्रसरणशील रोमश क्षुप होता है जिससे एक विशिष्ट तीक्ष्ण गन्ध निकलती है। पत्ते-मुड़े हुए पक्षवत् होते हैं। फल-कोमल अवस्था में रोमश; प्रौढ़ होने पर चिकने चमकीले तथा पकने पर पीताभ या रक्तवर्ण हो जाते हैं। बीज चपटे, वृक्काकार, रोमश होते हैं।

इसकी अनेक उप-प्रजातियाँ और प्रकार होते हैं।

रासायनिक संघटन—पके फलों में आर्द्रता ९४·५, प्रोटीन १, वसा ०·१; कार्बोहाइड्रेट ३·९, तथा खनिज पदार्थ ०·५ प्रतिशत होते हैं। इसमें अनेक विटामिन भी होते हैं।

गुणकर्म—रक्तवृन्ताक वृन्ताक के सदृश गुण वाला होता है। विशेषतः इसके फल जीवनीय और बल्य हैं[1]।

६५. पुष्करबीज

Nelemubo nucifera Gaertn.

हि०—कमलगट्टा

कोमल बीजयुक्त कमल की कर्णिका (बीजकोश) का शाकार्थ प्रयोग होता है। द्वारका के सब्जी बाजार में इसे बिकते हुए देखा था। प्रौढ़ बीजों का हलुआ बना कर खाते हैं।

गुणकर्म—पुष्करबीज (कमलगट्टा) मधुर, कषाय, शीत, गुरु, पित्तशामक; कफवर्धक, विष्टम्भी एवं बल्य है। यह एक उत्तम गर्भस्थापन है[2]।

नालशाक

६६. सर्षपनाल

सर्षप के नाल (डंठल) का शाक तीक्ष्ण, उष्ण, वातकफशामक, व्रणनाशक; त्वग्दोषहर तथा कृमिघ्न है[3]।

---

१. ज्ञेयं तु रक्तवृन्ताकं वृन्ताकसदृशं गुणैः। जीवनीयं विशेषेण बल्यं च परिकीर्त्तितम्॥ (स्व.)

२. कषायमीषद् विष्टम्भि रक्तपित्तहरं स्मृतम्।
पौष्करं तु भवेद् बीजं मधुरं रसपाकयोः॥ (च. सू. २७)
विपाके मधुरं शीतं रक्तपित्तप्रसादनम्।
पौष्करं स्वादु विष्टम्भि बल्यं कफकरं गुरु॥ (सु. सू. ४६)
पद्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकं गुरु। (भा. प्र.)

३. तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्मव्रणापहम्।
कण्डूकृमिहरं वह्निकृदुष्णं रुचिकारकम्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

६७. मृणाल एवं बिस

मृणाल (कमलनाल) एवं बिस (भसीड़) का शाकार्थं प्रयोग होता है। ये शीत, गुरु, विष्टम्भी, पित्तशामक तथा कफवातकोपक हैं[1]।

कुमुद, उत्पल आदि के नाल भी इसी के समान गुणवाले होते हैं[2]।

६८. वेणुकरीर

वेणु के करीर (नये अंकुर) मधुर, कषाय किन्तु विदाही, गुरु, रूक्ष, कफवातकोपन होते हैं[3]।

कन्दशाक

६९. सूरण

Amorphophallus campanulatus Blume.

सूरण (जमीकन्द, ओल) कन्दशाकों में श्रेष्ठ माना गया है। यह दीपन तथा विशिष्ट अर्शोघ्न है। अर्शरोग में पथ्य के रूप में यह प्रशस्त है[4]।

७०. आलूक

कुल—कण्टकारी-कुल (सोलेनेसी-Solanaceae)।

नाम—लै०-सोलेनम ट्युबरोजम (Sbrlanum tuberosum Linn); हिं०-आलू ; म०-बटाटा; अं०-Potato।

स्वरूप—इसका झाड़ीदार क्षुप आधे से १ मीटर तक ऊँचा होता है। काण्ड प्रायः सपक्ष; पत्र-विषमपक्षवत् , अन्तिम पत्रक बड़ा; पत्रक प्रायः ५–९, अंडाकार या अंडाकार-आयताकार; पुष्प-सफेद, गुलाबी या बैंगनी आभा लिये होते हैं। फल-गोलाकार, २–४ सें० मी० व्यास के होते हैं जिनमें अनेक चपटे, अंडाकार बीज होते हैं। पौधे का भौमिक काण्ड (Stolons) फूल कर कन्दवत् हो जाता है जो आहार में प्रयुक्त होता है।

---

१. तरूटबिसशालूकक्रौञ्चादनकशेरुकम्। शृङ्गाटमङ्कलोड्यं च गुरु विष्टम्भि शीतलम्॥ (च. सू. २७)

अविदाहि बिसं प्रोक्तं रक्तपित्तप्रसादनम्। विष्टम्भि दुर्जरं रूक्षं विरसं मारुतावहम्॥ (सु. सू. ४६)

२. कुमुदोत्पलनालास्तु सपुष्पाः सफलाः स्मृताः।
शीताः स्वादुकषायाश्च कफमारुतकोपनाः॥ (च. सू. २७)

३. वेणोः करीराः कफला मधुरा रसपाकतः।
विदाहिनो वातकराः सकषाया विरूक्षणाः॥ (सु. सू. ४६)

४. सूरणो दीपनो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः। विशेषादर्शसां पथ्यः॥ (द्र. सं.)
सूरणो गुदकीलहा। (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसका मूल निवास दक्षिण अमेरिका है। १७ वीं शती में भारत में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया। अब इसकी खेती प्रायः सर्वत्र बड़े पैमाने पर की जाती है।

रासायनिक संघटन—आलू में आर्द्रता ७४·७, प्रोटीन १·६, वसा ०·१, खनिज द्रव्य ०·६, सूत्र ०·४, अन्य कार्बोहाइड्रेट २२·६ प्रतिशत तथा कैलशियम १०, लौह ०·७, गन्धक ३७, विटामिन ए ४०, विटामिन सी १७ मि० ग्रा० होते हैं। कार्बोहाइड्रेट में प्रमुख मात्रा स्टार्च का (६५–८०%) होता है।

गुणकर्म—आलू, उष्ण, गुरु, मधुर, विष्टम्भी, रक्तपित्तवर्धक तथा बल्य-बृंहण है[1]।

७१. आलुक

वाराहीकुल (Dioscoreaceae) की अनेक प्रजातियाँ 'आलुक' (अं० Yam) नाम से शाकार्थ व्यवहृत होती हैं। इनके अनेक नाम काष्ठालुक (कठालू), शंखालुक (संखालू), हस्त्यालुक, मध्वालुक (मिश्रीकन्द), रक्तालुक (रतालू) आदि मिलते हैं। ये भेद वर्ण, आकृति, स्वाद आदि के आधार पर किये गये हैं[2]। सुथनी या सुसनी आलू (सुनिषण्णकालुक–Dioscorea eseulenta Burkill.) के रोमश कन्द भी व्यवहार में आते हैं।

पश्चिमोत्तर उष्ण प्रदेशों को छोड़ कर भारत के सभी भागों में पाया जाता है तथा इसकी खेती होती है।

गुणकर्म—सभी आलुक शीतल, गुरु, रूक्ष, मधुर, विष्टम्भी, मलमूत्रसारक, बल्य, वृष्य, रक्तपित्तशामक तथा कफवातवर्धक होते हैं[3]। ये कन्दों में अहिततम माने गये हैं[4]।

७२. आलुकी

कुल—सूरण-कुल (Araceae)

नाम—लै०—कोलोकेसिया एस्कुलेण्टा (Colocasia esculenta (Linn.) Schott); सं०—कच्छ्वी; हि०—अरवी, कचछू, घुइयाँ; अं०—Taro.।

स्वरूप—इसका पौधा बहुवर्षायु कन्दयुक्त होता है। हृद्वत्, बड़े पत्ते, १½–७ फीट लम्बे, पत्रनाल पर भौमिक कन्दगुच्छों से निकले होते हैं। इसके कन्द अनेक

---

१. आलुकं मधुरञ्चोष्णं बल्यं रुचिकरं तथा। बृंहणं विष्टम्भकरं रक्तपित्तविवर्धनम् ॥ (स्व.)

२. वाराही का विवरण द्वितीय भाग में देखें।

३. 'आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु। सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत् ॥ कफानिलकरं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्निवर्धनम् ।' (भा. प्र.)

४. आलुकं कन्दानाम् (अहिततमम्)। (च. सू. २५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आकृति एवं वर्ण के होते हैं। बीच का कन्द बड़ा होता है जिसके पार्श्व में अनेक छोटे कन्द लगे होते हैं। बड़े कन्द को कचालू, बण्डा या कन्दा कहते हैं।

रासायनिक संघटन—कन्द में आर्द्रता ७३·१, प्रोटीन ३·०, वसा ०·१; खनिज पदार्थ १·७, कार्बोहाइड्रेट २२·१ प्रतिशत होते हैं। इसमें पिच्छिल द्रव्य (म्युसिलेज) भी होता है। कैलशियम ऑक्जलेट की उपस्थिति के कारण इसके समस्त अंग कण्डूकर होते हैं।

सुखा कर इसका आँटा (Taro flour) भी बनाया जाता है।

गुणकर्म—आलुकी गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, उष्ण, विष्टम्भी, बल्य तथा कफ-पित्तवर्धक है[1]।

७३. मानकन्द

Alocasia indica (Roxb.) Schott.

मानकन्द का शाक लघु, शीत, पित्तहर तथा शोथहर होता है[2]।

७४. हस्तिकर्ण

कुल—द्राक्षा-कुल (Vitaceae)

नाम—लै०—लिया मॅक्रोफाइला (Leea macrophylla Roxb.); हि०—हथकन।

स्वरूप—इसका बहुवर्षायु पौधा १-३ फीट ऊँचा होता है। पत्ते-हस्तिकर्णवत्, बड़े, लम्बे-चौड़े लट्वाकार होते हैं। पुष्प-श्वेत तथा फल काले, गुच्छों में होते हैं। कन्द रक्तवर्ण, पिच्छिल होता हैं। भारत के उष्ण प्रदेशों में होता है। पत्र एवं कन्द का उपयोग शाकार्थ होता है।

गुणकर्म—इसका कन्द कषाय-तिक्त, उष्ण, कफवातनाशक तथा जंगली सूरण के समान गुण होता है[3]।

---

१. आलुकी बलकृत् स्निग्धा गुर्वी पित्तकफप्रदा।
विष्टम्भकारिणी तैले तलिताऽतिरुचिप्रदा॥ (स्व.)
कच्लवी सरा कटुश्यामवातकृद् गुरुपिच्छिला। (रा. व.)

२. मानकः शोथकृच्छीतो रक्तपित्तहरो लघुः। (भा. प्र.)
माणकं स्वादु शीतं च गुरु चापि प्रकीर्त्तितम्। (सु. सू. ४६)

३. गजकर्णा तु तिक्तोष्णा तथा वातकफापहेत्।
शीतज्वरहरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्दकः॥
पाण्डुशोथकृमिप्लीहगुल्मानाहोदरापहः।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी वनसूरणकन्दवत्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

७५. कशेरु

Scirpus grossus Linn. f.

गुणकर्म—कशेरु के कन्द का शाक गुरु, शीत एवं विष्टम्भी होता है[1]।

७६. शतावरी

Asparagus racemosus Willd.

शतावरीकन्द का शाक व्यवहृत होता है।

गुणकर्म—शतावरी मधुरतिक्त, शीत, वातपित्तशामक, हृद्य, वृष्य, मेध्य, बल्य, अग्निवर्धक और रसायन है तथा ग्रहणी तथा अर्श रोग में विशेष प्रशस्त है। इसके अंकुर तिक्त एवं कफपित्तशामक हैं[2]।

७७. कदली

कदलीकन्द का शाक शीतल, मधुर, बल्य तथा विशेषतः अम्लपित्त एवं दाह में पथ्य है[3]।

७८. शालूक

कमल के कन्द को शालूक कहते हैं।

गुणकर्म—शालूक शीतल, गुरु, मधुर, रक्तपित्तशामक, स्तन्यजननन, वृष्य तथा ग्राही है। बिस (भिस्साण्ड) भी इसीके समान गुण होता है[4]।

७९. ग्रन्थिगोभी

कुल—सर्षप-कुल (Cruciferae)

नाम—लै०-ब्रासिका ओलेरेसिया वेरा. गॉङ्गिलोड्स (Brassica oleracea var. gongylods Linn.); हि०-गाँठगोभी।

स्वरूप—वस्तुतः यह बहिर्भौमिक कन्द है जो ह्रस्व काण्ड के फूलने से बनता है। यह दो प्रकार का होता है—हरा और बैंगनी।

---

१. गुरुविष्टम्भिशीतौ च शृङ्गाटककशेरुकौ। (सु. सू. ४६)

२. वातपित्तहरी वृष्या स्वादुतिक्ता शतावरी। महती चैव हृद्या च मेध्याग्निबलवर्धनी॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी वृष्या शीता रसायनी।
कफपित्तहरास्तिक्तास्तस्या एवाङ्कुराः स्मृताः॥ (सु. सू. ४६)

३. शीतलः कदलीकन्दो बल्यः केश्योऽम्लपित्तजित्।
वह्निकृद् दाहहारी च मधुरो रुचिकारकः॥ (भा. प्र.)

४. 'शालूकं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रनुद् गुरु।
दुर्जरं स्वादुपाकं च स्तन्यानिलकफप्रदम्॥
संग्राहि मधुरं रूक्षं भिस्साण्डमपि तद्गुणम्।' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आसाम तथा भारत के मध्य भाग तथा पश्चिमी भाग में इसकी खेती विशेष होती है।

इसका एक और प्रकार (vor. gummifera DC.) होता है जिसमें काण्ड की लम्बाई में अनेक छोटे-छोटे अर्बुद निकले रहते हैं। यह बम्बई तथा बड़ौदा में विशेष उपजाया जाता हैं।

रासायनिक संघटन—ग्रन्थिगोभी में आर्द्रता ९२·१, प्रोटीन १·१, वसा ०·२, कार्बोहाइड्रेट ५·६, खनिज द्रव्य ०·७ प्रतिशत होते हैं।

गुणकर्म—ग्रन्थिगोभी मधुर, शीत, दुर्जर, ग्राही एवं बल्य है[1]।

८०. सलयम

कुल—सर्षप-कुल (Cruciferae)

नाम—लै०-ब्रासिका रेपा (Barassica rapa Linn.) हि०-सलजम, सलगम; अं०-Turnip।

स्वरूप—इसका पौधा १–३ फुट ऊंचा होता है। मूलभाग फूल कर माँसल हो जाता है। उसीका व्यवहार शाकार्थ करते हैं।

रासायनिक संघटन—इसके मूल में आर्द्रता ९१·१, प्रोटीन ०·५, वसा ०·२, कार्बोहाइड्रेट ७·६, खनिज द्रव्य ०·६ प्रतिशत होते हैं।

गुणकर्म—सलजम मधुर, लघु, रुचिकर, अनुलोमन, दीपन, ईषदुष्ण, त्रिदोष-शामक तथा ज्वर एवं उदरविकारों में विशेष पथ्य है[2]।

८१. सितालुक

कुल—त्रिवृत्-कुल (Convolvulaceae)

नाम—लै०-आइपोमिया बटाटास (Ipomoea batatas (Linn.) Lam.) हि०-शकरकन्द, अलुआ।

स्वरूप—इसका पौधा प्रतानयुक्त या प्रसरी होता है। **पत्ते**-एकान्तर, लट्वाकार, हृद्वत्, १–३½ इञ्च लम्बे, अखण्ड, कोणीय या खण्डयुक्त होते हैं। **पुष्प**-एकल या गुच्छबद्ध, २ इञ्च लम्बे, श्वेत या बैंगनी, फनेल के आकार के; **फल**-गोल या अंडाकार, भूरे रंग के; **बीज** २–४, छोटे, कुछ चपटे, काले रंग के होते हैं।

इसकी खेती विशेष रूप से बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में होती है।

रासायनिक संघटन—कन्द में आर्द्रता ६८·५, प्रोटीन १·२, वसा ०·३, कार्बोहाइड्रेट ३१·० तथा खनिज पदार्थ १ प्रतिशत होते हैं। खनिजों में कैलशियम ३०, फास्फरस ४९, मैगनीशियम २४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है।

---

१. ग्रन्थिगोभी मधुरा बल्या दुर्जरा ग्राहिशीतला। (शा. नि.)

२. शलयमं मधुरं लघु रोचनं, ज्वरहरं च सरं मृदु दीपनम्।
शमयति त्रिविकारमनुष्णकम्, हिततमं सततं जठरार्त्तिषु॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म—सकरकन्द गुरु, मधुर, ईषद् उष्ण, विष्टम्भकारक, बल्य, बृंहण, वातपित्तशामक तथा कफवर्धक है[1]।

संस्वेदज शाक

८२. छत्रक

Agaricus campestris Linn.

छत्रक आदि सभी संस्वेदज शाक गुरु, शीतल, पिच्छिल, अभिष्यन्दी, कफवर्धक हैं तथा छर्दि, अतिसार, ज्वर आदि आमजन्य विकारों को उत्पन्न करते हैं[2]।

वर्जित शाक—कच्चा, असमय में उत्पन्न, पुराना, रोगयुक्त, कृमिखादित तथा असम्यक् विकसित कन्द नहीं लेना चाहिए।

अत्यन्त पुराने, असमय में उत्पन्न, रूक्षसिद्ध, अदेशोत्पन्न, कर्कश, कोमल, अतिशीत, व्याल (हिंस्र पशु आदि) से दूषित तथा सूखे सभी शाक (मूली को छोड़ कर) वर्जित हैं[3]।

कर्कश, अत्यन्त जीर्ण, कृमियुक्त, अदेशज तथा अकालज पत्रशाक वर्जित हैं[4]।

शाकप्रतिनिधि—सभी स्थानों में तथा सभी समय हरे शाक या कोई भी शाक मिलना संभव नहीं है। अतः शाकों को सुखा कर रख लेते हैं और उनका उपयोग आवश्यकतानुसार करते हैं। ये 'शुष्क शाक' कहलाते हैं। शाक के अभाव में तिलकल्क, पिण्याक (खली), बड़े आदि व्यवहार में लाये जाते हैं। ये सब दृष्टिशक्ति को नष्ट करनेवाले, दोषवर्धक, ग्लानिकारक तथा गुरुपाकी होते हैं[5]।

---

१. सितालुकं गुरु स्वादु कोष्णं विष्टम्भकृत्तथा।
वातपित्तहरं बल्यं बृंहणं कफवर्धनम्॥ (स्व.)

२. सर्वे संस्वेदजाः शीताः दोषलाः पिच्छिलाश्च ते।
गुरवश्छर्द्यतीसारज्वरश्लेष्मामयप्रदः॥ (भा. प्र.)
भूकन्दस्त्वतिदोषलः। (अ. सं. सू. ७।१६७)

३. बालं ह्यनार्त्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम्।
कन्दं विवर्जयेत् सर्वं यो वा सम्यक् न रोहति॥ (सु. सू. ४६)
अतिजीर्णमकालोत्थं रूक्षसिद्धमदेशजम्।
कर्कशं कोमलं चातिशीतव्यालादिदूषितम्॥
संशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान् मूलकं विना। (भा. प्र.)

४. कर्कशं परिजीर्णञ्च कृमिजुष्टमदेशजम्। वर्जयेत् पत्रशाकं तत् यदकालविरोहि च॥ (सु. सू. ४६)

५. तिलपिण्याकविकृतिः शुष्कशाकं विरूढकम्।
शाण्डाकीवटकं दृग्घ्नं दोषलं ग्लपनं गुरु॥ (अ. सं. सू. ७।५२)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चतुर्थ अध्याय

फलवर्ग

आदिकाल से मनुष्य के आहार में फलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वनों में रहनेवाले मनुष्यों के लिए यह प्रकृति के द्वारा प्रदत्त एक प्राकृतिक खाद्य पदार्थ है। प्रारंभ में लोग कन्द-मूल-फल खाकर रहते थे। बाद में जब अग्नि के आविष्कार के बाद भोजन पकाया जाने लगा तब भी फल का महत्त्वपूर्ण स्थान बना रहा। फलों के द्वारा आवश्यक पोषक तत्त्व, विटामिन आदि की आपूर्त्ति होने के कारण आज भी इनका स्थान अक्षुण्ण है।

फलों के सापेक्ष महत्त्व एवं प्रचलन में समय-समय पर परिवर्त्तन होता रहता है। चरकसंहिता में द्राक्षा से फलवर्ग का प्रारंभ किया जब कि सुश्रुत ने दाडिम को प्रथम स्थान दिया। वाग्भट ने भी 'द्राक्षा' को 'फलोत्तमा' कहा। बाद में आम्र भारत का फलाधिराज माना जाने लगा अतः धन्वन्तरिनिघण्टु, भावप्रकाश आदि में फल वर्ग को 'आम्रादि' कहा गया।

इसके अतिरिक्त कालक्रम से अन्य देशों के साथ सम्पर्क होने पर ऐसे द्रव्यों का पारस्परिक विनिमय होता है। कुछ द्रव्य बाहर जाते हैं और कुछ बाहरी द्रव्यों का समावेश अपने देश में होता है। फलों के सन्दर्भ में भी ऐसा हुआ। अनेक प्राचीन फल धीरे-धीरे प्रचलन से दूर गये और शनैः शनैः विस्मृत हो गये तथा इनके स्थान पर अनेक नवीन फलों (अमरूद, पपीता आदि) का बाहर से आयात हुआ।

फलवर्ग में विभिन्न फलों के वर्गीकरण का क्या आधार रहा यह स्पष्ट नहीं होता। फिर भी सूक्ष्मता से देखने पर प्रतीत होगा कि रस के आधार पर इनका क्रम निर्धारित किया गया है। छः रसों के जो स्कन्ध (चरक) या वर्ग (सुश्रुत) निर्धारित किये गये हैं उनमें भी रसानुसार फलों की गणना की गई है। मधुर फलों से फलवर्ग का प्रारम्भ हुआ है। उसके बाद अन्य रसवाले फल रक्खे गये हैं। यह क्रम यद्यपि चरकसंहिता में उतना स्पष्ट नहीं है तथापि सुश्रुतसंहिता में अधिक स्पष्ट एवं विकसित हुआ है। इसमें निम्नांकित क्रम से द्रव्यों की स्थापना की गई है :—

१. मधुर
२. अम्ल
३. कषाय
४. शुष्क फल (मेवे)
५. अन्य फल (कटु-तिक्त आदि)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुश्रुत ने दाडिम, आमलक, द्राक्षा, खर्जूर, परूषक, राजादन और मातुलुङ्ग को फलों में प्रशस्त कहा है[1]। चरक ने मृद्वीका को फलों में हिततम तथा लकुच को अहिततम कहा है[2]।

१. आम्र

Mangifera indica Linn.

रासायनिक संघटन—आम के पके फल में आर्द्रता ८६·१, प्रोटीन ०·६, वसा ०·१, खनिज द्रव्य ०·३, सूत्र १·१, कार्बोहाइड्रेट ११·८, कैलशियम ०·०१, फास्फरस ०·०२, लौह ०·३ प्रतिशत होते हैं। प्रति १०० ग्राम कैलोरी मूल्य ५०, विटामिन ए ४८०० यु०, बी[1] ४० मि० ग्रा०, निकोटिनिक एसिड ०·३ मि० ग्रा०, राइबोफ्लेविन ५० मि० ग्रा० तथा विटामिन सी १३ मि० ग्रा० होते हैं।

गुणकर्म—आम्र (आम) का कच्चा (कषायाम्ल) फल वातपित्तकारक, प्रौढ़ (अपक्व) फल (अम्ल) पित्तवर्धक तथा पक्व (मधुर) फल वातशामक, वृष्य, बल्य तथा मांसवर्धक है[3]।

खट्टा आम अधिक खाने से मन्दाग्नि, विषमज्वर, रक्तविकार, बद्धगुदोदर तथा तथा नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं। इन अतियोगजन्य विकारों के निवारण के लिए शुण्ठीजल का अनुपान या जीरक का काला नमक के साथ प्रयोग करना चाहिए[4]।

२. मृद्वीका

Vitis vinifera Linn.

गुणकर्म—मृद्वीका (द्राक्षा या अंगूर) का पका फल मधुर, वातपित्तशामक, शीतवीर्य, स्निग्ध, बृंहण, वृष्य, ज्वरहर, कासहर तथा अनुलोमन है। यह ज्वर, कासश्वास, रक्तपित्त, क्षतक्षय तथा दौर्बल्य में उपयोगी है[5]।

---

१. दाडिमामलकं द्राक्षा खर्जूरं सपरूषकम्। राजादनं मातुलुङ्गं फलवर्गे प्रशस्यते॥ (सु. सू. ४६)

२. मृद्वीका फलानां (हिततमं,) लकुचं फलानां (अहिततमम्)। (च. सू. २५)

३. वातपित्तकरं बालमापूर्णं पित्तवर्धनम्। पक्वमाम्रं जयेद् वायुं शुक्रमांसबलप्रदम्॥ (च. सू. २७)

४. मन्दानलत्वं विषमज्वरञ्च रक्तामयं बद्धगुदोदरञ्च।
आम्रातियोगो नयनामयं वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात्॥
'शुण्ठ्यम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणामतिभक्षणे।
जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सह सौवर्चलेन वा॥ (मा. प्र.)

५. तृष्णादाहज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान्। वातपित्तमुदावर्त्तं स्वरभेदं मदात्ययम्॥
तिक्तास्यतामास्यशोषं कासं चाशु व्यपोहति।
मृद्वीका बृंहणी वृष्या मधुरा स्निग्धशीतला॥ (च. सू. २७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३. दाडिम

Punica granatum Linn.

गुणकर्म—मधुर दाडिम (मीठा अनार) त्रिदोषघ्न, दीपन, हृद्य तथा ग्राही है। खट्टा अनार पित्तवर्धक होता है। काबुली अनार (वरदाडिम) सर्वोत्तम माना जाता है[1]।

सुश्रुत ने अनार दो प्रकार का मधुर और अम्ल तथा भावप्रकाश ने तीन प्रकार का मधुर, मधुराम्ल और अम्ल माना है एवं रसानुसार उनके गुणकर्म का निरूपण किया है।

४. खर्जूर

Phoenix sylvestris Roxb.

पिण्डखर्जूर (P. dactylifera Linn.) उत्तम होता है। इसीका फल सूखने पर गोस्तन खर्जूर (छुहाड़ा) कहलाता है।

गुणकर्म—खर्जूर गुरु शीतल, मधुर, वातपित्तहर, बृंहण तथा वृष्य है। इसका पका फल क्षय, अभिघात, रक्तपित्त, दाह तथा दौर्बल्य में प्रशस्त है[2]।

५. कदली

कुल—कदली-कुल (मुसेसी-Musaceae)

नाम—लै०-मुसा पैराडिसियाका (Musa paradisiaca Linn.); सं०-रम्भा, मोचा; हि०-केला; अं०-Plantain, Banana.

स्वरूप—कदली का पत्रमय काण्ड ४-१२ फीट ऊँचा होता है। **पत्र**-४-६ फीट लम्बे होते हैं। **पुष्पमञ्जरी**-गुम्बदाकार, रक्ताभ, पत्तों के बीच से निकलती है। **फल**-गुच्छों में, ३-६ इञ्च लंबे, बेलनाकार या गोस्तनाकार होता है। वन्य जाति के फलों में काले रंग के बड़े बीज होते हैं। आसाम में वन्य कदली बहुत होती है।

---

१. मधुरं पित्तनुत्तेषां तद्धि दाडिममुत्तमम्। (च. सू. २७)
त्रिदोषघ्नं तु मधुरमम्लं वातकफापहम्। (सु. सू. ४६)
प्रकटयति कफेऽप्यौदासीन्यं हिमं बलशुक्रलम्।
परिणततरं बालं हीनं ततो वरदाडिमम्॥ (सि. भें. म. फलवर्ग)

२. मधुरं बृंहणं वृष्यं खर्जूरं गुरु शीतलम्। क्षयेऽभिघाते दाहे च वातपित्ते च तद्धितम्॥ (च. सू. २७)
क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु। रसे पाके च मधुरं खर्जूरं रक्तपित्तनुत्॥ (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जाति—केले की अनेक जातियाँ देशभेद से मिलती हैं। बिहार (हाजीपुर) के चीनिया, चम्पई आदि केले प्रसिद्ध हैं। आज कल भुसावली केले अधिक प्रचलित हैं।

उत्पत्तिस्थान—केला भारत के प्राचीनतम फलों में है। यह सम्भवतः आसाम से सर्वत्र फैला है। इसके अतिरिक्त, बर्मा, थाईलैंड और मलय द्वीपपुञ्जों में विशेष होता है।

रासायनिक संघटन—पके केले में आर्द्रता ६०·६–७६·८, प्रोटीन ०·४–१·७, वसा ०·२, खनिज पदार्थ ०·७, कार्बोहाइड्रेट ३६·४ प्रतिशत तथा कैलोरी मूल्य ६७–१३७, विटामिन बी[१] १५० मि० ग्रा०, राइबोप्लेविन ३० मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होता है। कच्चे केले में कार्बोहाइड्रेट में मुख्य स्टार्च (२०·५%) होता है। जैसे-जैसे फल पकता है स्टार्च शर्करा में परिणत होता जाता है और १–२% से बढ़ कर शर्करा १५–२०% तक पके फल में परिणत हो जाती है। खनिजों में कैलशियम, लौह, पोटाशियम, मैगनीशियम, सोडियम और फास्फरस पर्याप्त मात्रा में होते हैं। कच्चे केले में कषायद्रव्य (टैनिन) १·५२–१·६६% होता है।

गुणकर्म—केले के पके फल कषाय, मधुर, गुरु, शीत, विष्टम्भी, कफवर्धक, वातघ्न, रक्तपित्तशामक, बल्य तथा वृष्य हैं[१]।

६. बदर

कुल—बदर-कुल (रैमनेसी–Rhamnaceae.)

नाम—लै०–जिजिफस मॉरिसियाना (Ziziphus mauritiana Lam.); हि०–बेर; अं०–जुजुबे (Jujube.)

पके फल खाये जाते हैं और कच्चे फलों की सब्जी बनती है।

१. 'सम्पक्वं पनसं मोचं राजादनफलानि च।
स्वादूनि सकषायाणि स्निग्धशीतगुरूणि च॥
कषायविशदत्वाच्च सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्।' (च. सू. २७)
'मौचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम्।
रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु॥' (सु.)
'रम्भापक्वफलं कषायमधुरं बल्यं च शीतं तथा।
पित्तघ्नास्रविमर्दनं गुरुतरं पथ्यं च मन्दानले॥
सद्यः शुक्रविवृद्धिदं क्लमहरं तृष्णापहं कान्तिदम्।
दीप्ताग्नौ सुखदं कफामयकरं सन्तर्पणं दुर्जरम्॥ (रा. नि.)
'मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफनुद् गुरु।
स्निग्धं पित्तास्रतृड्दाहक्षतक्षयसमीरजित्॥
पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यं च बृंहणम्।
क्षुत्तृष्णानेत्रगदहृन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत्॥' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप—इसका छोटा वृक्ष या गुल्म होता है। शीर्षभाग प्रसरणशील तथा उपपत्रीय कण्टक होते हैं। छाल धूसरवर्ण, खुरदुरी और विदीर्ण होती है। **पत्र**–अनेक आकार के, आयताकार–अण्डाकार, लट्वाकार या उपवृत्ताकार, सघनदन्तुर या सरल, दोनों छोर पर गोल, स्पष्ट त्रिसिरायुक्त, १–२½ इञ्च लम्बे, १–२ इञ्च चौड़े होते हैं। **पुष्प**–हरिताभ पीतवर्ण, अक्षीय गुच्छों में होते हैं। **फल**–गोल या अंडाकार पकने पर पीले या नारंगी रंग के होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में प्रायः सर्वत्र तथा हिमालय में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक होता है।

जाति—चरकसंहिता में बदर, कर्कन्धु तथा सिञ्चितिकाफल का वर्णन मिलता हैं। सुश्रुतसंहिता में बदर की पाँच जातियों का वर्णन है—१. बदर २–कोल ३. कर्कन्धु ४. सौवीर ५. सिम्बितिकाफल। बदर और कोल[1] Z. mauritiana के ही बड़े और मध्यमाकृति फल हैं। कर्कन्धु Z. nummularia (Burm. f.) W. & A. के फल हैं। ये सूखे जंगलों में छोटे, मधुराम्ल फल हैं जिन्हें 'झड़बेर' कहते हैं। इनको पीस कर बदरसक्तु (बैरचुन) बनाया जाता है जो श्री वैद्यनाथ-धाम (देवघर) का मुख्य प्रसाद है। सौवीर (उन्नाव) (Z. jujuba Mill.) है जो पश्चिमोत्तर भारत तथा अन्य पड़ोसी राज्यों में होता है। इसे 'राजबदर' भी कहते हैं। सिम्बितिकाफल भी इसीके बड़े फल प्रतीत होते हैं। एक और बदर जाति गोंयघोण्टा या घोण्टा (घोंट या ककोड़) है जिसके नीरस फल होते हैं। यह Z. xylopyra Willd. है।

सामान्यतः भारत में उपलब्ध बदरजातियों को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है :—(१) चीनी बदर (२) भारतीय बदर। सौवीर और सिम्बितिका प्रथम वर्ग में तथा अन्य तीन भेद द्वितीय वर्ग में आते हैं।

रासायनिक संघटन—बदर के फल विटामिन सी तथा शर्करा के उत्तम स्रोत हैं। इनमें आर्द्रता ८१.६, प्रोटीन ०.८, वसा ०.३, कार्बोहाइड्रेट १७, खनिज ०.३ प्रतिशत हैं। कैलशियम ४, फास्फरस ९, लौह १.८, कैरोटीन ०.०२१, थियामिन ०.०२, राइबोफ्लेबिन ०.०२, नियासिन ०.७ तथा विटामिन सी ७६ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। सौवीर में प्रोटीन तथा विटामिन ए भी पर्याप्त होते हैं[2]।

गुणकर्म—बदर के कच्चे खट्टे फल कफपित्तवर्धक किन्तु पके मधुर फल वात-पित्तशामक स्निग्ध और भेदन हैं[3]। यह हृद्य, तृष्णाशमन तथा श्रमहर है। राजबदर

---

१. कोल Z. oenoplia Mill. भी हो सकता है जो Jackal jujube. (शृगालबदरी) के नाम से प्रसिद्ध है।

२. W. I., X, 111–124.

३. मधुरं बदरं स्निग्धं भेदनं वातपित्तजित्। तच्छुष्कं कफवातघ्नं तत्र पित्ते विरुध्यते॥ (च. सू. २७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बल्य और वृष्य है। बदरसक्तु कफवातघ्न, पित्ताविरोधी, तृष्णाहर, सारक है। सिम्बितिकाफल मधुर-कषाय, शीत एवं ग्राही है[1]।

७. परूषक

कुल—परुषक-कुल (टिलिएसी–Tiliaceae)

नाम—लै०—ग्रीविया एशियाका (Grewia asiatica Linn.[2]); हि०—फालसा।

स्वरूप—इसके झाड़ीदार वृक्ष मध्यम प्रमाण के होते हैं। **पत्र**–३–४ इञ्च लम्बे, दन्तुर, उपवृत्ताकार, प्रायः विषमाधार, ५–७ सिरायुक्त होते हैं। **पुष्पदण्ड** पत्रवृन्त से लम्बे, प्रायः एक इञ्च से अधिक, अनेक होते हैं जिनमें पीतवर्ण पुष्प लगते हैं। **फल**–गोलाकार, लगभग ¼ इञ्च व्यास के, कच्चे में हरे, खट्टे तथा पकने पर बैंगनी रंग के मधुराम्ल होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारत में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—इसके फलों से ५५–६५% तक रस निकलता है। फलों में साइट्रिक अम्ल २·८, शर्करा ११·७ प्रतिशत तथा किंचित् विटामिन सी होता है।

गुणकर्म—चरक ने परूषक का उल्लेख विरेचनोपग, श्रमहर, ज्वरहर तथा मधुरस्कन्ध में किया है जिससे उसके प्रमुख गुणकर्मों का संकेत मिल जाता है। सुश्रुत ने परूषकादि गण में इसको प्रथम स्थान दिया है जो वातघ्न, रुचिकर, तृष्णाशामक, हृद्य तथा मूत्रदोषहर है[3]। फालसा के कच्चे फल पित्तवर्धक किन्तु पके फल वातपित्तशामक हैं[4]।

---

१. चरक के हृद्य तथा श्रमहर गणों में बदर है।
कर्कन्धुकोलबदरमामं पित्तकफावहम्। पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं सुमधुरं सरम्॥
पुरातनं तृट्शमनं श्रमघ्नं दीपनं लघु। सौवीरं बदरं स्निग्धं मधुरं वातपित्तजित्॥
कषायं स्वादु संग्राहि शीतं सिम्बिकाफलम्। (सु. सू. ४६)
राजबदरः सुमधुरः शिशिरो दाहार्त्तिपित्तहरः।
वश्यश्च शुक्रवृद्धिं कुरुते शोषश्रमं हरेत॥ (रा. नि.)

२. इसकी अनेक प्रजातियाँ 'फालसा' नाम से लोक में प्रचलित हैं।

३. परूषकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः। मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाघ्नो रुचिप्रदः॥ (सु. सू. ३८)

४. वातघ्नं पित्तजननमामं विद्यात् परूषकम्। तदेव पक्वं मधुरं वातपित्तनिबर्हणम्॥ (सु. सू. ४६)

परूषकं मधूकं च वातपित्ते प्रशस्यते। (च. सू. २७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

८. तूद

कुल—तूद-कुल (मोरेसी-Moraceae)

नाम— लै०-मोरस ऐल्बा (Morus alba Linn.); हि०-तूत, शहतूत, किमु। अं०-Mulberry.

स्वरूप—इसका मध्यमप्रमाण वृक्ष होता है। काण्डत्वक् गहरे भूरे रंग की, लम्बी दरारों से युक्त होती है। **पत्र**-अनेक आकृति के, प्रायः लट्वाकार, दन्तुर या खण्डित, २-४ इञ्च लम्बे होते हैं। मूलभाग में तीन स्पष्ट सिरायें होती है। पुष्प एकलिंगी हरिताभ, छोटे होते हैं। **फल**-अनेक, छोटे, अंडाकार या गोल फलों का संयुक्त रूप, लगभग २ इञ्च लम्बा, श्वेत, गुलाबी, बैंगनी या काले रंग का होता है। शीत ऋतु में पुष्प तथा वसन्त-ग्रीष्म में फल लगते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह चीन का आदिम निवासी माना जाता है। यह समस्त भारत में पाया जाता हैं। हिमालय प्रदेश में १० हजार फीट की ऊँचाई तक मिलता है। इसके पत्तों पर रेशम के कीड़े पलते हैं अतः इस प्रयोजन से कश्मीर, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में विशेष रूप से उगाया जाता है।

जाति—इसकी अनेक प्रजातियाँ तूद के नाम से प्रचलित हैं। १. मोरस नाइग्रा (Morus nigra Linn.) कृष्ण तूद है। यह विशेषतः कश्मीर और दार्जिलिंग में उगाया जाता है। इसके फल अधिकांश कृष्णवर्ण होते हैं जबकि प्रस्तुत वृक्ष (श्वेत तूद) के फल अधिकांश हलके रंग के होते हैं। २. मोरस लीविगेटा (Morus laevigata Wall. ex Brandis) पार्वत्य तूद है जो बाह्य हिमालय प्रदेश में कुमाऊँ से आसाम तक होता है। ३. मोरस सिरेटा (Morus serrata Roxb.) का बड़ा वृक्ष हिमालय के भीतरी भाग में १० हजार फीट की ऊंचाई तक होता हैं।

रासायनिक संघटन—तूद के फलों में आर्द्रता ८७·५, प्रोटीन १·५, वसा ०·४, कार्बोहाइड्रेट ८·३ तथा खनिज पदार्थ ०·६ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम ८० मि० ग्रा०, फास्फरस ४० मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। इसके अतिरिक्त, विटामिन ए, बी तथा सी भी पाये जाते हैं। बीजों से २५·३५% एक पीले रंग का तेल निकलता है।

गुणकर्म—पका तूद मधुर, गुरु, शीत तथा वातपित्तशामक है। वही कच्ची अवस्था में अम्ल, उष्णवीर्य तथा रक्तपित्तकोपक होता है[१]।

---

१. तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तानिलापहम्। तदेवामं गुरु सरमम्लोष्णं रक्तपित्तकृत्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

९. गम्भारी

Gmelina arborea Linn.

गुणकर्म—गंभारी के फल मधुर–कषाय, मधुरविपाक, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, वातपित्तशामक, बृंहण, वृष्य तथा रसायन हैं[1]। रक्तसांग्राहिक तथा रक्तपित्तशामक द्रव्यों में गंभारीफल सर्वोत्तम माने जाते हैं[2]।

१०. बिल्व

Aegle marmelos Corr.

गुणकर्म—बिल्व (बेल) के कच्चे फल (बालबिल्व) का प्रयोग औषध में तथा पके फल का प्रयोग खाने में होता है। कच्चा बालबिल्व उष्ण, तीक्ष्ण, दीपन, संग्राही तथा कफवातशामक होता है जबकि पका फल गुरु, विष्टम्भी तथा कोष्ठ-वातवर्धक होता है[3]।

११. फल्गु

Ficus carica Linn.

गुणकर्म—फल्गु (अञ्जीर) के फल मधुर, शीत, गुरु, विष्टम्भी, तर्पण, बृंहण, वातपित्तशामक तथा रक्तपित्तहर होते हैं[4]।

१२. भल्लातक

Semecarpus anacardium Linn.

गुणकर्म—भल्लातक (भिलावा) का फलमांस मधुर और शीतल तथा

---

१. तत्फलं बृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम्। वातपित्ततृषारक्तक्षयमूत्रविबन्धनुत्॥
स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्लं विशुद्धिकृत्।
हन्याद् दाहतृषावातरक्तपित्तक्षतक्षयान्॥ (भा. प्र.)

२. 'काश्मर्यफलं रक्तसांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्।' (च. सू. २५)
केश्यं रसायनं मेध्यं काश्मर्याः फलमुच्यते। (द्र. सं.)

३. बिल्वं तु दुर्जरं पक्वं दोषलं पूतिमारुतम्।
स्निग्धोष्णतीक्ष्णं तद् बालं दीपनं कफवातजित्॥ (च. सू. २७)
कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राहि दीपनम्।
कटुतिक्तकषायोष्णं बालं बिल्वमुदाहृतम्॥
विद्यात्तदेव सम्पक्वं मधुरानुरसं गुरु। विदाहि विष्टम्भकरं दोषकृत् पूतिमारुतम्॥
(सु. सू. ४६)

४. तर्पणं बृंहणं फल्गु गुरु विष्टम्भि शीतलम्। (च. सू. २७)
विष्टम्भि मधुरं शीतं फल्गुजं तर्पणं गुरु। (सु. सू. ४६)
अञ्जीरं शीतलं स्वादु गुरुपित्तास्रवातजित्।
तस्मादल्पगुणं ज्ञेयमञ्जीरं लघु तद्गुणैः॥ (म. नि.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पित्तशामक होता है। वृन्तभाग जो फूला और रक्तवर्ण होता है वह फलवत् भक्ष्य होता है। चरक ने उसे 'फलमांस' तथा भावप्रकाश में 'आरुष्कर वृन्त' लिखा है[1]।

१३. श्लेष्मातक

Cordia dichotoma Forst. f.

गुणकर्म—श्लेष्मातक (लसोड़ा) के पके फल मधुर, श्लेष्मल, गुरु तथा शीत होते हैं। कच्चे फल रूक्ष, विष्टम्भी तथा कफपित्तशामक होते हैं[2]।

१४. नारिकेल

Cocos nucifera Linn.

गुणकर्म—नारिकेल (नारियल) का फल मधुर, स्निग्ध, शीत, बल्य, बृंहण, वातपित्तशामक तथा मूत्रल होता है। फल के भीतर का जल (नारिकेलोदक) शीतल, हृद्य, तृष्णाशामक, पित्तशामक तथा मूत्रल होता है। नया कोमल नारियल पित्तशामक तथा पुराना नारियल पित्तकारक और विदाहजनक होता है[3]।

१५. ताल

कुल—नारिकेल-कुल (पामी-Palmae)

नाम—लै०-बोरासस फ्लैबेलिफर (Borassus flabellifer Linn.); हि०-ताड़।

स्वरूप—इसका निःशाख वृक्ष ४०-६० फीट (१०० फीट तक) ऊँचा होता है। काण्ड के मूर्धभाग से अनेक पत्र एक साथ निकलते हैं। पत्र-५-१० फीट

---

१. भल्लातकास्थ्यग्निसमं तन्मांसं स्वादु शीतलम्। (च. सू. २७)
वृन्तमारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत्। (भा. प्र.)
भल्लातक का फूला हुआ वृन्तभाग फलमांस, कृष्णवर्ण कठिन फल अस्थि तथा उसके भीतर बादाम की तरह मज्जा होती है। महाराष्ट्र में यह मज्जा खाई जाती है। यह मधुर, वृष्य, बृंहण और वातपित्तशामक कहा गया है।

२. श्लेष्मलं मधुरं शीतं श्लेष्मातकफलं गुरु। (च. सू. २७)
फलमामं तु विष्टम्भि रूक्षं पित्तकफास्रजित्।
तत्पक्वं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु॥ (भा. प्र.)

३. नारिकेलफलानि च। बृंहणस्निग्धशीतानि बल्यानि मधुराणि च॥ (च. सू. २७)
नालिकेरं गुरु स्निग्धं पित्तघ्नं स्वादु शीतलम्।
बलमांसप्रदं हृद्यं बृंहणं बस्तिशोधनम्॥ (सु. सू. ४६)
विशेषतः कोमलनारिकेलं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदोषान्।
तदेव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भिः॥
तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु।
पिपासापित्तजित् स्वादु बस्तिशुद्धिकरं परम्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लम्बे, पंखे के समान होते हैं। पत्रवृन्त के दोनों ओर किनारों पर कृष्णवर्ण तीक्ष्ण दाँत होते हैं। पुष्प एकलिंगी, पृथक्-पृथक् वृक्षों पर होते हैं। स्त्री जाति में फल लगते हैं जबकि पुंजाति में केवल लम्बे गोल, पुष्पदंड होते हैं जिनका प्रयोग कुछ लोग गजपिप्पली के स्थान पर करते हैं। **फल**—गोलाकार, कड़ा, कृष्णाभ धूसर और पकने पर रक्तपीताभ हो जाता है। फलमांस सूत्रबहुल, रक्ताभ पीत, मधुर होता है। प्रत्येक फल में १—३ अंडाकार, कुछ चपटे, कठिन बीज होते हैं। शीत में पुष्प आते हैं तथा वर्षा में फल पकते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में सर्वत्र प्रचलित है। विशेषतः समुद्रतटीय तथा आनूप प्रदेशों में देखा जाता है।

रासायनिक संघटन—फलमज्जा में आर्द्रता ७७·२२, प्रोटीन ०·६७, वसा ०·१५, खनिज द्रव्य ०·६८, कार्बोहाइड्रेट २१·२८ प्रतिशत होते हैं। इनके अतिरिक्त, विटामिन सी २४·० मि० ग्रा० तथा कैरोटिन ७·६ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं।

गुणकर्म—पक्व तालफल मधुर, स्निग्ध, शीत, बल्य, बृंहण, गुरु तथा पित्त शामक है। इसके बीज मूत्रल हैं[1]।

१६. पनस

Artocarpus integra (Thunb.) Merrill.

गुणकर्म—पनस (कटहल) का पका फल मधुर-कषाय, स्निग्ध, शीत गुरु, वातपित्तशामक, कफवर्धक, बल्य और बृंहण होता है। इसका कच्चा फल कषाय, गुरु, वातवर्धक और विष्टम्भी होता है। कटहल के बीज मधुर, वृष्य, गुरु, विबन्धकारक होते हैं। गुल्म और अग्निमांद्य में कटहल विशेष रूप से वर्जित है[2]।

---

१. तालसस्यानि सिद्धानि··· । बृंहणस्निग्धशीतानि बल्यानि मधुराणि च ॥
(च. सू. २७)

फलं स्वादुरसं तेषां तालजं गुरु पित्तजित् ।
तद्बीजं स्वादुपाकं च मूत्रलं वातपित्तजित् ॥ (सु. सू. ४६)

२. संपक्वं पनसं मोचं राजादनफलानि च ।
स्वादूनि सकषायाणि स्निग्धशीतगुरूणि च ॥ (च. सू. २७)
पनसं सकषायं तु स्निग्धं स्वादुरसं गुरु । (सु. सू. २७)
पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ।
तर्पणं बृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलं भृशम् ।
बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतव्रणान् ॥
आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु ।
दाहकृन् मधुरं बल्यं कफमेदोविवर्धनम् ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१७. लकुच

Artocarpus lakoocha Roxb.

गुणकर्म—कच्चा लकुच (बड़हल) कषाय-अम्ल, गुरु, उष्ण, विष्टम्भी, त्रिदोषकोपक, रक्तकोपक, शुक्रनाशन, अग्निमांद्यकर तथा दृष्टिनाशक है। पका फल मधुराम्ल, विष्टम्भी तथा दोषप्रकोपक है। लकुच फलों में निकृष्ट माना गया है[1]।

१८. आरुक

कुल—तरुणी-कुल (रोजेसी–Rosaceae)।

नाम—लै०–प्रुनस पर्सिका (Prunus persica Batsch.) हि०–आड़ू; अं०–Peach.

स्वरूप—इसके मध्यमप्रमाण वृक्ष २५ फीट तक ऊँचे होते हैं। शाखायें चिकनी; पत्र आयताकार या आयत भालाकार, दन्तुर चिकने, पुष्प एकल गुलाबी रंग के होते हैं। **फल**–किंचित् गोलाकार, २–३ इञ्च व्यास के, मांसल, कठिन अष्ठि युक्त होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह शीत पार्वत्य प्रदेश, कश्मीर, पंजाब, कुमाऊँ, आसाम आदि में १० हजार फीट की ऊँचाई तक होता है।

जाति—आलूबुखारा आरुक की ही एक प्रजाति (Prunus domestica Linn.) है जिसका पर्याप्त प्रचलन है। सूखे फलों की चटनी ज्वरोत्तर अरुचि आदि में देते हैं। फलमज्जा एवं अष्ठि की संसक्ति के आधार पर आरुक (आड़ू) के दो वर्ग किये गये हैं—१. अष्ठिसंसक्त (Clingstone) जिसमें फलमज्जा अष्ठि के साथ चिपकी रहती है २. अष्ठि-असंसक्त (Freestone) जिसमें वह अष्ठि से पृथक् रहती है।

पनसोद्भूतबीजानि वृष्याणि मधुराणि च।
गुरूणि बद्धविट्कानि सृष्टमूत्राणि संवदेत्॥
मज्जा पनसजो वृष्यो वातपित्तकफापहः।
विशेषात् पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मन्दवह्निभिः॥ (भा. प्र.)

१. त्रिदोषविष्टम्भकरं लकुचं शुक्रनाशनम्। (सु. सू. ४६)
लकुचं (फलानां) अहिततमम् । (च. सू. २५)
आमं लकुचमुष्णं च गुरु विष्टम्भकृत्तथा। मधुरं च तथाम्लं च दोषत्रितयरक्तकृत्॥
शुक्राग्निनाशनं चापि नेत्रयोरहितं स्मृतम्। (भा. प्र.)
पक्वं तु स्वादु विष्टम्भि वृष्यं दोषाग्निवर्धनम्। (कै. नि.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संघटन—आरुक के फलों में आर्द्रता ८६·०, प्रोटीन १·२, वसा ०·३, कार्बोहाइड्रेट १०·५ तथा खनिज द्रव्य ०·८ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम १५·०, मैगनीशियम २१·०, आक्जेलिक अम्ल १·०, लोह २·४, कुल फास्फरस ४१·०, सोडियम २·०, पोटाशियम ४५३·०, ताम्र ०·०६, गंधक २६·० मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होते हैं। इसके अतिरिक्त, विटामिन ए, बी तथा सी भी होते हैं।

बीजमज्जा बादाम की तरह होती है जिसमें वसा ३६·६, प्रोटीन ३१·२, शर्करा २·२, स्टार्च ३·६ तथा खनिज द्रव्य २·७ प्रतिशत होता है। एमिगडेलिन २·३५% होता है। बीजमज्जा में ३२–४५% तैल होता है।

गुणकर्म—आड़ू के फल मधुर, रुचिकर, गुरु, ईषदुष्ण तथा बृंहण हैं। प्रमेह, अर्श, गुल्म में उपयोगी हैं[1]। आलूबुखारा के गुणकर्म भी प्रायः इसी के समान हैं।

१९. उरुमाण

कुल—तरुणी-कुल (रोजेसी–Rosaceae)।

नाम—लै०–प्रूनस आर्मिनियाका (Prunus armeniaca Linn.) हि०–जर्दालु, खुबानी; अं०–Apricot.

स्वरूप—मध्यप्रमाण का वृक्ष लगभग ३०–३५ फीट ऊंचा होता है। छाल रक्ताभ होती है। **पत्र**–लट्वाकार या किंचित् हृदयाकृति, २–४ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**–गुलाबी सफेद, एकल, पल्लव निकलने के बहुत पहले निकल आते हैं। **फल**–गोल, २ इञ्च व्यास के, तरुणावस्था में रोमश, प्रौढावस्था में श्लक्ष्ण, रक्ताभ पीत होते हैं। **बीज**–चपटे, झुर्रीदार होता है जिसके भीतर मधुर या कटु मज्जा होती है।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा कुमाऊँ में विशेष होता है।

जाति—इसके अनेक भेदोपभेद होते हैं। बीजमज्जा के रस के अनुसार यह मधुर (मोरपंख) तथा कटु (चव्रारू) दो जाति की होती है।

रासायनिक संघटन—जर्दालु के फल में आर्द्रता ८५·३, प्रोटीन १·०, वसा ०·३, कार्बोहाइड्रेट ११·६, खनिज द्रव्य ०·७ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम २०, फास्फरस २५, लोह २·२ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। इनके अतिरिक्त, विटामिन ए, बी और सी भी मिलते हैं।

फलों को सुखा कर भी रख लेते हैं। मधुर बीजमज्जा का प्रयोग बादाम की तरह होता है। बीजमज्जा में जल ४·३, प्रोटीन ३१·४, तैल ५३·४, शर्करा

---

१. नात्युष्णं गुरु संपक्वं स्वादु प्रायं मुखप्रियम्।
बृंहणं जीर्यति क्षिप्रं नातिदोषलमारुकम्॥ (च. सू. २७)
आरुकाणि च हृद्यानि मेहार्शोनाशनानि च। (ध. नि.)
अर्शः प्रमेहगुल्मास्रदोषविध्वंसनानि च। (रा. नि.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

द्राक्षोज ८·१ (प्रत्यक्ष) तथा ११·६ (परिवर्त्तनोत्तर), सूत्र ४·८ तथा राख २·६ प्रतिशत होती है।

गुणकर्म—उरुमाण मधुर, स्निग्ध, गुरु, उष्ण तथा बल्य बृंहण है। विशेष रूप से वातशामक तथा कफपित्तवर्धक है[1]।

२०. सेव

कुल—तरुणी-कुल (रोजेसी–Rosaceae)।

नाम—लै०– मैलस प्युमिला (Malus pumila Mill.); सं०–सिम्बितिका; हि०–सेव; अं०–ऐप्ल (Apple)।

स्वरूप—इसका मण्डलशीर्षक वृक्ष लगभग ४०–५० फीट तक ऊँचा होता है। **पत्र**–अधिकांश छोटी टहनियों पर समूहबद्ध, लट्वाकार या अंडाकार, २–४ इञ्च लम्बे, स्थूलदन्तुर होते हैं। **पुष्प**–श्वेत, किंचित् गुलाबी, सघन गुच्छों में होते हैं। **फल**–मांसल, प्रायः गोलाकार, दोनों सिरों पर दबे हुए, अनेक आकृति एवं वर्ण के होते हैं।

जाति—इसके अनेक प्रकार होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसकी खेती विशेषतः पश्चिमोत्तर भारत, काश्मीर, काँगड़ा, कुमाऊँ, सिन्ध, मध्यभारत तथा दक्षिण भारत में होता है।

रासायनिक संघटन—सेव में कुल ठोस पदार्थ १८·०७, अम्ल (सेवाम्ल) ०·६३, रिड्युसिंग शर्करा १०·०९, ननरिड्युसिंग शर्करा २·१०, कषायद्रव्य ०·१३, प्रोटीन ०·३८, सूत्र १·६० तथा भस्म ०·३४ प्रतिशत होती है। कैलसियम ६·७८, फास्फरस १२·०२, लौह १·३४ तथा ऐस्कॉर्बिक अम्ल ७·५२ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होते हैं[2]।

गुणकर्म—सेव मधुरकषाय, शीतवीर्य, वातपित्तशामक, कफवर्धक, बृंहण एवं ग्राही होता है।

२१. त्रिही

कुल—तरुणी-कुल (रोजेसी–Rosaceae)

नाम—लै०–साइडोनिया ऑबलौंगा (Cydonia oblonga Mill.);

---

१. गुरूष्णाः स्निग्धमधुराः सोरुमाणाः बलप्रदाः। (च. सू. २७)
उरुमाणप्रभृतीनि।
पित्तश्लेष्मकराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरूणि च।
बृंहणान्यनिलघ्नानि बल्यानि मधुराणि च॥ (सु. सू. ४६)

२. मुष्टिप्रमाणं बदरं सेवं सिम्बितिकाफलम्। सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद् गुरु॥
रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत्॥' (भा. प्र.)
कषायमधुरं शीतं ग्राहि सिम्बितिकाफलम्॥' (च. सू. २७)
कषायं स्वादु संग्राहि शीतं सिम्बितिकाफलम्॥ (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हि०-बं०-बिही; क०-बमशुतु; अ०-सफरजव; फा०-बिही; अं०-क्विन्स (Quince)।

स्वरूप—इसका छोटा वृक्ष या गुल्म होता है। शाखा-प्रशाखायें अनेक होती हैं। **पत्र**-डिम्वाकृति, **पुष्प**-श्वेतवर्ण होते हैं। **फल**-सेव के सदृश, सुनहले रंग के, सरस और सुगन्धित तथा ऊपरी भाग में कठिन-रोमश होते हैं। फल के भीतर पांच विभाग होते हैं जिनमें प्रत्येक विभाग में दो लम्बी कतारों में अनेक उन्नतोदर पिच्छिल बीज होते हैं। बीजो को पानी में भिगोवे पर लुआब होता है। वसन्त ऋतु में इसमें पुष्प आते हैं।

जाति—रसभेद से यह दो प्रकार का होता है:—

(१) मधुर, (२) अम्ल। प्रायः अम्ल होता है किन्तु ईरान आदि कुछ क्षेत्रों में लगाई जातियों में मीठे फल लगते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारत में काश्मीर, पंजाब तथा नीलगिरि पर्वतों पर लगाया जाता है।

रासायनिक संघटन—फल में आर्द्रता ८५·७, प्रोटीन ०·३, वसा ०·१, खनिज द्रव्य ०·३, सूत्र १·७, कार्वोहाइड्रेट ११·९ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त विटामिन सी १०० मि० ग्रा०, मेलिक एसिड (सेवाम्ल) १·१% तथा किंचित् चिंचाम्ल होता है। बीज किंचित् कटु होते हैं तथा उनमें एमिग्डेलिन नामक ग्लाइकोसाइड, टैनिन, म्युसिलेज (२२%), अम्ल (१·३% तथा तैल (१४-१५%) होता है।

गुणकर्म—इसके गुण सेव के समान हैं। पिच्छिल बीजों का प्रयोग पौष्टिक चूर्णों में तथा मूत्रकृच्छ्र, दाह आदि में करते हैं[1]।

२२. टंक

परिचय

कुल—तरुणी-कुल (रोजेसी-Rosaceae)।

नाम—लै०-पाइरस कॉम्युनिस (Pyrus communis Linn.); सं०-टंक, अमृतफल; हि०-नासपाती; पं०-तंग; फा०-अमरुद; अं०-पियर (Pear)।

स्वरूप—इसके वृक्ष चौड़े स्तूप शीर्ष वाले होते हैं। **पत्र**-लट्वाकार या अण्डाकार, दन्तुर; **पुष्प**-श्वेतवर्ण होते हैं। **फल** अनेक आकार-प्रकार का होता है जिस पर वाह्यकोष के स्थायी खण्ड लगे होते हैं।

जाति—इसकी एक मुख्य प्रजाति P. pyrifolia (Burm. f.) है इसका कोमल फल 'नाख' कहलाता है। नासपाती के हजारों कृषिज प्रकार आजकल मिलते हैं।

---

१. बिही तु सेवतुल्या स्याद् गुणकर्मप्रयोगतः।
पिच्छिलानि तु बीजानि प्रयुज्यन्ते भिषग्वरैः॥
बल्यवृष्यादियोगेषु दाहे मूत्ररुजासु च॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्तिस्थान—यह पूर्वी और मध्य यूरोप तथा पश्चिमी एशिया में होता है। भारत में यह काश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और तामिलनाडु में मुख्यतः उगाया जाता है।

गुणकर्म—नासपाती मधुर–कषाय, शीतल, तथा बलवर्धक है[1]।

२३. वाताम

परिचय

कुल—तरुणी–कुल (रोजेसी–Rosaceae)।

नाम—लै०–प्रुनस एमिगडेलस (Prunus amygdalus Batsch.); सं०–वाताद, नेत्रोपमफल; हि०–बादाम; अं०–अलमॉण्ड (Almond)।

स्वरूप—इसका वृक्ष मध्यम प्रमाण का २५ फीट तक ऊंचा होता है। **पत्र**–आयताकार–भालाकार, दन्तुर; **पुष्प**–एकल, श्वेत या गुलाबी, १–२ इञ्च व्यास के, मनोहारी होते हैं। **फल**–१–२ इञ्च लम्बा, रोमश, कठिनमज्जायुक्त होता है जो पक्व होने पर विदीर्ण हो जाता है जिससे अष्ठि बाहर आ जाती है। **बीज**–चपटे, नेत्राकार, भूरे आवरण से युक्त होता है जिसके भीतर श्वेतपाण्डुर स्निग्ध मज्जा होती है।

जाति—यह दो प्रकार का है—(१) मधुर, (२) कटु। मीठा बादाम प्रायः Var. sativa से तथा कडुआ बादाम प्रायः Var. amara से प्राप्त होता है। कडुआ बादाम विषाक्त होता है। इसमें हाइड्रोसायनिक अम्ल नामक विषाक्त तत्व रहता है।

उत्पत्तिस्थान—यह पश्चिमी एशिया तथा यूरोप में होता है। भारत में काश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में मुख्यतः होता है।

रासायनिक संघटन—बादाम की मज्जा में आर्द्रता ५·२, प्रोटीन २०·८, वसा ५८·९, कार्बोहाइड्रेट १०·५, सूत्र १·७, खनिज द्रव्य २·९ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम २३०, ऑक्जेलिक अम्ल ४०७, फास्फरस ४९०, लौह ४·५ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम, विटामिन बी कम्प्लेक्स तथा फौलिक एसिड होते हैं।

कडुए बादाम में प्रोटीन १०% अधिक तथा वसा १०% कम होती है। इसमें एमिगडेलिन भी (२·५–३·५%) होता है जिससे जलीय विश्लेषण के बाद हाइड्रोसाइनिक अम्ल बनता है जो विषाक्त पदार्थ है।

मीठे बादाम से तैल ४४–५५% तथा कडुए बादाम से ३८–४५% निकलता

---

१. कषायं मधुरं टङ्कं वातलं गुरु शीतलम्। (च. सू. २७)
शीतं कषायं मधुरं टङ्कं मारुतकृद् गुरु। (सु. सू. ४६)
अमृतफलं लघु वृष्यं सुस्वादु त्रीन् हरेद् दोषान्।
देशेषु मुद्गलानां बहुलं तल्लभ्यते लोकैः॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। यह तैल स्वच्छ, हलका पीला या वर्ण रहित, ईषत् सुगंधि तथा स्वादरहित होता है।

गुणकर्म—बादाम मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, कफपित्तवर्धक, वातशामक, बल्य, वृष्य तथा बृंहण है।

× × × ×

'वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपमफलस्तथा।
वाताद उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद् गुरुः॥'
'वातादमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः।
स्निग्धोष्णः कफकृन्नेष्टो रक्तपित्तविकारिणाम्॥' (भा. प्र.)
'वाताम......गुरूष्णस्निग्धमधुराः......बलप्रदाः। (च. सू. २७)

'वाताम......प्रभृतीनि। पित्तश्लेष्मकराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरूणि च। बृंहणान्यनिलघ्नानि बल्यानि मधुराणि च॥' (सु. सू. ४६)

२४. अभिषुक

परिचय

कुल—आम्र-कुल (एनाकार्डिएसी–Anacardiaceae)।

नाम—लै०–पिस्टेसिया विरा (Pistacia vera Linn) हि०–पिस्ता; म०–पिस्ते; अ०–फुस्तुक; फा०–पिस्तः; अं०–पिस्टेशिओ (Pistachio)।

स्वरूप—इसका वृक्ष ३०–३५ फीट ऊँचा होता है। **पत्र**–विषमपत्रक; पत्रक २–४ इञ्च लम्बे, १–२ इञ्च चौड़े, भालाकार लट्वाकार, चर्मवत् होते हैं। **पुष्प**–सूक्ष्म, मंजरियों में होते हैं। **फल**–लम्बे गोल या गोलाकार, पार्श्व से दबे हुए, १०–२० मि० मी० लम्बे, ६–१२ मि० मी० चौड़े, बाहरी छिलका नानावर्ण, बीज से आसानी से पृथक् हो जाता है। बीज श्वेतवर्ण, कठिन होता है जिसके भीतर पीताभ हरित रक्ताभ आवरणयुक्त मज्जा होती है। बीजमज्जा का मेवे में प्रयोग होता है। काकड़ासिङ्गी के समान इसके पत्तों पर भी एक प्रकार का कीटकोश बनता है उसे पिस्ते का फूल (गुलपिस्ता, बुजगुञ्ज, बुजगुन्द–Bokhara galls) कहते हैं। यह एक ओर से गुलाबी, दूसरी ओर से पीताभश्वेत, अनेक आकृति के तथा स्वाद में कषायाम्ल होते हैं। बीज के छिलके को 'पोस्ते पिस्तः' कहते हैं। इसका भी औषध में प्रयोग होता है।

उत्पत्तिस्थान—मूलतः पिस्ता पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र, ईरान, अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया का निवासी है। यह भारत में मुख्यतः ईरान तथा अफगानिस्तान से आता है।

रासायनिक संघटन—बीजमज्जा में आर्द्रता ५·६, प्रोटीन १९·८, वसा ५३·५, कार्बोहाइड्रेट १६·२, सूत्र २·१, खनिज द्रव्य २·८, कैलशियम ०·१४ तथा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

फास्फरस ०·४३ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त, लौह, विटामिन ए, बी कम्प्लेक्स तथा सी होते हैं। बीजमज्जा से ५०% तैल निकलता है।

गुणकर्म—बीजमज्जा के गुणकर्म और प्रयोग बादाम के समान ही हैं। यह बल्य, वृष्य और बृंहण है। पिस्ते का फूल तथा छिलका स्तम्भन है और इसका प्रयोग कास, अतिसार, छर्दि आदि में करते हैं। गलशोथ, मुखपाक आदि में इनकी गोलियाँ मुख में रख कर चूसते हैं।

× × × ×

वातामाभिषुका '''। गुरूष्णस्निग्धमधुराः सोरुमाणाः बलप्रदाः।
वातघ्नाः बृंहणा वृष्याः कफपित्ताभिवर्धनाः॥ (च. सू. २७)

वाताम'''प्रभृतीनि। पित्तश्लेष्मकराण्याहुःस्निग्धोष्णानि गुरूणि च। बृंहणान्य-निलघ्नानि बल्यानि मधुराणि च।' (सु. सू. ४६)

२५. निकोचक

परिचय

कुल—सरल-कुल (पाइनेसी–Pinaceae)।

नाम—लै०–पाइनस जिरार्डियाना (Pinus gerardiana Wall.); सं०–निकोचक; हि०–चिलगोजा; म०–चिलगोजे; गु०–चिलगोजा; पहाड़ी–नेजो, नेवजा; अ०–हब्बसनोबर किबार; फा०–चिलगोजः; अं०–चिलगोजा पाइन (Chilgoza Pine)।

स्वरूप—यह मध्यमाकार वृक्ष होता है जिसके काण्ड से अनियताकार पतली पर्तें छूटती रहती हैं। **पत्तियाँ**–सूच्याकार, २–४ इञ्च लम्बी, कठिन, गहरे हरे रंग की, ३–३ एक साथ होती हैं। पुंशंकु २–५ इञ्च लम्बे, स्त्रीशंकु लम्बगोल-अंडाकार ६–९ इञ्च लम्बे होते हैं। शल्क स्थूल, काष्ठीय, मुड़े हुए १½ इञ्च लम्बे होते हैं। बीज बेलनाकार, तीक्ष्णाग्र, लगभग १ इञ्च लम्बे, गहरे भूरे, अविकसित पक्ष युक्त होते हैं जिनके भीतर तैलीय मज्जा होती है। **फल**–लगभग १ इञ्च लम्बा, लंबगोल एक ओर कुछ चपटा, धूसरवर्ण होता है। ऊपर का छिलका पतला और भंगुर होता है। इसके भीतर श्वेत, मधुर एवं स्निग्ध मज्जा निकलती है।

उत्पत्तिस्थान—यह ईरान, अफगानिस्तान और पश्चिमोत्तर हिमालय प्रदेश में ६–१० हजार फीट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—बीजमज्जा में आर्द्रता ७·५, प्रोटीन १५·९, वसा ४९·९, कार्बोहाइड्रेट २१·६, सूत्र २·२, खनिज द्रव्य २·२ प्रतिशत होते हैं। खनिजों में कैलशियम ९०·८, फास्फरस ९२·४ तथा लौह २·४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। बीजमज्जा से ५०% तैल निकलता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म—इसके गुणकर्म और प्रयोग बादाम के तुल्य हैं। यह वल्य, वृष्य और बृंहण हैं।

× × × ×

'निकोचकमौत्तरापथिकं कोष्ठकफलम्'। (ड.)

'निकोचकं गुरु स्निग्धं वृष्योष्णं स्वादु बृंहणम्। रक्तप्रसादनं बल्यं वातघ्नं कफपित्तकृत्॥'
(म. नि.)

'निकोचकं गुरु स्निग्धं वृष्योष्णं धातुवर्धनम्। रक्तप्रसादनं स्वादु बल्यं पित्तकरं मतम्॥'
(नि. र.)

२६. काजू

परिचय

कुल—आम्र-कुल (एनाकार्डिएसी–Anacardiaceae)।

नाम—लै०-एनाकार्डियम ऑक्सिडेण्टेल (Anacardium occldentale Linn.)। सं०–काजून, काजूतक, वृत्तारुष्कर; हि०, म०, गु०–काजू; बं०–हिजली, बादाम, फा०–बादामे फिरंगी; अं०–केश्यू (Cashew)।

स्वरूप—इसका चिरहरित वृक्ष आम्र के सदृश ४० फीट तक ऊँचा होता है। **पत्र**–४–८ इञ्च लम्बे, ३–५ इञ्च चौड़े होते हैं। पत्रसिरायें १० जोड़ी होती हैं। **पुष्प**–पीतवर्ण, लाल दागों से युक्त होता है। पुंकेशर छः होते हैं जिनमें एक सबसे बड़ा होता है। **फल**–भल्लातकसदृश, मूलभाग स्फीत (Cashew apple) २–३ इञ्च लम्बा, पीला या रक्तवर्ण होता है। वास्तविक फल हरिताभ धूसरवर्ण, वृक्काकृति होता है जिसके भीतर सफेद रंग की मज्जा ३०% निकलती है जो एक पतले रक्ताभ भूरे आवरण से ढकी रहती है। यही काजू है। फलावरण से एक स्फोटजनक तैल भल्लातकतैल के सदृश निकलता है। दिसम्बर से फरवरी तक पुष्प तथा उसके बाद जून तक फल लगते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका आदिम वासस्थान दक्षिण अमेरिका है। पुर्तगालियों के द्वारा ब्राजिल से भारत में इसका प्रवेश हुआ। सम्प्रति भारत के पश्चिम समुद्रतट पर विशेषतः गोआ, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तामिलनाडु और केरल में इसकी खेती होती है। कर्नाटक का चिकमगलूर क्षेत्र इसका प्रमुख केन्द्र है।

रासायनिक संघटन—काजू का संघटन प्रायः मीठे बादाम के समान होता है। इसमें जल ५·९, प्रोटीन २१·२, वसा ४६·९, कार्बोहाइड्रेट २२·३, खनिज द्रव्य २·४, कैलशियम ०·०५, फास्फरस ०·४५ प्रतिशत तथा लोह ५० मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होता है। गिरी से पीताभ तैल ४०·५३% निकलता है। फलावरण से जो अलकतरा के सदृश गाढ़े काले रंग का तैल निकलता है उसमें ९० प्रतिशत

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एनाकार्डिक एसिड (Anacardc acid) तथा १० प्रतिशत दाहक तैल कार्डोल (Cardol) होता है। इसका तैल त्वचा पर लगाने से छाले उठ जाते हैं।

गुणकर्म—काजू के गुणकर्म बादाम के समान हैं।

× × × ×

काजूतकः परं वृष्यो वातामसदृशो गुणैः। (स्व.)

२७. अक्षोट

परिचय

कुल—अक्षोट-कुल (जगलैण्डेसी-Juglandaceae)।

नाम—लै०-जगलैन्स रेजिया (Juglans regia Linn.); सं०-अक्षोट, अक्षोड (बिभीतक के सदृश पत्र वाला), कर्पराल, शैलपीलु, रेखाफल, मदनाभफल; हि०-अखरोट; बं०-आखरोट; म०, गु०-अखरोड; क०-आखार; ता०-आकरोट; ते०-आखरोट्; अ०-जौज; फा०-गौज; अं०-वालनट (Walnut)।

स्वरूप—इसका बड़ा सुगन्धित वृक्ष अद्विधैर्कलिंगी होता है। नई शाखाओं का पृष्ठ भाग मखमली होता है। **छाल**-धूसर ½-२ इञ्च मोटी होती है तथा उसमें लम्बे चीरे होते हैं। **काष्ठ**-धूसरवर्ण होता है जिसमें काले दाग होते हैं। **पत्र**-६-१५ इञ्च लम्बे, विषमदल; **पत्रक**-५-१३, ३-६ इञ्च लम्बे, २-४ इञ्च चौड़े प्रायः अवृन्त, अण्डाकार या आयताकार-भालाकार होते हैं। **पुष्प**-छोटे, पीताभ हरित, पुंपुष्पगुच्छ २-५ इञ्च लम्बा, नीचे की ओर झुका हुआ, स्त्रीपुष्प अन्त्य १-३ के गुच्छों में होते हैं। **फल**-अण्डाकार-गोलाकार, हरितवर्ण, रेखासहित, चर्मवत् आवरणयुक्त, अस्फोटी, २ इञ्च व्यास का, मदनफल के सदृश होता है। उसका भीतरी भाग (endocarp) कठिन, झुर्रीदार दो कपाटों वाला होता है जिसके भीतर ४ खण्ड का, मस्तिष्कसदृश रचना वाला, तैलीय बीज होता है। वसन्त में पुष्प तथा शरद में फल आते हैं। पक्व फल फट जाते हैं और बीज नीचे जमीन पर गिरते हैं जिनका संग्रह किया जाता है।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालप्रदेश में ५-१० हजार फीट की ऊँचाई पर होता है।

रासायनिक संघटन—भारतीय अखरोट में आर्द्रता ४·५, प्रोटीन १५·६, वसा ६४·५, कार्बोहाइड्रेट ११·०, सूत्र २·६ तथा खनिज द्रव्य १·८ प्रतिशत होते हैं। खनिजों में कैलशियम ६१, मैगनीशियम १३१, लौह २·३५ फास्फरस, ५१०, गन्धक १०४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। विटामिन ए, बी काम्प्लेक्स तथा सी होते हैं। अपरिपक्व फल विटामिन सी का उत्तम स्रोत है। बीजमज्जा से ६०-७०% एक तैल प्राप्त होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म—अखरोट भी बादाम के समान गुणकर्म वाला है। यह मधुर; उष्णवीर्य, बल्य, वृष्य, बृंहण, वातनाशक, कफपित्तहर विशेषतः मेधावर्धक है।

× × × ×

'अक्षोटः शाखी सुमहद्दन्तिपत्रोऽथ तत्फलम्।
पलमात्रं च गाल्लाभं मध्ये प्रोन्नतरेखकम्॥' (शि.)
'अखोटः पार्वतीयश्च फलस्नेहो गुडाशयः। कीरेष्टः कर्परालश्च स्वादुमज्जः पृथक्छदः॥
रेखाफलो वृत्तफलो मदनाम्ब फलश्च सः॥
'अखोटकं गुणे स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः। गुरूष्णं बृंहणं वृष्यं बल्यं विष्टम्भि रोचनम्॥
हृद्यं क्षयास्रपवनदाहघ्नं कफपित्तलम्।' (नि. र.)
'अक्षोटकोऽपि वातादसदृशः कफपित्तकृत्।' (भा. प्र.)
वातामसदृशोऽक्षोडः परं मेध्योऽनिलापहः। (स्व.)

२८. प्रियाल

Bnchanania lanzan Spreng.

हि०—चिरौंजी, चार

गुणकर्म—प्रियाल (चिरौंजी) मज्जा के गुणकर्म बादाम आदि औत्तरापथिक फलों की मज्जा के समान है किन्तु अन्तर इतना है कि वे उष्णवीर्य हैं और प्रियाल शीतवीर्य है। प्रियाल बल्य, वृष्य, बृंहण, वातपित्तशामक है। प्रियाल के फल भी खाये जाते हैं। ये मधुर, स्निग्ध, सर तथा वातपित्तशामक है।

× × × ×

वातपित्तहरं वृष्यं प्रियालं गुरु शीतलम्।
प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः॥ (सु. सू. ४६)
प्रियालमेषां सदृशं विद्यादौष्ण्यं विना गुणैः। (च. सू. २७)
चारः पित्तकफास्रघ्नस्तत्फलं मधुरं गुरु।
स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदाहज्वरतृषापहम्॥ (भा. प्र.)

२९. शृङ्गाटक

Trapa natans Linn. Var. bispinosa (Roxb.) Makino.

हि०—सिंघाड़ा अं०—Water chestnut.

गुणकर्म—शृङ्गाटक (सिंघाड़ा) मधुर, कषाय, गुरु, शीतवीर्य, पित्तशामक; कफवातवर्धक, ग्राही तथा वृष्य है। गर्भस्राव में यह उत्तम पथ्य है[1]।

---

१. शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम्।
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं दाहास्रपित्तनुत्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३०. मखाना

Euryale ferox Salisb.

हि०—मखाना

गुणकर्म—मखान्न (मखाना) मधुर, शीत, वातपित्तशामक, बल्य, वृष्य तथा गर्भस्थापन है[1]।

३१. पद्मबीज

Nelumbo nucifera Gaertn.

हि०—कमलगट्टा

गुणकर्म—पद्मबीज (कमलगट्टा) के गुणकर्म मखाना के समान है। यह मधुरकषाय, वल्य, वृष्य, ग्राही, पित्तशामक, कफवातवर्द्धक तथा गर्भस्थापन है[2]। ज्वर में पद्मबीज से शृत जल पिलाते हैं। कमलगट्टे का हलुआ भी उपर्युक्त विकारों में पथ्य देते हैं।

३२. कुमुद

Nymphaea nouchali Burm. f.

हि०—कोईं

गुणकर्म—कुमुद के बीज (भेंट या बेरा) को भून कर उसका लावा ज्वर, ग्रहणी आदि में पथ्य देते हैं[3]।

३३. त्रपुस

Cucumis sativus Linn.

हि०—खीरा

गुणकर्म—त्रपुस (खीरा) मधुर, गुरु, रूक्ष, शीत, विष्टम्भी तथा मूत्रल है। यह पित्तशामक तथा रक्तपित्तहर है। खीरा का बीज शीत और मूत्रल है[4]।

इसका शाक में भी प्रयोग होता है (देखें शाकवर्ग ।

---

१. मखान्नं स्निग्धवृष्यञ्च गर्भसंस्थापकं परम्।
वातपित्तहरं बल्यं शीतं पित्तास्रदाहनुत्॥ (भा. प्र.)

२. पद्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकं गुरु। विष्टम्भिवृष्यं रूक्षं गर्भसंस्थापकं परम्॥
कफवातकरं बल्यं ग्राहि पित्तास्रदाहनुत्। (भा. प्र.)

३. सुलघु कुमुदबीजं शीतं स्वादु ज्वरघ्नञ्च।
शमयति मारुतपित्तं भृष्टं पथ्यं ग्रहण्यादौ॥ (स्व.)

४. त्रपुसैर्वारुके स्वादुगुरुविष्टम्भिशीतले। मुखप्रियं च रूक्षं च मूत्रलं त्रपुसं त्वति॥
(च. सू. २७)

स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम्।
तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३४. एर्वारुक

कुल—कोशातकी-कुल (कुकुर्बिटेसी-Cucurbitaceae)

नाम—लै०-कुकुमिस युटिलिस्सिमस (Cucumis utilissimus Linn.); सं०-कर्कटी; हि०-ककड़ी; अ०-क़िस्सा; फा०-खियार्जः ।

स्वरूप—इसकी लता लगभग त्रपुस के समान होती है। **फल**-बेलनाकार, १-२ फीट लम्बे, हरिताभ श्वेत तथा पृष्ठभाग पर उभरी अनुलम्ब रेखाओं से युक्त होते हैं। फल खाये जाते हैं तथा उनकी सब्जी, रायता आदि भी बनाया जाता है।

गुणकर्म—एर्वारुक के गुणकर्म लगभग त्रपुस के समान हैं। यह शीतल, गुरु, मूत्रल और विष्टम्भी है। पक्व फल किंचित् पित्तवर्धक हो जाता है[1] अतः कोमल बाल कर्कटी का ही प्रयोग करना चाहिए।

वक्तव्य—चिर्भिट (फूट-Cucumis momordica Roxb.) के गुणकर्म कर्कटी के समान है।

३५. खर्बूज

कुल—कोशातकी-कुल (कुकुर्बिटेसी-Cucurbitaceae)।

नाम—लै०-कुकुमिस मेलो (Cucumis melo Linn.); दशांगुल; हि०-खर्बूज; फा०-खर्बूजे; अं०-Musk melon।

स्वरूप—इसका क्षुप आरोही या प्रतानशील, वर्षायु होता है। पत्ते बड़े रोमश होते हैं। **फल**-गोल या अंडाकार, अनेक आकृति एवं वर्ण के मधुर एवं सुगन्धित होते हैं।

जाति—इसके अनेक प्रकार होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह उष्ण एवं शुष्क क्षेत्रों में होता है।

रासायनिक संघटन—फल में प्रोटीन ०·६, कार्बोहाइड्रेट ५·४, वसा ०·२, सूत्र ०·५, राख ०·६ प्रतिशत, लौह ३·६ मि० ग्रा० प्रति किलो होता है। विटामिन ए, बी तथा सी भी होते हैं।

बीजों में प्रोटीन ३५·८ तथा तैल ४४·६ प्रतिशत होता है। इस कारण बीज बादाम के प्रतिनिधि के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

गुणकर्म—खर्बूज गुरु, मधुर, स्निग्ध, शीत, वातपित्तशामक, मूत्रल, बल्य, वृष्य तथा सारक है[2]।

---

१. त्रपुसैर्वारुके स्वादुगुरुविष्टम्भिशीतले। (च. सू. २७)
एर्वारुकं सकर्कारु संपक्वं कफवातकृत्। सक्षारं मधुरं रुच्यं दीपनं नातिपित्तलम्॥
(द्र. सं.)

२. खर्बूजं मूत्रलं बल्यं कोष्ठशुद्धिकरं गुरु।
स्निग्धं स्वादुतरं शीतं वृष्यं पित्तानिलापहम्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३६. कालिन्द

कुल—कोशातकी-कुल (कुकुर्बिटेसी–Cucurbitaceae)।

नाम— लै०–साइट्रुलस वलगेरिस (Citrullus vulgaris Schrad.); सं०–कालिङ्ग; हि०–तरबूज; अं०–Water melon.।

स्वरूप—इसका आरोही या प्रतानशील वर्षायु रोमश क्षुप होता है। **पत्र**–खण्डित होते हैं। **फल**–अण्डाकार, हरितवर्ण या हरितचिह्नयुक्त २० इञ्च व्यास तक के होते हैं। फलमज्जा कोमल, रक्ताभ बैंगनी रंग का, स्पंजी होता है। **बीज**–अनेक, छोटे, चपटे तथा काले, भूरे या सफेद होते हैं।

जाति—इसके अनेक प्रकार मिलते हैं।

उत्पत्तिस्थान—तरबूज अफ्रीका का आदिम वासी है। आजकल प्रायः समस्त भारत में इसकी खेती होती है। शुष्क एव उष्ण क्षेत्रों में होता है।

रासायनिक संघटन—फल में आर्द्रता ९५·७, प्रोटीन ०·१, वसा ०·२, खनिज द्रव्य ०·२, कार्बोहाइड्रेट ३·८, कैलशियम ०·०१ तथा फास्फरस ०·०१ प्रतिशत होता है। रस में ०·१७ प्रतिशत साइट्रुलिन होता है।

बीज भी भून कर खाये जाते हैं। बीजों में प्रोटीन ३४·३, वसा ४४·४, कार्बोहाइड्रेट ४·८ प्रतिशत होता है। इनसे २०–४०% तैल निकलता है।

गुणकर्म—तरबूज गुरु, शीतल, पित्तशामक, ग्राही, अचक्षुष्य तथा अवृष्य है। पक्का तरबूज किंचित् उष्ण और पित्तवर्धक हो जाता है[1]।

३७. अनानास

Ananas comosus (Linn.) Merr.

सं०–बहुनेत्र; हि०–अनानास

गुणकर्म—अनानास का फल मधुराम्ल, वातशामक, कफवर्धक, सारक, कृमिघ्न और बल्य है[2]।

३८. अमरूद

कुल—जम्बू-कुल (मिर्टेसी–Myrtaceae)।

नाम—लै०–सिडियम गुआजावा (Psidium guajava Linn.); सं०–अमरुफल, पेरुक, आमरूद; हि०–अमरूद, पेयारा; अं०—Common guava.।

---

१. कालिन्दं ग्राहि दृक्पित्तशुक्रहृच्छीतलं गुरु।
पक्वं तु सोष्णं सक्षारं पित्तलं कफवातजित्॥ (भा. प्र.)

२. बहुनेत्रफलं चाम्लं कृमिघ्नं मधुरं सरम्।
बल्यं वातहरं रुच्यं श्लेष्मलं तर्पणं गुरु॥ (रा. व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

स्वरूप—इसका झाड़ीदार वृक्ष २०–२५ फीट ऊँचा होता है। **पत्र**–हलके हरे रंग के, सूक्ष्म रोमश, चिमड़े, ३–४ इञ्च लम्बे, २–२½ इञ्च चौड़े, आयताकार होते हैं। **पुष्प**–श्वेत, सुगन्धित होते हैं। **फल**–हरे रंग के, पकने पर पीतवर्ण, कभी-कभी रक्ताभ, अनेक आकृति एवं प्रमाण के होते हैं। फलमज्जा पीताभ श्वेत तथा किसी-किसी में रक्तवर्ण होती है। इसके फल वर्ष में प्रायः दो बार एक बरसात और दूसरा जाड़े में आते हैं।

जाति—इसके अनेक प्रकार हैं। इसकी एक प्रजाति P. cattleyanum Sabine ऊंचे पार्वत्य प्रदेशों में होता है। इसे पहाड़ी पेयारा कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—अमरूद दक्षिण अमेरिका का मूल निवासी है, जो पुर्तगालियों द्वारा यहाँ लाया गया। अब भारत के प्रायः सभी राज्यों में यह उगाया जाता है। उत्तरप्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आसाम, पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश तथा तामिलनाडु इसके प्रमुख उत्पादन केन्द्र हैं।

रासायनिक संघटन—अमरूद विटामिन सी का उत्तम स्रोत है क्योंकि नींबू से इसमें ४–१० गुना अधिक होता है। इसके फलों में आर्द्रता ८१·७, प्रोटीन ०·९, वसा ०·३, सूत्र ५·२, अन्य कार्बोहाइड्रेट ११·२, तथा खनिज द्रव्य ०·७ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम १०, मैगनिशियम ८, आक्जेलिक अम्ल १४, फास्फरस २८, लौह १·४, ताम्र ०·०३ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। विटामिन ए नहीं होता, बी कम्प्लेक्स होता है तथा सी २१२ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होता है।

गुणकर्म—यह मधुर–कषाय, शीत, पित्तशामक, कफवातवर्द्धक, मूत्रल, आमशोधन है[1]।

३९. एरण्डकर्कटी

Carica papaya Linn.

सं०—मधुवरेण्ड, वातकुम्भ; हि०—पपीता

गुणकर्म—एरण्डकर्कटी (पपीता) के कच्चे फलों की सब्जी बनती है और पके फल खाये जाते हैं। कच्चे फल उत्तम दीपन-पाचन, ग्राही, उष्णवीर्य तथा कफवातशामक हैं। पके फल मधुर, शीत पित्तहर होते हैं[2]।

---

१. अमरोत्थ फलं शीतं मलद्रवकरं मतम्। सरं दाहं रक्तपित्तं कामलां मूत्रकृच्छ्रहम्॥
मूत्राश्मरीं च हन्तीति मुनिभिः परिकीर्त्तितम्। (नि. र.)
विष्टम्भि सुस्वादु सरं समीरसमीरणं क्षुच्चपणं सुगन्धि।
गुणौघवित्तं परिजित्य पित्तं मुदं क्रिमूदघ्नि नामरूदम्॥ (सि. भे. म.)

२. एरण्डकर्कटी लघ्वी तीक्ष्णा कट्वी सतिक्तका।
वीर्योष्णा पाचनी हृद्या ग्राहिणी कफवातनुत्॥
फलं सतिक्तमधुरं पक्वं तु मधुरं लघु। (स्व.)
वातकुम्भफलं ग्राहि कफवातप्रकोपणम्। तत् पक्वं मधुरं रुच्यं पित्तनाशकरं गुरु॥
(नि. र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४०. सीताफल

कुल—सीताफल-कुल (एनोनेसी-Annonaceae.)।

नाम—लै०-एनोना स्क्वेमोजा (Annona squamosa Linn.); सं०-गण्डगात्र, हि०-शरीफा; अं०-Custard apple.।

स्वरूप—इसका लगभग सदाहरित वृक्ष १५-२० फीट ऊंचा होता है। **पत्र**-आयताकार-भालाकार, चिकने, ४-६ इञ्च लम्बे, १½-२ इञ्च चौड़े, किंचित् सुगन्धित होते हैं। **पुष्प**-अवनत, पीताभ हरित, ¾-१¼ इञ्च लम्बे होते हैं। **फल**-पीताभ हरित, ३-४ इञ्च व्यास के, मधुर, ईषत् सुगन्धित, पीताभ श्वेत फलमज्जा युक्त होते हैं। फल का पृष्ठ भाग उभरी ग्रन्थियों से युक्त होता है अतः इसे गण्डगात्र कहते हैं। **बीज**-भूरे-काले, चिकने, अनेक होते हैं। वसन्त में पुष्प, वर्षा में फल आते हैं।

जाति—इसकी एक प्रजाति रामफल (A. reticulata Linn.) के नाम से प्रचलित है। इसमें ग्रन्थियों का उभार वैसा नहीं होता। इसका फल पीताभ रक्तवर्ण, हृदयाकृति, ३-५ इञ्च व्यास का होता है। एक अन्य प्रजाति A. cherimolia Mill बाद में प्रविष्ट हुई है। इसका फल सीताफल से बड़ा, कम बीज वाला तथा अम्ल होता है इसे लक्ष्मणफल या हनुमानफल कहते हैं। A. muricata Linn. (मामफल) का फल इन प्रजातियों में सबसे बड़ा (१½-३ किलो तक) तथा कटहल की तरह कण्टकित होता है। बाद की दो प्रजातियाँ आसाम तथा दक्षिणभारत में होती हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह दक्षिण अमेरिका का मूल निवासी है। सम्प्रति भारत में सर्वत्र उगाया जाता है।

रासायनिक संघटन—इसके फल में आर्द्रता ७०.२, प्रोटीन ०.८, ग्लुकोज १४.५, सकरोज १.७ प्रतिशत होता है। विटामिन सी पर्याप्त होता है।

गुणकर्म—सीताफल मधुर, शीत, वातपित्तशामक, बल्य, बृंहण, वृष्य तथा हृद्य है। इसके बीज तथा पत्र कृमिघ्न हैं[1]। यूका, लिक्षा आदि के विनाश के लिए इसके पत्रस्वरस का प्रयोग करते हैं।

---

१. सीताफलं तु मधुरं शीतं हृद्यं बलप्रदम्। बृंहणं शुक्रलं दाहरक्तपित्तमरुत्प्रणुत॥ (स्व.)

बलासबीर्यपात्राणि दात्राणि द्रवसंपदाम्।
प्रायशः स्वादुमात्राणि गण्डगात्राणि मन्महे॥ (सि. भे. म.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४१. लीची

कुल—अरिष्टक-कुल (संपिण्डेसी–Sapindaceae)।

नाम—लैं०-लीची चाइनेन्सिस (Litchi chinensis (Gaertn.); सं०-एलची, लीची।

स्वरूप—इसका सदाहरित वृक्ष ३०–४० फीट ऊंचा होता है। **पत्र**-पक्षवत् २–१ पत्रक युक्त; **पुष्प**-छोटे हरिताभ या पीताभ अन्त्य मञ्जरियों में होते हैं। **फल**-गुच्छों में, गोलाकार या अंडाकार, लगभग १ इञ्च व्यास के; रक्ताभ या पीताभ, ग्रन्थिल, भंगुर त्वचा से आवृत, बीजकोष (Aril), जो फलमज्जा के सदृश होता है, श्वेत, मांसल, पारभासक तथा सरस होता है। इसके भीतर एक बड़ा गहरे भूरे रंग का, अंडाकार बीज होता है। वसन्त में पुष्प तथा ग्रीष्म (मई-जून) में फल पकते हैं।

जाति—इसके अनेक कृषिज भेद हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह १८वीं शती में चीन से भारत में प्रविष्ट हुआ। उत्तर बिहार का मुजफ्फरपुर जिला इसका प्रमुख उत्पादनकेन्द्र है। इसके अतिरिक्त देहरादून, आसाम, पश्चिम बंगाल आन्ध्रप्रदेश तथा नीलगिरि क्षेत्र में भी होता है।

रासायनिक संघटन—ताजे फलों में आर्द्रता ८४·५, प्रोटीन १·०, वसा ०·३, कार्बोहाइड्रेट १३·६, सूत्र ०·४ खनिज पदार्थ ०·५ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम १० मि० ग्रा०, फास्फरस ३० मि० ग्रा०; लौह ०·४ मि० ग्रा०, ऐस-कौर्बिक एसिड २४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। इसके अतिरिक्त विटामिन बी कम्प्लेक्स भी होता है, विटामिन ए नहीं होता।

गुणकर्म—लीची का फल गुरु, मधुर, रुचिकर, उष्ण, सारक, विष्टम्भी; वातहर तथा कफपित्तवर्धक होता है[1]।

वक्तव्य—लीची के समान कुछ और फल भी होते हैं—(१) नागलीची या क्षाशफल (Enphoria longana Linn.) जो प्राचीन 'आक्षिकी' हो सकती है बंगाल, आसाम तथा पश्चिमी घाट में होता है। इसका फल लीची से छोटा तथा उतना स्वादु नहीं होता। (२) रामबुटान (Nephelium lappaceum Linn.) जो दक्षिण भारत में होता है यद्यपि यह मलयेशिया का मूल निवासी है। इसके फल लीची के समान ही किन्तु एरण्डफल के समान इस पर लम्बे कण्टक होते हैं।

---

१. एलचीफलमुष्णं स्यात् सरसं मधुरं सरम्।
गुरु वातहरं रुच्यं विष्टम्भि कफपित्तकृत्॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४२. मधूक

Madhuca Indica J. F. Gmel.

सं०—गुडपुष्प; हि०—महुआ

गुणकर्म—मधूक (महुआ) के फल मधुर, शीत, गुरु, वातपित्तशामक, वृष्य और बृंहण है। वातपित्त के विकारों में यह परम प्रशस्त है[1]।

४३. नारङ्ग

कुल—निम्बुक-कुल (रुटेसी-Rutaceae)।

नाम—लै०-साइट्रस रेटिकुलेटा (Citrus reticulata Blanco); सं०-नागरङ्ग, त्वक्सुगन्ध; हि०-नारंगी, सन्तरा; बं०-कमला लेंबू; अं०-ओरेञ्ज (Orange)।

स्वरूप—इसका सदाहरित झाड़ीदार श्लक्ष्ण वृक्ष मध्यमाकार होता है। पत्ते छोटे, कोमल, ह्रस्ववृन्त, प्रायः अपक्ष होते हैं। **पुष्प**-श्वेत, सुगन्धित होते हैं। **फल**-प्रायः गोलाकार, शीर्ष भाग पर या दोनों सिरों पर चपटा होता है। **फलत्वक्**-पतली, शिथिल नारंगी रंग की या रक्ताभ होती है। फलमज्जा सरस, मधुर या मधुराम्ल होती है। **बीज**-कठिन, श्वेतवर्ण के, अनेक होते हैं।

जाति—इसके अनेक प्रकार होते हैं। एक प्रजाति (C. auranticum Linn.) जो अम्लनारंग (Sour orange) के नाम से प्रचलित है उसके फल नारंगी से छोटे तथा खट्टे और किंचित् तिक्त होते हैं। इसे 'खट्टा भी कहते हैं। दूसरी प्रजाति (C. sinensis Linn.) Osbeck) मिष्ट नारंग या मोसम्मी (Sweet orange) के नाम से प्रसिद्ध है।

उत्पत्तिस्थान—नारंग मूलतः चीन तथा कोचीन-चीन का निवासी है। भारत में मुख्यतः आसाम, सिक्किम, मध्यप्रदेश, पंजाब तथा कुर्ग में होता है।

रासायनिक संघटन—नारंगी के फल में कार्बोहाइड्रेट १०·६, प्रोटीन ०·६, वसा ०·३, खनिज पदार्थ ०·४, कैल्शियम ०·०५, फास्फरस ०·२ प्रतिशत होते हैं। लौह ०·१, विटामिन ए ३५०, विटामिन बी ४०, विटामिन सी ६८ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होते हैं। छिलके में सुगन्धित तैल तथा पेक्टिन होते हैं। इनके अतिरिक्त एक रञ्जक पदार्थ, कैरोटिनॉयड, फाइटोस्टेरोलिन, फाइटोस्टेरान तथा कुछ वृसाम्ल होते हैं।

---

१. परूषकं मधूकञ्च वातपित्ते प्रशस्यते। (च. सू. २७)
वातपित्तोपशमनं फलं तस्योपदिश्यते। (सु. सू. ४६)
फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत्।
अहृद्यं हन्ति तृष्णास्रदाहश्वासक्षतक्षयान्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुणकर्म—नारंगी का फल मधुराम्ल, हृद्य, रोचन तथा वातशामक है[1]।

४४. मधुकर्कटी

कुल—निम्बुक-कुल (रुटेसी–Rutaceae)।

नाम—लै०–साइट्रस मैक्सिमा (Citrus maxima (Burm.) Merr) हि०–चकोतरा, गगरिया नीबू; म०–पापनस; अं०–Pummello.।

स्वरूप—इसका झाड़ीदार वृक्ष लगभग १५ फीट ऊँचा होता है। पत्ते–गहरे हरे, बड़े, सपक्ष वृन्तयुक्त होते हैं। फल–गोल या अण्डाकार, ६–८ इञ्च व्यास के, पकने पर पीतवर्ण हो जाते हैं। फलत्वक्–मोटी, फलमज्जा श्वेत या रक्त, फल केशर बड़े और एक दूसरे से पृथक् होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—इसका मूल निवास मलयेशिया एवं इण्डोनेशिया है भारत में यह जावा से प्रविष्ट हुआ था। यह विशेषतः कुर्ग, मैसूर, महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा तामिलनाडु में लगाया जाता है।

रासायनिक संघटन—इसमें विटामिन सी २० मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम, कुल शर्करा ८–९·५% निम्बुकाम्ल २·३१–२·७०% होता है।

गुणकर्म—यह मधुर, गुरु, शीतल, रोचन, वृष्य तथा रक्तपित्तशामक है[2]।

वक्तव्य—मधुकर्कटी के सदृश दिव्यनिम्बुक (Citrus paradisi. Macf.) है। इसका वृक्ष बड़ा होता है तथा फल अपेक्षाकृत छोटे, फलत्वक् पतली तथा फलमज्जा द्रवबहुल होती है। इसके फल गुच्छों में लगते हैं जबकि मधुकर्कटी का फल एकल लगता है। दिव्यनिम्बुक पश्चिमी द्वीपसमूह का मूल निवासी है, संप्रति भारत में मुख्यतः पंजाब में इसकी उपज होती है।

४५. मिष्टनिम्बुक

कुल—निम्बुक-कुल (रुटेसी–Rutaceae)।

---

१. 'अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तरोचनम्। वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारंगस्य फलं गुरु॥'
(सु. सू. ४६)

'मधुरं किंचिदम्लं च हृद्यं भक्तप्ररोचनम्। दुर्जरं वातशमनं नागरंगफलं गुरु॥'
(च. सू. २७)

नारंगो मधुराम्लः स्याद्रोचनो वातनाशनः।
अपरं त्वम्लमत्युष्णं दुर्जरं वातहृत् सरम्॥ (भा. प्र.)

२. मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचना शीतला गुरुः। रक्तपित्तक्षयश्वासकासहिक्काभ्रमापहा॥
(भा. प्र.)

एवं प्रकारा विज्ञेया वृष्या च मधुकर्कटी। (द्र. सं.)

'मधुकर्कटी' 'मखुर' इति ख्याता मातुलुङ्गापेक्षया महाप्रमाणा बहुमांसाऽल्पकेशरा।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—लैं०-साइट्रस लिमेट्वायडिस(Citrus limettoides Tanaka); हि०-मीठा नींबू; अं०-Sweet Lime.।

स्वरूप—इसका गुल्मवत् वृक्ष होता है। **पत्ते**-नारंगी के सदृश किन्तु रंग में हलके तथा उभरी तैलग्रन्थियों से युक्त, सपक्षवृन्त होते हैं। **पुष्प**-बड़े, श्वेतवर्ण होते हैं। **फल**-गोल या अण्डाकार, चिकने, हलके पीले या हरे होते हैं। **फलत्वक्**-पतली तथा फलमज्जा प्रायः स्वादरहित होती है। **फल**-बरसात में पकते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह उत्तरी तथा मध्य भारत में होता है।

रासायनिक संघटन—फलों से प्रायः ५०–६०% रस निकलता है। निम्बुकाम्ल ०.०१ तथा कुल शर्करा ६.३ प्रतिशत होती है।

गुणकर्म—मीठा नींबू का फल मधुर, गुरु, वातपित्तशामक होता है। यह बल्य, बृंहण, रोचन है तथा गलरोग, विष, रक्तपित्त, शोष, तृषा और कफ में लाभकर है[1]।

४६. बीजपूर

कुल—निम्बुक-कुल (रुटेसी–Rutaceae)।

नाम—लैं०-साइट्रस मेडिका (Citrus medica Linn.); सं०-मातुलुंग; फलपूरक; हि०-बिजौरा; अं०-Citron.।

स्वरूप—इसका गुल्म या वृक्षक लगभग ८–१० फीट ऊँचा होता है। **शाखायें**-छोटी, स्थूल तथा कण्टकित होती हैं। **पत्ते**-बड़े, ह्रस्ववृन्त तथा अपक्ष होते हैं। **फल**-अभि-अण्डाकार, स्थूलत्वक्, पकने पर पीले होते हैं। **फलत्वक्**-रुखड़ी और उभारयुक्त होती है, फलमज्जा हलकी पीली, अल्प, अम्ल या मधुर होती है।

जाति—इसकी अम्ल एवं मधुर दो जातियाँ होती हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह पूर्णतः भारतीय फल है। इसकी उपज प्रायः सर्वत्र आर्द्र एवं उष्ण प्रदेशों में की जाती है।

रासायनिक संघटन—इसके रस में निम्बुकाम्ल, गन्धकाम्ल एवं शर्करा होती है। फलत्वक् में सुगन्धित तैल होता है।

गुणकर्म—बीजपूर दीपन, पाचन, रोचन सर तथा हृद्य है। शूल, गुल्म, छर्दि, अजीर्ण, अर्श आदि में उपयोगी है[2]।

---

१. मिष्टनिम्बुफलं स्वादु गुरु मारुतपित्तनुत्। गलरोगविषध्वंसि कफोत्क्लेशि च रक्तहृत्॥
शोषारुचितृषाच्छर्दिहरं बल्यं च बृंहणम्। (भा. प्र.)

२. 'मातुलुङ्गफलं हृद्यमम्लं लघ्वग्निदीपनम्। श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम्॥'
'केशरं तु लघु ग्राहि गुल्मार्शोघ्नं हि दीपनम्।
...यं शूलानिलच्छर्दिकफारोचकनाशनम्॥' (द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

४७. जम्बीर

Citrus limon (Linn.) Burm. f.

हि०—जमीरी नींबू

गुणकर्म—जम्बीर अम्ल, गुरु, उष्णवीर्य, वातकफनाशक, सारक तथा दीपन-पाचन है। अग्निमांद्य, शूल, कृमि, छर्दि आदि में उपयोगी है[1]।

४८. निम्बुक

कुल—निम्बुक-कुल (रुटेसी–Rutaceae)।

नाम—लैं०–साइट्रस ऑरेण्टिफोलिया (Citrus aurantifolia (Christm) Swingle.); सं०–पत्रनिम्बुक; हि०–कागजी नींबू; बं०–पातिनेबू; अं०–Lime.।

स्वरूप—इसका झाड़ीदार छोटा वृक्ष होता है। पत्र छोटे, ह्रस्व सपक्ष वृन्त से युक्त होते हैं। फल–प्रायः गोल, चिकना, तनुत्वक्, हरा तथा पकने पर पीला हो जाता है। फलमज्जा सुगन्धित अम्ल होती है।

जाति—इसके अनेक प्रकार होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में प्रायः सर्वत्र ४ हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। तामिलनाडु इसका प्रमुख केन्द्र है। महाराष्ट्र, बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्यप्रदेश आदि में भी लगाया जाता है।

रासायनिक संघटन—इसके फल में निम्बुकाम्ल ६.२–६.६% तथा विटामिन सी ६३ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम पाया जाता है।

गुणकर्म—कागजी नींबू का प्रयोग आहार में सामान्यतः होता है। यह रोचन, दीपन, पाचन तथा वातानुलोपन है[2]।

४९. आमलक

Emblica officinalis Gaertn.

गुणकर्म—आमलक (आंवला) पञ्चरस (लवणरहित अम्लप्रधान) मधुर

---

१. जम्बीरं वातकफनुद् गुरु पित्तप्रकोपणम्।
तृष्णाशूलकफोत्क्लेशच्छर्दिश्वासनिवारणम्॥ (द्र. सं.)
जम्बीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत्।
शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णामदोषजित्॥
आस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमांद्यकृमीन् हरेत्। (भा. प्र.)

२. 'निम्बूकमम्लं वातघ्नं पाचनं लघु।'
'निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम्।
वातपित्तकफशूलिने हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम्॥
त्रिदोषवह्निक्षयवातरोगनिपीडितानां विषविह्वलानाम्।
मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं विषूचिकायां मुनयो वदन्ति॥' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषशामक विशेषतः पित्त का शामक है। अम्ल होते हुए भी यह उत्तम अम्लताशामक (Antacid), शोणितस्थापन, प्रमेहघ्न तथा रसायन है। आंवले का फल खाकर यदि दूध पीवे तो उत्तम रसायन का कार्य करता है। स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होने के कारण यह अम्ल फलों में श्रेष्ठ माना गया है। यह अम्लपित्त, परिणामशूल, रक्तपित्त, प्रमेह तथा दौर्बल्य दूर करने के लिए अमृत के समान है[1]।

५०. भव्य

परिचय

कुल—भव्य-कुल (डिलेनिएसी–Dilleniaceae)।

नाम—लै०–डिल्लेनिया इण्डिका (Dillenia indica Linn.); सं०–भव्य; हि०–बं०–चालता; ने०–रामफल; म०–करंवेल; ता० ते० उ०–उवा।

स्वरूप—इसका सदाहरित वृक्ष ३०–८० फीट ऊँचा, ६ फीट परिधि का होता है। काण्डत्वक्–दालचीनी की तरह धूसरवर्ण होती है। **पत्र**–सघन, १०–१२ इञ्च लम्बे २–४ इञ्च चौड़े, आयताकार-भालाकार, रोमश होते हैं और इनके किनारे आरे के सदृश कटे होते हैं। **पुष्प**–५–७ इञ्च व्यास के, श्वेतवर्ण सुगन्धित, एकल होते हैं। **फल**–गोलाकार, कठिन, लगभग ५–६ इञ्च व्यास के होते हैं जो पाँच पुष्पबहिर्दलों से बने होते हैं। **बीज**–अनेक, रोमशधार, चपटे, वृक्काकार होते हैं। ग्रीष्मऋतु में पुष्प आते हैं तथा शीतकाल में फल पकते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह हिमालय के निचले आर्द्र एवं सदाहरित जंगलों में कुमाऊँ गढ़वाल से आसाम-बंगाल तक तथा मध्य एवं दक्षिण भारत तक पाया जाता है। यह प्रायः नदी–नालों के किनारे होता है। जंगली हाथी इसके फल को प्रायः खाते हैं।

रासायनिक संघटन—फल में टैनिन ०·३७, ग्लुकोज २·९२, तथा मैलिक एसिड ०·५१ प्रतिशत होते हैं। बीजों में पिच्छिल द्रव्य अधिक होता है।

गुणकर्म—भव्य का फल स्वादिष्ट, कषायाम्ल, रुचिकर, ग्राही, गुरु, विष्टम्भी, शीतवीर्य तथा कफपित्तवर्धक होता है[2]।

---

१. अम्लं समधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम्। चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम्॥ (सु. सू. ४६)

हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः। रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम्॥ (भा. प्र.)

२. 'हृद्यं स्वादु कषायाम्लं भव्यमास्यविशोधनम्।
पित्तश्लेष्मकरं ग्राहि गुरु विष्टम्भि शीतलम्॥' (सु. सू. ४६)
'मधुराम्लकषायं च विष्टम्भि गुरु शीतलम्।
पित्तश्लेष्मकरं भव्यं ग्राहि वक्त्रविशोधनम्॥' (च. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वक्तव्य—एक अन्य प्रजाति D. pentagyna Roxb, जो आसाम में 'अक्षि' कही जाती है, के पुष्प पीतवर्ण सुगन्धित तथा फल नारंगी रंग के, ½–¾ इञ्च व्यास के, सरस होते हैं।

५१. अम्लिका

परिचय

कुल—शिम्बी-कुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae)।

उपकुल—पूतिकरञ्ज–उपकुल–(सीजलपिनिआयडी–(Caesalpinioideae)।

नाम—लैं०–टैमरिण्डस इण्डिका (Tamarindus indica Linn.); सं०–चिञ्चा, तिन्तिडी। हि०–इमली; बं०–तेतुल; म०–चिञ्च; गु०–आंबली; ता०–आंबिलम्; ते०–चिन्त; अ०–तमरे हिन्दी; फा०–खुर्माए हिन्दी; अं०–टैमरिण्ड (Tamarind)।

स्वरूप—इसका सदाहरित वृक्ष ७५ फुट तक ऊंचा तथा २०–२२ फीट परिधि का होता है किन्तु सामान्यतः २०–२५ फीट ऊंचा देखने में आता है। **पत्र**—समपक्षवत्, ६ इञ्च लम्बे होते हैं। **पत्रक**–२०–४० जोड़े, आयताकार, प्रायः अवृन्त, ८–३० मि० मी० लम्बे, ५–१० मि० मी० चौड़े, होते हैं। **पुष्प**–छोटे, पीताभ, गुलाबी धारियों से युक्त, प्रशाखाओं के अन्त में मञ्जरियों में होते हैं। **फली**–३–७ इञ्च लंबी, १ इञ्च चौड़ी तथा १ सेण्टीमीटर मोटी, बीजों के बीच-बीच में कुछ संकुचित, किंचित् वक्र, भूरे रंग की होती है जिसमें ३–१२, अभिलट्वाकार-आयताकार, चपटे, गहरे भूरे रंग के, चिकने चमकीले बीज होते हैं। बीज के दोनों पृष्ठों पर आयताकार गढ़ा होता है। अप्रिल–जून में पुष्प तथा जनवरी–फरवरी में फल पकते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में सर्वत्र होता है। विशेषतः दक्षिणभारत में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—फलमज्जा में आर्द्रता २०·९, प्रोटीन ३·१, वसा ०·१, सूत्र ५·६, अन्य कार्बोहाइड्रेट ६७·४, खनिज २·९ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम १७०, फास्फरस ११०, लोह १०·९ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होते हैं। टार्टरिक एसिड (चिञ्चाम्ल) ८–१८% तथा शर्करा ३०–४०% होती है। कुछ विटामिन ए, बी और सी भी होते हैं।

गुणकर्म—कच्ची अम्लिका (इमली) अम्ल, गुरु, उष्णवीर्य, वातशामक तथा कफपित्तवर्धक होती है। पका फल दीपन, सर तथा कफवातशामक होता है[1]।

---

१. 'अम्लिकाऽम्ला गुर्वातहरी पित्तकफास्रकृत्।
पक्वा तु दीपनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत्॥' (भा. प्र,)
'चिञ्चात्यम्ला: सवेदामा पक्वा तु मधुराम्लिका। वातघ्नी पित्तदाहास्रकफदोषप्रकोपनी॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५२. कर्मरङ्ग

परिचय

कुल—चांगेरी-कुल (आक्सेलिडेसी-Oxalidaceae)।

नाम—लै०-एवरोआ करम्बोल (Averrhoa carambola Linn.); सं०-कर्मरंग, पीतफल, शिराल, धाराफल; हि०-कमरख; बं०-कामरांगा; म०-करमल; गु०-कमरख; ता०-तामरे तामाराम्; ते०-करमणुग; अं०-चाइनीज गूजबेरी (Chinese Gooseberry)।

स्वरूप—इसका सदाहरित वृक्ष १५-३० फुट ऊँचा होता है। शाखायें सघन होती हैं। **पत्र**-अंडाकार हरफारेवड़ी के सदृश होते हैं। **पुष्प**-गुच्छों में, श्वेतवर्ण किंचित् रक्ताभ त्वक् से निकलते हैं। **फल**-तीक्ष्ण ५ कोण वाले, अण्डाकार, ३-४ इञ्च लम्बे, पारभासक, सुगन्धित होते हैं। ये कच्चे में हरे कषाय तथा पकने पर सुनहले पीले मधुराम्ल हो जाते हैं। फल के बीच में लम्बे और चपटे बीज होते हैं। वर्षा में पुष्प तथा शरद् एवं हेमन्त में फल लगते हैं।

जाति—इसकी अम्ल और मधुर दो जातियाँ होती हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारत के आर्द्र उष्ण प्रदेशों में होता है।

रासायनिक संघटन—मधुर फल में आर्द्रता ९३.९, प्रोटीन ०.५, वसा ०.२, कार्बोहाइड्रेट ४.८, खनिज द्रव्य ०.२ प्रतिशत होते हैं। अम्ल ०.८% होता है।

गुणकर्म—कर्मरंग (कमरख) का फल शीत, मधुराम्ल, ग्राही तथा कफवात शामक है[1]।

वक्तव्य—एक अन्य प्रजाति A. bilimbi Linn. (हि० बिलिम्बी) के फल भी खट्टे होते हैं और आहार में प्रयुक्त होते हैं।

५३. आम्रातक

कुल—आम्र-कुल (एनाकार्डिएसी-Anacardiaceae)।

नाम—लै०-स्पॉण्डियस पिनाटा (Spondias pinnata (Llnn. f.)

अम्लिकायाः फलं त्वाममत्यम्लं लघु पित्तकृत्।
पक्वं तु मधुराम्लं स्याद् भेदि विष्टम्भवातजित्॥
पक्वचिञ्चाफलरसो मधुराम्लो रुचिप्रदः। शोफपाककरो लेपाद् व्रणदोषविनाशनः॥
चिञ्चापत्रं च शोफघ्नं रक्तदोषव्यथापहम्।
तस्य शुष्कत्वचाक्षारः शूलमन्दाग्निनाशनः॥ (रा. नि.)

१. कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातनुत्। (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

kurz.); सं०–हि०–बं०–आमड़ा; म०–आंवाड़ा; गु०–जंगली आंबो; ता०–कतमा; ते०–आरवी-मासादी; अं०–हॉग प्लम (Hog-plum), वाइल्ड मैंन्गो (Wild Mango)।

स्वरूप—इसका वृक्ष ३०–५० फीट ऊंचा ८–९ फीट मोटा होता है। काण्डत्वक् मोटी, सुगन्धित होती है। पत्र–१–२ फुट लम्बा विषमपक्षवत् होता है। पत्रक–६–९ इञ्च लम्बे, लट्वाकार-आयताकार या अंडाकार, किंचित् वक्र, आम्रगन्धि, ५–११ की संख्या में होते हैं। सिरायें–१०–३० अभिमुख क्रम से होती हैं। पुष्प–हरिताभ, श्वेतवर्ण, छोटे, बड़ी अन्त्य मंजरियों में होते हैं। फल पीत–हरित, चिकने, अंडाकार, बड़े बेर के सदृश, १½–३ इञ्च लम्बे होते हैं। ये कच्चे में कषाय अम्ल तथा पकने पर मधुराम्ल होते हैं। फल में १–३ बीज होते हैं जिनमें एक ही पूर्ण विकसित, आयताकार–अंडाकार, कठिन होता है। वसन्त में पुष्प आते हैं तथा शरद्–हेमन्त में फल पकते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारत में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक होता है।

रासायनिक संघटन—इसके फल में आर्द्रता ९०.३, प्रोटीन ०.७, वसा ३, सूत्र १, कार्बोहाइड्रेट ४.५ तथा खनिज पदार्थ ०.५ प्रतिशत होता है। कैलशियम ३६, फास्फरस ११, लौह ३.९, विटामिन सी २१ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। शर्करा में ग्लुकोज १.७, फ्रक्टोज १.८ तथा सक्रोज २.९ प्रतिशत होते हैं। विटामिन ए तथा बी भी होते हैं।

गुणकर्म—आम्रातक (आमड़ा) का कच्चा फल अम्ल, उष्ण, सर तथा रोचन होता है। पका फल मधुराम्ल, शीतवीर्य, वातपित्तशामक तथा बल्य है[1]।

५४. करमर्द

परिचय

कुल—कुटज-कुल (एपोसाइनेसी–Apocynaceae)।

नाम—लै०–कैरिसा कैरेण्डस (Carissa carandus Linn.); सं०–अविग्न, कृष्णपाकफल (जिसके फल पकने पर कृष्णाभ हो जायँ); क्षीरफेना (फल से दुग्धवत् फेन निकले); हि०–करौंदा; बं०–करमचा; ता०–कलक; ते०–वका।

स्वरूप—इसका द्विविभक्तशाखी, युग्मकंटकित गुल्माकार वृक्ष होता है। पत्र–१–३ इञ्च लंबे, १–१½ इञ्च चौड़े, गोलाकार, चिकने और मांसल होते हैं।

---

1. 'आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत् सरम्।
पक्वं तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम्॥
तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम्।
गुरु बल्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पुष्प-श्वेतवर्ण, जुही के सदृश होते हैं। फल—छोटे, ३/४–१ लंबे, अंडाकार, मौलसिरी के फल के सदृश, पहले श्वेतरक्त किन्तु पकने पर कृष्णवर्ण हो जाते हैं। कच्चे फलों को काटने पर सफेद फेन दूध की तरह निकलता है। फलों के भीतर चार बीज त्रिकोणाकार होते हैं। कच्चे फल कषायाम्ल तदा पके फल मधुराम्ल होते हैं। वसन्तकाल में पुष्प तथा वर्षाकाल में फल लगते हैं।

जाति—इसकी दो जातियां होती हैं (१) बृहत्, (२) लघु। छोटी जाति को करमर्दिका (करौंदी या जंगली करौंदा) कहते हैं। इसके पत्र और फल छोटे होते हैं। इसकी छोटी झाड़ी जंगलों में होती है। इसका लैटिन नाम कैरिसा स्पाइनेरम (Carissa spinarum Linn.) है।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत में प्रायः सर्वत्र बालुकामय या पथरीले प्रदेशों में होता है।

रासायनिक संघटन—इसके फल में आर्द्रता १८·२, प्रोटीन २·३, वसा ६·६, कार्बोहाइड्रेट ६७·१, खनिज पदार्थ २·८ प्रतिशत होते हैं।

गुणकर्म—कच्चा फल अम्ल, उष्ण, रुचिकर, तृष्णाशामक, कफपित्तवर्धक है। पका फल मधुर, वातपित्तशामक है[1]।

४५. कपित्थ

परिचय

कुल—जम्बीर-कुल (रुटेसी-Rutaceae)।

नाम—लै०-फेरोनिया लिमोनिया (Feronia limonia (Linn.) Swingle); सं०-कपित्थ (वन्दरों का प्रिय फल); दधित्थ (दधि के समान फलमज्जा); सुरभिच्छद (सुगन्धित पत्र); हि०-कैंत, कैथ; बं०-कैतबेल; म०-कवठ; गु०-कोठ; ता०-विलंगा; ते०-वेलगा; अं०-वुड-ऐप्ल (Wood apple); एलिफैंट एप्ल (Elephant apple.).

स्वरूप—इसका पर्णपाती वृक्ष १५–३० फीट ऊँचा और २–४ फीट मोटा होता है। शाखाओं पर दृढ़, सरल काँटे होते है। पत्र-एकान्तर, पक्षवत्, ३–४ इञ्च लंबे, पत्रक-छोटे लट्वाकार या अभिलट्वाकार होते हैं। पत्तों को मसलने

---

१. करमर्दः सुषेणः स्यात् कृष्णपाकफलस्तथा।
तस्माल्लघुफला या तु सा ज्ञेया करमर्दिका॥
करमर्दद्वयं स्वाममम्लं गुरु तृषाहरम्। उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम्॥
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित्।' (भा. प्र.)
'लवणार्द्रकसंयुक्तं सुपिष्टं वारिणा युतम्। कारमर्दं करैसंधं सप्तभागसितान्वितम्॥
वातहृद्रुचिदं बल्यं ह्यमम्लतरं स्मृतम्। रक्तपित्तकरं चोक्तमकण्ठ्यं कारमर्दकम्॥'
(क्षे. कु.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

से सुगन्ध आती है। पञ्चपल्लव के अन्तर्गत इसके पत्र आते हैं : **पुष्प**–रक्ताभ श्वेत, मंजरियों में लगते हैं। **फल**–गोल, छोटे बेल की तरह १–२½ इञ्च व्यास के, कठिन, आवरणयुक्त होते हैं। फलमज्जा सुगन्धित होती है। **बीज**–अनेक, छोटे, चपटे होते हैं। बसन्त में फूल आते हैं तथा शीतकाल में फल पकते हैं।

जाति—इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक छोटे, खट्टे फल तथा दूसरे में बड़े और मधुर फल लगते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह प्रायः समस्त भारत विशेषतः शुष्क प्रदेशों में पाया जाता है। दक्षिण भारत, महाराष्ट्र तथा मध्यप्रदेश में विशेष होता है।

रासायनिक संघटन—फल में आर्द्रता ६६·५, प्रोटीन ७·३, वसा ०·६, खनिज पदार्थ १·६, सूत्र ५·२, कार्बोहाइड्रेट १५·५, कैलशियम ०·१३, फास्फरस ०·११ प्रतिशत होता है। लोह ०·६, राइवोफ्लेविन १७० माइक्रोग्राम तथा विटामिन सी २ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। अम्ल ७·६–२·३% तक तथा पेक्टिन ३–५% होता है। पत्तों से ०·७३% एक सुगन्धित तैल निकलता है।

गुणकर्म—कपित्थ का कच्चा फल कषाय, संग्राही, स्वरभेदजनक तथा वातवर्धक होता है। पका फल मधुराम्ल, वातपित्तशामक, ग्राही, तृष्णाशामक है[1]।

५६. कोशाम्र

Schleichera oleosa (Lour.) Oken.

हि०—कुसुम

गुणकर्म—कोशाम्र (कुसुम) का फल अम्ल, गुरु, उष्ण, वातशामक, कफपित्तवर्धक, ग्राही होता है। पका फल लघु, उष्ण, दीपन, कफवातशामक होता है[2]।

५७. प्राचीनालमक

कुल—विकंकत–कुल (फ्लैकोर्टिएसी–(Flacourtiacee)

नाम—लै०–फ्लैकोर्टिया जैंगोमस (Flacourtia jangomas Raeusch); हि० बं०–पनियाला; अं०–Puneala plum.

स्वरूप—इसका वृक्ष १०–३० फीट ऊंचा होता है। तरुण काण्ड पर, बड़े, तीक्ष्ण, मुड़े हुए कण्टक होते हैं। **पत्र**–२–४ इञ्च लंबे, आयताकार–भालाकार,

१. 'कपित्थमामं संग्राहि कषायं लघु लेखनम्। पक्वं गुरु तृषाहिक्काशमनं वातपित्तजित्॥
स्वाद्वम्लं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम्।' (भा० प्र०)
कपित्थमामं कण्ठघ्नं विषघ्नं ग्राहि वातलम्।
मधुराम्लकषायत्वात् सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्॥
परिपक्वं तु दोषघ्नं विषघ्नं ग्राहि गुर्वपि।' (च. सू. २७)

२. तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोष्णं गुरु पित्तलम्।
पक्वं तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लंबाग्र, दन्तुर, चिकने होते हैं। **पुष्प**–छोटे, मञ्जरियों में होते हैं। **फल**–अण्डाकार, १ इञ्च व्यास का, पकने पर बैंगनी होता है। फलमज्जा भूरे हरे रंग की, सरस होती है जिसमें १०–१२ चपटे, तीक्ष्णधार, $\frac{1}{8}$ इञ्च व्यास के बीज होते हैं। पुष्प जून–जुलाई में आते हैं तथा फल शरद्–हेमन्त में पकते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह उत्तर प्रदेश, विहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम तथा दक्षिण भारत में होता है।

रासायनिक संघटन—फल में ९.९% टैनिन तथा बीजों में एक स्थिर तैल होता है।

गुणकर्म—प्राचीनामलक का फल त्रिदोषशामक, विषघ्न तथा ज्वरघ्न है[1]।

५८. लवली

कुल—एरण्ड-कुल (युफॉर्बिएसी-Euphorbiaceae)

नाम—लै०—सिक्का एसिडा (Cicca acida (Linn.) Merr.); हि०—हरफारेवड़ी; बं०—हरिफल; ता० कन्न० मल०—अरनेल्लि।

स्वरूप—इसका वृक्ष २० फीट तक ऊँचा होता है। शाखाएँ स्थूल, प्रच्युत प्रशाखाओं के चिह्न से लाञ्छित, प्रायः ग्रन्थिल होती हैं जिनके शीर्षभाग पर ६–१५ इञ्च लंबे, आपाततः पक्षवत् पत्रों (मूल भाग में अनेक छोटे उपपत्रों से युक्त) का गुच्छ होता है। **पत्र** (आपाततः पत्रक)–१–२.५ इञ्च लंबे, निचले छोटे और गोल तथा ऊपरी बड़े और लट्वाकार–भालाकार, तीक्ष्णाग्र होते हैं। **पुष्प**–प्रायः कोमल मञ्जरियों से उद्भूत होते हैं। पुंपुष्प रक्तवर्ण, छोटे तथा स्त्रीपुष्प हरित, बड़े होते हैं। **फल**–गोलाकार, दबे हुए, ६–८ परिखायुक्त, आमलकीबीज के सदृश, लगभग $\frac{3}{4}$ इञ्च व्यास के होते हैं। **पुष्प**–मई में तथा फल जून–जुलाई में आते हैं। दक्षिण भारत में दो बार फल आते हैं—एक अप्रिल–मई में तथा दूसरा अगस्त–सितम्बर में। ये कषाय–अम्ल होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यह मूलतः मडागास्कर–निवासी है। आजकल प्रायः सर्वत्र उद्यानों में लगाया मिलता है।

रासायनिक संघटन—फलों में आर्द्रता ८९.६३, प्रोटीन ०.९, वसा ०.७६, सूत्र ०.५८, कार्बोहाइड्रेट ७.२९, राख ०.८४ तथा सिरकाम्ल १.७ प्रतिशत होता है।

गुणकर्म—लवलीफल कषाय, अम्ल, मधुर, गुरु, रूक्ष, कफपित्तवर्धक, वातशामक है तथा अश्मरी और अर्श में उपयोगी है[2]।

---

१. प्राचीनमलकं चैव दोषघ्नं गरहारि च। (द्र. सं.)
प्राचीनामलकं दोषत्रयजिज्ज्वरघाति च। (भा. प्र.)

२. लवलीफलमश्मार्शःकफपित्तकरं गुरु। विशदं रोचनं रूक्षं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे॥ (भा. प्र. (

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

५९. जम्बू

Syzygium cumlni (Linn.) Skeels.

गुणकर्म—जम्बू (जामुन) के फल कषाय-अम्ल-मधुर, रूक्ष, वातवर्धक, कफपित्तशामक तथा ग्राही हैं। जम्बूफल वातवर्धक द्रव्यों में श्रेष्ठ माना गया है। यह ग्रहणीविकार, प्रमेह, मेदोरोग आदि में लाभकर है[1]।

६०. उदुम्बर

Ficus glomerata Roxb.

हि०—गूलर

गुणकर्म—उदुम्वर (गूलर) के कच्चे फलों का शाक बनाते हैं तथा पके फल खाये जाते हैं। कच्चे फल कषाय, शीतवीर्य, स्तम्भन हैं तथा पके फल कषाय-मधुर, स्तम्भन, रक्तपित्तशामक तथा बल्य हैं। ये ग्रहणी, रक्तपित्त, प्रमेह आदि में परम पथ्य हैं[2]।

६१. तिन्दुक

Diospyros peregrina (Gaertn.) Guerke.

हि०—गाभ, तेंदु

गुणकर्म—तिन्दुक (गाभ) का कच्चा फल अत्यन्त कषाय तया पक्व फल कषाय-मधुर होता है। यह कफपित्तशामक तथा उत्तम स्तम्भन है। रक्तपित्त, प्रमेह आदि में उपयोगी है[3]।

६२. बकुल

Mimusops elengi Linn.

हि०—मौलसिरी

गुणकर्म—बकुल (मौलसिरी) के फल कषाय-मधुर, शीत, कफपित्तशामक,

---

१. जाम्बवं कफपित्तघ्नं ग्राहि वातकरं परम्। (च. सू. २७)
अत्यर्थं वातलं ग्राहि जाम्बवं कफपित्तजित्। (सु. सू. ४६)
जाम्बवं वातजननानाम्। (च. सू. २५)

२. औदुम्बरं कषायं स्यात् पक्वं तु मधुरं हिमम्।
कृमिकृत् रक्तपित्तघ्नं मूर्च्छादाहतृषापहम्॥ (ध. नि.)
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधानां फलानि च।
कषायमधुराम्लानि वातलानि गुरूणि च॥ (च. सू. २७)

३. स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु।
पक्वं पित्तप्रमेहास्रश्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वातवर्धक, हृद्य, ग्राही तथा दाँतों के लिए उपयोगी होते हैं[1]।

६३. कदम्ब

Anthocephelus indicus Miq.

गुणकर्म—कदम्ब के फल गुरु, कषाय-मधुर, शीतवीर्य, अभिष्यन्दी तथा वात-पित्तशामक होते हैं[2]।

६४. क्षीरिका

कुल—मधूक-कुल (सैपोरसी–Sapotaceae)

नाम—लै०–मैनिलकरा हेक्जेण्ड्रा (Manilkara hexandra Roxb.); सं०–राजादन; हि०–खिरनी; म०–राजण; गु०–रायण; ता०—पल्ल; ते०–पोल्ला।

स्वरूप—इसका मध्यमाकार सदाहरित वृक्ष होता है। **पत्तियाँ**–अण्डाकार-अभिलट्वाकार, चर्मवत्; **पुष्प**–एकल या गुच्छबद्ध, श्वेत या पीताभ; **फल**–अण्डाकार, १½–२ सें० मी० लंबे, रक्ताभ पीत होते हैं जिनमें एक (कभी-कभी २), अण्डाकार, १–१½ सें० मी० लंबा, रक्ताभ भूरा, चमकीला बीज होता है।

उत्पत्तिस्थान—यह विशेषतः मध्य एवं दक्षिण भारत के शुष्क सदाहरित जंगलों में पाया जाता है। यों प्रायः भारत में सर्वत्र लगाया मिलता है।

रासायनिक संघटन—फलों में आर्द्रता ६८·६१, प्रोटीन ०·४८, वसा २·४२, कार्बोहाइड्रेट २७·७७, खनिज द्रव्य ०·७५ प्रतिशत होते हैं। कैलशियम ८३, फास्फरस १७, लौह ०·९२ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० तथा विटामिन ए, बी और सी पाये जाते हैं। बीजो से २४·६% खाद्य तैल निकलता है जो 'रायण तैल' कहलाता है।

गुणकर्म—क्षीरिका (खिरनी) का फल स्निग्ध, शीत, गुरु, त्रिदोषशामक, बल्य, वृष्य तथा बृंहण है[3]।

---

१. तत्फलं मधुरं रूक्षं कषायं विशदं हिमम्।
कफपित्तकरं हृद्यं बन्ध्यं ग्राहि च वातलम्॥ (नि. कै.)
सुगन्धि विशदं हृद्यं बाकुलम्। (सु. सू. ४६)

२. तत्फलं मधुरं शीतं गुरु पित्तास्रवातजित्। (कै. नि.)
केलूटं च कदम्बं च नदीमाषकमैन्दुकम्।
विशदं गुरु शीतं च समभिष्यन्दि चोच्यते॥ (सु. सू. २७)

३. क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु।
तृष्णामूर्च्छामदभ्रान्तिक्षयदोषत्रयास्रजित्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

६५. करीर

Capparis decidua Edgew.

हि०—करील

गुणकर्म—करीर के फल मधुर, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, कफवातशामक होते हैं[1]।

६६. शमी

Prosopis cineraria Druce.

हि०—छोंकर

गुणकर्म—शमी (छोंकर) के फल आवश्यकता पड़ने पर खाये जाते हैं। अधिकतर इनका शाक में प्रयोग होता है। ये फल मधुर, रूक्ष, उष्ण तथा केशघ्न होते हैं[2]।

६७. पीलु

Salvadora persica Linn.

हि०—पीलु

गुणकर्म—पीलु के फल तिक्तकटु, तीक्ष्ण, उष्ण, स्निग्ध, सर, भेदन, विषघ्न, कफवातशामक तथा पित्तवर्धक है। जो पक्व फल मधुर–तिक्त होता है वह ईषत् उष्ण तथा त्रिदोषशामक होता है। गुल्मरोग में उपयोगी है[3]।

ग्राह्याग्राह्य फल

बेल को छोड़ कर सभी फल परिपक्व होने पर ही गुणवान् होते हैं। बेल कच्ची अवस्था में श्रेष्ठ (औषधीय) गुणों से युक्त होता है (आहारीय गुण तो पक्व में है ही)।

जो फल विकारग्रस्त, क्रिमियुक्त, अधिक पका (उतरा हुआ), अकाल में उत्पन्न तथा अपरिपक्व हों उन्हें नहीं खाना चाहिए[4]।

---

१. करीरफलानि च स्वादुतिक्तकटूष्णानि कफवातहराणि च। (सु. सू. ४६)

२. गुरूष्णं मधुरं रूक्षं केशघ्नं च शमीफलम्। (च. सू. २७)

३. तिक्तं पित्तकरं तेषां सरं कटुविपाकि च।
तीक्ष्णोष्णं कटुकं पीलु सस्नेहं कफवातजित्॥(सु. सू. ४६)
पीलु…दोषघ्नं गरहारि च। (च. सू. २७)
'पीलु श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत्।
स्वादु तिक्तं च यत् पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत्॥ (भा. प्र.)

४. फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम्।
बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणोत्तरम्॥
व्याधितं क्रिमिजुष्टं च पाकातीतमकालजम्। वर्जनीयं फलं सर्वमपर्यागतमेव च॥
(द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पञ्चम अध्याय

मांस-वर्ग

शरीर में मांसतत्त्व की आपूर्त्ति का सर्वोत्तम माध्यम मांस है[1]। इस प्रकरण में प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं में अनेक जन्तुओं का उल्लेख किया है जिनका मांस उपयोग में आता है। जन्तुओं का वर्गीकरण भी वैज्ञानिक रीति से दिया गया है जो जन्तुशास्त्र के इतिहास में रुचि रखने वालों के लिए एक महत्त्वपूर्ण सामग्री है। शाकाहारी जन्तुओं की अपेक्षा मांसाहारी जन्तुओं का मांस विशेष मांसवर्धक (बृंहण) बतलाया गया है[2]।

वर्गीकरण

चरक ने मांस योनिभेद से आठ प्रकार का कहा है—प्रसह, भूमिशय, आनूप मृग, जलज, जलेचर, जांगलमृग, विष्किर और प्रतुद। झपटने वाले जन्तु प्रसह कहलाते हैं यथा बिल्ली, बाज आदि। भूमि के भीतर विल बनाकर रहनेवाले नकुल, मण्डूक आदि भूमिशय (बिलेशय) कहलाते हैं। आनूप देश में रहने वाले गज, महिष आदि पशु आनूप हैं। जल में रहने वाले कच्छप, मत्स्य आदि जलज (बारिशय) तथा हंस, बलाका आदि जल में विचरण करने बाले पक्षी जलचर कहलाते हैं! हरिण आदि मृग जांगल हैं। अन्न को बिखेर कर खाने वाले लावा, बटेर आदि पक्षी विष्किर तथा चोंच मारने वाले पक्षी प्रतुद कहलाते हैं यथा कबूतर, तोता आदि[1]।

गुणधर्म की दृष्टि से ये आठ भी दो वर्गों में विभक्त हो जाते हैं :—

१. **गुरु**—प्रसह, भूमिशय, आनूप, जलज तथा जलचर इस वर्ग में आते हैं। ये गुरु, स्निग्ध, मधुर, उष्ण, परम बल्य, वृष्य, वातशामक तथा कफपित्तवर्धक हैं।

२. **लघु**—जांगल, प्रतुद और विष्किर का मांस लघु, कषायमधुर तथा शीत होता है[2]।

---

१. तस्मात् मांसमाप्यायते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः। (च. शा. ६)
'मांसं बृंहणीयानाम्'। (च. सू. २५)

२. शुष्यते क्षीणमांसाय कल्पितानि विधानवित्।
दद्यात् मांसादमांसानि बृंहणानि विशेषतः॥ (च. चि. ८)
मांसाशिनां च मांसानि भक्षयेद् विधिविन्नरः।
विशुद्धमनसस्तस्य मांसं मांसेन वर्धते॥ (सु. चि. १)

३. च. सू. २७।५३–५५।

४. 'प्रसहा भूशयानूपवारिजा वारिचारिणः। गुरूष्णस्निग्धमधुरा: बलोपचयवर्धनाः॥
वृष्या परं वातहराः कफपित्तविवर्धनाः।'
'लावाद्यो वैष्किरो वर्गः प्रतुदाः जांगलाः मृगाः।
लघवः शीतमधुराः सकषाया हिता नृणाम्॥ (च. सू. २७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुश्रुत ने मांस के छः वर्ग बनाये हैं—जलेशय, आनूप, ग्राम्य, क्रव्यभुज, एकशफ तथा जांगल। इन्हें भी पुनः जांगल और आनूप दो वर्गों में व्यवस्थित किया। जांगल में आठ प्रकार के मांस आते हैं—जंघाल, विष्किर, प्रतुद, गुहाशय, प्रसह, पर्णमृग, बिलेशय और ग्राम्य। आनूप वर्ग पाँच प्रकार का है—कूलचर, प्लव, कोषस्थ, पादी और मत्स्य। मत्स्य भी दो प्रकार हैं—नादेय और सामुद्र[1]।

सुश्रुतोक्त वर्गीकरण

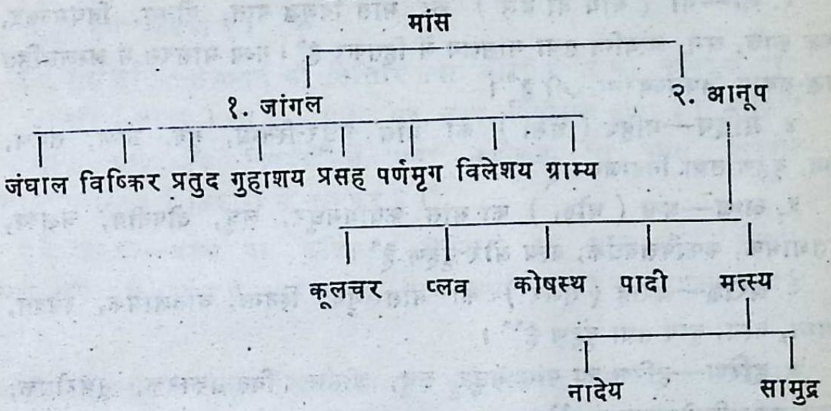

भावमिश्र ने सुश्रुत का अनुसरण किया है। तदनुसार जांगल और आनूप मांस के गुणधर्म बतलाये गये हैं।

१. **जांगल मांस**—मधुर-कषाय, लघु, रूक्ष, दीपन, बल्य, बृंहण, वृष्य और वातव्याधि, प्रमेह, श्लीपद, गलगण्ड आदि विकारों में लाभकर है।

२. **आनूप मांस**—मधुर, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, अभिष्यन्दी, कफवर्धक, अग्निशामक तथा बृंहण है[2]।

गुण-कर्म

आकरग्रन्थों में विभिन्न जन्तुओं के मांस के गुणकर्म विस्तार से वर्णित हैं, उन्हें वहीं देखें। यहाँ कतिपय प्रचलित मांसों के गुणकर्म दिये जा रहे हैं।

---

१. सु. सू. ४६ (मांसवर्ग)।

२. 'जाङ्गला मधुरा रूक्षास्तुवरा लघवस्तथा।
बल्यास्ते बृंहणा वृष्या दीपनाः दोषहारिणः॥
मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्‌गदत्वार्दिते तथा।
बाधिर्यमरुचिच्छर्दिप्रमेहमुखजान् गदान्॥
श्लीपदं गलगंडञ्च नाशयन्त्यनिलामयान्।
'आनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्निसादनाः।
श्लेष्मलाः पिच्छिलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम्॥
तथाऽभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायोऽपथ्यतमाः स्मृताः।' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१. **अजा**—अजा (बकरी) का मांस न अतिशीत, गुरु और स्निग्ध, अनभिष्यन्दी, अदोषकारक तथा शरीरधातु (मांस) के सामान्य से बृंहण (मांसधातुवर्धक) है[१]। अजा का मांस विशेषतः शोषरोग में प्रशस्त है[२]। छागलाद्य घृत छागल (बकरे) के मांस[३] में अष्टवर्ग का योग कर बनाते हैं जो राजयक्ष्मा रोग के लिए उत्तम औषध है[४]।

२. **अवि**—अवि (भेड़) का मांस मधुर, शीत और बृंहण है[५]।

३. **गौ**—गौ (गाय या बैल) का मांस विशुद्ध वात, पीनस, विषमज्वर, शुष्क कास, श्रम, अत्यग्नि तथा मांसक्षय में हितकर है[६]। गव्य मांसरस में अम्लसहित सिद्ध यवागू विषमज्वरनाशिनी है[७]।

४. **महिष**—महिष (भैंसा) का मांस मधुर-स्निग्ध, गुरु, उष्ण, तर्पण, वृष्य, बृंहण तथा निद्राजनन है[८]।

५. **अश्व**—अश्व (घोड़ा) का मांस कषायमधुर, लघु, दीपनीय, चक्षुष्य, वातशामक, कफपित्तवर्धक, बल्य और बृंहण है[९]।

६. **वराह**—वराह (सूअर) का मांस गुरु, स्निग्ध, वातशामक, स्वेदन, श्रमघ्न, बल्य, वृष्य तथा बृंहण है[१०]।

७. **हरिण**—हरिण का मांस मधुर, लघु, शीतल, विबन्धकारक, मूत्ररोधक, दीपन तथा त्रिदोषशामक है[११]।

---

१. नातिशीतं गुरु स्निग्धं मांसमाजमदोषलम् ।
शरीरधातुसामान्यादनभिष्यन्दि बृंहणम् ॥ (च. सू. २७)

२. सु. उ. ४१।५४ ।

३. छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादुपाकं त्रिदोषनुत् ।
नातिशीतमदाहि स्यात् स्वादु पीनसनाशनम् ॥
परं बलकरं रुच्यं बृंहणं वीर्यवर्धनम् । (भा. प्र.)

४. वृन्दमाधव ।

५. मांसं मधुरशीतत्वाद् गुरु बृंहणमाविकम् । (च. सू. २७)

६. गव्यं केवलवातेषु पीनसे विषमज्वरे । शुष्ककासश्रमात्यग्निमांसक्षयहितं च तत् ॥
(च. सू. २७)

७. गव्यमांसरसैः साम्ला विषमज्वरनाशिनी । (च. सू. २।३१)

८. स्निग्धोष्णं मधुरं वृष्यं माहिषं गुरु तर्पणम् ।
दार्ढ्यं बृहत्त्वमुत्साहं स्वप्नं च जनयत्यपि ॥ (च. सू. २७)

९. अश्वमांसं तु तुवरं वह्निकृत् कफपित्तलम् ।
वातहृद् बृंहणं बल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु ॥ (भा. प्र.)

१०. स्नेहनं बृंहणं वृष्यं श्रमघ्नमनिलापहम् ।
वराहपिशितं बल्यं रोचनं स्वेदनं गुरु ॥ (च. सू. २७)

११. हरिणः शीतलो बद्धविण्मूत्रो दीपनो लघुः ।
रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्निपातहा ॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

८. **मयूर**—मयूर (मोर) का मांस बल्य, वातशामक, मांसवर्धक, शुक्रल तथा चक्षु, श्रोत्र, मेधा, अग्नि, आयु, वर्ण और स्वर के लिए अत्यन्त लाभकर है[1]।

९. **वर्त्तक**—वर्त्तक (वटेर) का मांस शीतल, त्रिदोषघ्न, ज्वरघ्न, शुक्रल, बल्य तथा रुचिकर है[2]।

१०. **वर्त्तीक**—वर्त्तीक (बगेरा) का मांस मधुर, शीत, रूक्ष, कफपित्त-शामक है[3]।

११. **लाव**—लाव (लवा) का मांस कषाय-मधुर, लघु, दीपन, ग्राही, सन्निपातहर तथा विषघ्न है।

१२. **तित्तिरि**—कृष्णवर्ण को तित्तिरि तथा गौरतित्तिरि को कपिञ्जल कहते हैं। तित्तिरि (तीतर) का मांस मधुर, गुरु, उष्ण, त्रिदोषघ्न होता है। तित्तिरि का मांस वातप्रधान विकारों में तथा कपिञ्जल का मांस मन्दवात (पित्त श्लेष्मोल्वण) विकारों में लाभकर है।[4]

१३. **चटक**—चटक या कुलिंग (गौरैया) का मांस मधुर, स्निग्ध, सन्निपातहर, विशेषरूप से वातप्रशमन, बल्य तथा वृष्य है। गृहचटक अत्यन्त शुक्रल है[5]।

१४. **कुक्कुट**—कुक्कुट (मुर्गा) का मांस गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, वातशामक,

---

१. दर्शनश्रोत्रमेधाग्निवयोवर्णस्वरायुषाम् ।
बर्हीं हिततमो बल्यो वातघ्नो मांसशुक्रलः ॥ (च. सू. २७)

२. वर्त्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः ।
सुरुच्यः शुक्रदो बल्यो वर्त्तकाऽल्पगुणा ततः ॥ (भा. प्र.)

३. वर्त्तीको मधुरः शीतो रूक्षश्च कफपित्तनुत् । (भा. प्र.)
लावाः कषायमधुरा: लघवोऽग्निविवर्धनाः ।
सन्निपातप्रशमनाः कटुकाश्च विपाकतः ॥ (च. सू. २७)
'लावा वह्निकराः स्निग्धा गरघ्नाः ग्राहकाः हिताः । (भा. प्र.)

४. गुरूष्णो मधुरो नातिधन्वानूपनिषेवणात् ।
तित्तिरिः संजयेच्छीघ्रं त्रीन् दोषाननिलोल्वणान् ॥
पित्तश्लेष्मविकारेषु सरक्तेषु कपिञ्जलाः ।
मन्दवातेषु शस्यन्ते शैत्यमाधुर्यलाघवात् ॥ (च. सू. २७)
'तित्तिरिर्बलदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः ।
श्वासकासज्वरहरस्तस्माद् गौरोऽधिको गुणैः ॥ (भा. प्र)

५. चटकाः मधुराः स्निग्धाः बलशुक्रविवर्धनाः ।
सन्निपातप्रशमनाः शमना मारुतस्य च ॥ (च. सू. २७)
कुलिङ्गः शीतलः स्निग्धः स्वादुः शुक्रकफप्रदः ।
सन्निपातहरो वेश्मचटकश्चातिशुक्रलः ॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कफकारक, बल्य, वृष्य, बृंहण, चक्षुष्य है। जंगली मुर्गा वातपित्तशामक तथा विषमज्वरनाशक है।[1]

१५. **कपोत**—कपोत (कबूतर) का मांस कषायमधुर, शीतवीर्य तथा रक्तपित्तशामक है। जंगली कबूतर इससे लघु, संग्राही तथा मूत्र को कम करनेवाले होते है।[2]

१५. **शश**—शश (खरगोश) का मांस लघु, रूक्ष, मधुर-कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य तथा त्रिदोषघ्न है।[3]

१६.(क) **मूषिक**—मूषिक (चूहा) का मांस मधुर, स्निग्ध, व्यवायी तथा शुक्रल है।[4] मूषकमांस तथा वसा का लेप एवं इससे सिद्ध तैल का अभ्यंग गुदभ्रंश और योनिभ्रंश में लाभकर है।[5]

१७. **मण्डूक**—मण्डूक (मेढ़क) का मांस कफवर्धक और बल्य है।[6]

१८. **कूर्म**—कूर्म (कछुआ) का मांस वातशामक, बल्य, वृष्य, चक्षुष्य, मांसवर्धक, मेध्य तथा शोष रोग में लाभकर है।[7]

१९. **कर्कटक**—कृष्ण कर्कटक (काला केकड़ा) का मांस बलवर्धक, ईषत् उष्ण, वातशामक है। सफेद केकड़ा वातपित्तशामक सन्धानकर, विबन्धनाशक तथा मूत्रल है[8]।

---

१. कुक्कुटो बृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णोऽनिलहृद् गुरुः।
चक्षुष्यः शुक्रकफकृद् बल्यो वृष्यः कषायकः॥
आरण्यकुक्कुटः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः।
वातपित्तक्षयवमिविषमज्वरनाशनः ॥ (भा. प्र.)

२. कषायमधुराः शीताः रक्तपित्तनिबर्हणाः।
विपाके मधुराश्चैव कपोताः गृहवासिनः॥
तेभ्यो लघुतराः किञ्चित् कपोता वनवासिनः।
शीताः संग्राहिणश्चैव स्वल्पमूत्रकराश्च ते॥ (भा. प्र.)

३. कषायो विशदो रूक्षः शीतः पाके कटुर्लघुः।
शशः स्वादुः प्रशस्तश्च सन्निपातेऽनिलावरे॥ (च. सू. २७)

४. मूषिको मधुरः स्निग्धो व्यवायी शुक्रवर्धनः। (द्र. सं.)

५. मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपयेत्।
स्विन्नमूषकमांसेन त्वथवा स्वेदयेद् गुदम्॥ (यो. र.)

६. मण्डूकः श्लेष्मलो नातिपित्तलो बलकारकः। (भा. प्र.)

७. बल्यो वातहरो वृष्यश्चक्षुष्यः बलवर्धनः।
मेधास्मृतिकरः पथ्यः शोषघ्नः कूर्म उच्यते॥ (च. सू. २७)

८. कृष्णकर्कटकस्तेषां बल्यः कोष्णोऽनिलापहः।
शुक्लः सन्धानकृत् सृष्टविण्मूत्रोऽनिलपित्तहा॥ (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२०. **कोशस्थ जन्तु**—कोशस्थ शंख, शुक्ति, शम्बूक (घोंघा) आदि के मांस मधुर, स्निग्ध, शीत, वातपित्तशामक, कफवर्धक बल्य हैं।[१]

२१. **मत्स्य**—मत्स्य (मछली) मधुर, स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य, वातशामक, कफपित्तवर्धक, बल्य, वृष्य एवं बृंहण है। नादेय मत्स्य (नदी में होने वाली मछलियाँ) मधुर, गुरु, उष्ण, वातशामक, रक्तपित्तकारक, वृष्य तथा अल्पमल; सामुद्र मत्स्य (समुद्र की मछलियाँ) कफवर्धक, ईषत् पित्तवर्धक, वातहर तथा बल्य है। मछलियों में रोहित श्रेष्ठ है।[२]

अण्डे

धार्तराष्ट्र (हंसभद), चकोर, कुक्कुट, मयूर तथा चटक के अण्डे शुक्रदौर्बल्य, कास, हृद्रोग, उरःक्षत में लाभकर हैं। ये मधुर, अविदाही तथा सद्योबलकर हैं।[३] कुक्कुटाण्ड मधुर-स्निग्ध, उष्ण, वातशामक, दीपन, गर्भस्थापन, बल्य तथा परम वाजीकर है।[४]

मांस के गुरु-लघु का विचार

मांस के गुरुत्व या लघुत्व का विचार निम्नांकित आधार पर किया जाता है :—

---

१. शंखकूर्मादयः स्वादुरसपाकाः मरुद्नुदः।
शीताः स्निग्धाः हिताः पित्ते वर्चस्याः श्लेष्मवर्धनाः॥ (सु. सू. ४६)

२. गुरूष्णा मधुरा बल्या बृंहणाः पवनापहाः।
मत्स्या स्निग्धाश्च वृष्याश्च बहुदोषाः प्रकीर्त्तिताः॥
शैवलाहारभोजित्वात् स्वप्नस्य च विवर्जनात्।
रोहितो दीपनीयश्च लघुपाको महाबलः॥ (च. सू. २७)
नादेया मधुराः मत्स्या गुरवो मारुतापहाः।
रक्तपित्तकराश्चोष्णाः वृष्याः स्निग्धाल्पवर्चसः॥
सामुद्राः गुरवः स्निग्धाः मधुरा नातिपित्तलाः।
उष्णा वातहरा वृष्या वर्चस्या श्लेष्मवर्धनाः॥
बलावहा विशेषेण मांसाशित्वात् समुद्रजाः। (सु. सू. ४६)
मत्स्याः स्निग्धोष्णमधुरा वातजित् मललोमनाः।
पित्तमांसबलश्लेष्मशुक्राभिष्यन्दकारकाः॥
रोहितः सर्वमत्स्यानां वरो वृष्योऽर्दितार्तिजित्।
कषायानुरसः स्वादुर्वातघ्नो नातिपित्तकृत्॥ (द्र. सं.)

३. धार्तराष्ट्रचकोराणां दक्षाणां शिखिनामपि।
चटकानां च यानि स्युरण्डानि च हितानि च॥
क्षीणरेतःसु कासेषु हृद्रोगेषु क्षतेषु च।
मधुराण्यविदाहीनि सद्योबलकराणि च॥ (च. सू. २७)

४. कुक्कुटाण्डं तु मधुरं स्निग्धमुष्णं चलापहम्।
दीपनं गर्भकृद् बल्यं भृशं वाजीकरं हि तत्॥ (स्व०)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१. **चर**[1]—जन्तु के आहार और निवास को चर कहते हैं। जाङ्गल एवं तृणाशी जन्तुघ्नों का मांस लघु तथा आनूप एवं मांसाद जन्तुओं का मांस गुरु होता है।

२. **शरीरावयव**—शरीर के किस अवयव से मांस लिया गया है इस पर भी उसका गुरुत्व-लघुत्व निर्भर करता है। यथा स्कन्धगत मांस की अपेक्षा शिरोगत मांस गुरु होता है[2]।

३. **स्वभाव**—यथा अजामांस महिषमांस की अपेक्षा लघु होता है।

४. **धातु**—शरीरगत धातु उत्तरोत्तर गुरु होते हैं। यथा रक्त की अपेक्षा मांस, मांस की अपेक्षा मेद गुरु होता है।[3]

५. **क्रिया**—जो जन्तु चेष्टावान् होते हैं उनका मांस आलसी जन्तुओं की अपेक्षा लघु होता है। यथा हरिण का मांस अजामांस से लघु होता है। इसी प्रकार सर (झील) में होने वाली मछलियों का छाती के बल चलने के कारण पूर्वभाग लघु होता है।

६. **लिङ्ग**—पुरुषों की अपेक्षा स्त्री का मांस लघु होता है।

७. **प्रमाण**—प्राकृत प्रमाण से अधिक वाले जन्तुओं का मांस अल्पप्रमाण जन्तुओं की अपेक्षा गुरु होता है।

८. **संस्कार**—मांस के संस्कार (कल्पनाविधि) पर भी उसका गुरुत्व-लघुत्व निर्भर करता है। स्नेह, गोरस, धान्याम्ल (काँजी) तथा फलाम्ल से संस्कृत माँस यथोत्तर लघु होते हैं।

९. **मात्रा**—अतिमात्रा में गुरु तथा अल्पमात्रा में लघु होते हैं। मात्रा के सन्दर्भ में जाठराग्नि का विचार भी अपेक्षित होता है।

ग्राह्याग्राह्य मांस

शुष्क, सड़ा-गला, रोगमृत, विषमृत, सर्पमृत, विषादियुक्त शस्त्र से बिद्ध, वृद्ध, बाल, कृश तथा असात्म्यचारी जन्तुओं का मांस अग्राह्य है, इसके विपरीत ग्राह्य है। सूखा मांस अरुचिकर, प्रतिश्यायजनक तथा गुरु विष या व्याधि से मृत मृत्युकारक;

कुक्कुटाण्डं तु मधुरं बलकृद् वह्निदीपनम्। (रा. व.)

१. चरः शरीरावयवाः स्वभावो धातवः क्रियाः।
लिङ्गं प्रमाणं संस्कारो मात्रा चास्मिन् परीक्ष्यते॥ (सु. सू. ४६)

२. शिरः स्कन्धं कटी पृष्ठं सक्थिनी चात्मपक्षयोः।
गुरु पूर्वं विजानीयाद् धातवस्तु यथोत्तरम्॥
सर्वस्य प्राणिनो देहे मध्यो गुरुरुदाहृतः।
पूर्वभागो गुरुः पुंसामधोभागस्तु योषिताम्॥
उरोग्रीवं विहङ्गानां विशेषेण गुरु स्मृतम्। (सु. सू. ४६)

३. रक्तादिषु शुक्रान्तेषु धातुषु उत्तरोत्तरास्तु गुरुतराः। (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बालक का मांस छर्दिकारक, वृद्ध का मांस कासश्वासकर, रोगपीड़ित का मांस त्रिदोषकोपक, सड़ा मांस उत्क्लेशजनक तथा कृश जन्तु का मांस वातप्रकोपक होता है।

चतुष्पाद जन्तुओं में स्त्रियों का, पक्षियों में पुरुष का, महाशरीरवाले जन्तुओं में अल्पशरीर का, अल्पशरीर जन्तुओं में महाशरीर का ग्रहण करना चाहिये।

सभी जन्तुओं में समस्त शरीर से यकृत्प्रदेशवर्ती मांस का चुनाव करना चाहिये।

यदि उपर्युक्त उपलब्ध न हो तो मध्यमवय जन्तु का ताजा मनोनुकूल मांस लेना चाहिए।[1]

---

१. 'तत्र शुष्कपूतिव्याधिविषसर्पहतादिग्धविद्धजीर्णकृशबालानामसात्म्यचारिणां च मांसान्यभक्ष्याणि…एभ्योऽन्येषामुपादेयं मांसमिति।'
अरोचकं प्रतिश्यायं गुरु शुष्कं प्रकीर्त्तितम्।
विषव्याधिहतं मृत्युं बालं छर्दिञ्च कोपयेत्॥
कासश्वासकरं वृद्धं त्रिदोषं व्याधिदूषितम्।
क्लिन्नमुत्क्लेशजननं कृशं वातप्रकोपणम्॥
स्त्रियश्चतुष्पात्सु, पुमांसो विहङ्गेषु, महाशरीरेष्वल्पशरीराः, अल्पशरीरेषु महाशरीराः प्रधानतमाः।
'सर्वप्राणिनां सर्वशरीरेभ्यः प्रधानतमाः भवन्ति यकृत्प्रदेशवर्त्तिनस्तानाददीत। प्रधानालाभे मध्यमवयस्कं सद्यस्कमक्लिष्टमुपादेयं मांसमिति।'
(सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

षष्ठ अध्याय

हरितवर्ग एवं आहारयोगिवर्ग

हरितवर्ग

हरितवर्ग में वे द्रव्य आते हैं जो हरी या आर्द्र अवस्था में प्रयुक्त होते हैं। आजकल इन्हें 'सलाद' कहते हैं। सामान्यतः भोजन के साथ मूली, गाजर, प्याज, टमाटर, खीरा, धनिया पत्ती, अदरख, हरा मिर्चा आदि का सलाद बना कर प्रयोग करते हैं। हरी अवस्था में ये हरितवर्ग में तथा शुष्क अवस्था में आहारयोगिवर्ग में आते हैं। उदाहरणार्थ, हरी अदरख हरितवर्ग में है जब कि सूखी अदरख आहारयोगिवर्ग में आता है। इसी प्रकार हरी धनिया हरितवर्ग में है जबकि इसके सूखे फल जो मसालों में दिये जाते हैं आहारयोगिवर्ग में है। आहारयोगिवर्ग में मसाले के द्रव्य आते हैं। इस प्रकार हरितवर्ग एवं आहारयोगिवर्ग परस्पर घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं।

चरकसंहिता में ये दोनों वर्ग पृथक् पठित हैं। सुश्रुत ने इनका पृथक् कोई वर्ग नहीं बनाया किन्तु शाकवर्ग में पठित पिप्पल्यादि गण का वर्णन किया जिसके संदर्भ में यह लिखा कि ये आहार के संस्कारार्थ प्रयुक्त होते हैं[1] लवणों का पृथक् वर्णन किया है। वाग्भट ने अष्टांगसंग्रह में शाकवर्ग के अन्तर्गत कुठेरादि गण को हरितकवर्ग कहा है[2]। अष्टांगहृदय में इसे 'शालन' कहा है[3]। 'शालन' शब्द मसालों के लिए प्रयुक्त हुआ है। चक्रपाणि ने द्रव्यगुणसंग्रह में लवणादि वर्ग के अन्तर्गत इनका वर्णन किया है।

इस वर्ग के अधिकांश द्रव्यों का वर्णन द्वितीय भाग में हो चुका है। यहाँ अवशिष्ट द्रव्यों का वर्णन करेंगे।

१. मूलक

परिचय

कुल—राजिका-कुल (क्रुसीफेरी–Cruciferae)।

---

१. कट्वन्युष्णानि हृद्यानि वातश्लेष्महराणि च।
कृतान्नेषूपयुज्यन्ते संस्कारार्थमनेकधा॥ (सु. सू. ४६)

२. वर्गो हरितकाख्योऽयमुपदंशेषु युज्यते।
वातघ्नो व्यञ्जनानां च हृद्यो दीपनरोचनः॥ (अ. सं. सू. ७)

३. कुठेरशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणम्। फणिज्जार्जकजम्बीरप्रभृति ग्राहि शालनम्॥
(अ. हृ. सू. ६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नाम—लै०-रैफेनस सेटाइवस (Raphanus sativus Linn.); हि०-मूली, मुरई; बं०-मूला; म०-मुला; गु०-मुला; ता०-मुलाजी; अ०-फुज्ल; फा०-तुर्ब; अं०-रैडिश (Radish)।

स्वरूप—इसका **क्षुप** छोटा, सरसों के सदृश होता है। **पत्र**-लंबे और किनारे कटे हुये होते हैं। **पुष्प**-बड़े, प्रायः श्वेत होते हैं। **फल**-सरसों के सदृश शिम्बी के आकार का फूला हुआ, बीच-बीच में संकुचित, लंबे चञ्चु से युक्त लगभग १-२ इञ्च लम्बा होता है। बीज सरसों से बड़े, प्रायः गोल, पीले या भूरे, संख्या में २-८ होते हैं। **मूल**-कन्दवत् सफेद या रंगीन गोपुच्छाकार बीच-बीच में सूत्रयुक्त होता है।

जाति—यह दो प्रकार की होती है:—१ लघुमूलक-इसे 'चाणक्यमूलक' भी कहते हैं। सम्भवतः यह चाणक्यप्रदेश (मगध, मिथिला, काशी आदि) में होने वाली 'देशी' मूली है। २ बृहत् मूलक—इसका नाम 'नेपालमूलक' भी है। यह नेपाल में अधिक होता है। इसका कन्द हाथीदाँत के समान बड़ा और लम्बा होता है। आजकल जौनपुरी मूली विशालकाय आती है। वर्ण, आकृति आदि के भेद से मूलक अनेक प्रकार का होता है।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारत में होता है। हिमालय प्रदेश में १० हजार फीट की ऊँचाई तक होता है।

रासायनिक संघटन—मूली विटामिन सी का उत्तम स्रोत है। मूली की जड़ में आर्द्रता ९४·४, प्रोटीन ०·४, वसा ०·१, सूत्र ०·८, अन्य कार्बोहाइड्रेट ३·४, खनिजद्रव्य ०·६ प्रतिशत होता है। कैलशियम ५०, फास्फरस २२, लौह ०·४ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम होता है। इनके अतिरिक्त, विटामिन ए, बी और सी होते हैं। मूली की विशिष्ट उत्कट गन्ध एक उड़नशील तैल के कारण होती है जिसमें बयुटिल क्रोटोनिल आइजोथायोसाइनेट सलफाइड (Butyl crotonyl isothiocyanate sulphide) प्रमुख घटक होता है। trans-4-methyl-thiobutenyl isothiocyanate नामक एक ग्लुकोसाइड होता है जिसके कारण कटुत्व होता है। बीजों से सर्षपतैल सदृश एक उड़नशील तैल तथा ३०-५०% एक स्थिर तैल निकलता है।

गुणकर्म—बालमूलक लघु, त्रिदोषशामक, दीपन-पाचन है किन्तु वृद्धमूलक इसके विपरीत गुरु, त्रिदोषकोपक होता है। स्नेहसिद्ध मूली वातशामक तथा सूखी मूली कफवातशामक है। सूखी मूली का औषध में प्रयोग करते हैं, यह शोथघ्न तथा त्रिदोषशामक है। मूली का रस कामला में पिलाते हैं। मूली के पत्र तथा फलियों का भी शाकार्थ प्रयोग करते हैं।

× × × ×

'मूलकं द्विविधं प्रोक्तं तत्रैकं लघुमूलकम्। शालामर्कटकं विस्रं शालेयं मरुसम्भवम्॥
चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकपोतिका। नेपालमूलकं चान्यत्तद् भवेद् गजदन्तवत्॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लघुमूलं कटूष्णं स्यात्तुष्यं च लघु पाचनम् । दोषत्रयहरं स्वर्यं ज्वरश्वासविनाशनम् ॥ नासिकाकण्ठरोगघ्नं नयनामयनाशनम् । महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम् ॥ स्नेहसिद्धं तदेव स्यात् दोषत्रयविनाशनम् ।' (भा. प्र.)

'बालं दोषहरं वृद्धं त्रिदोषं, मारुतापहम् । स्नेहसिद्धं, विशुष्कं तु मूलकं कफवातजित् ॥'
(च. सू. २७)

'शुष्कं त्रिदोषशमनं शोथघ्नं गरजिल्लघु । तत्पुष्पं कफपित्तघ्नं तत्फलं कफवातजित् ॥'
(रा. व.)

२. गर्जर

कुल—शतपुष्पा-कुल (अम्बेलिफेरी–Umbelliferae) ।

नाम—लै०–डॉकस कैरोटा वेर. सेटाइवा (Daucas carota Var. sativa Linn.); सं०–गर्जर, गाजर, नारंगवर्णक; हि०–बं०–म०–गु०–गाजर; ता०–गार्जार; ते०–पिताकन्द; अ०–जज़र; फा०–गज़र, ज़र्द; अं०–कैरॉट (Carrot) ।

स्वरूप—इसका **कांड** २–४ फुट ऊँचा होता है । **पत्र**–२–३ इञ्च लम्बे, छत्राकार रोमश कटे हुए, धनिया के सदृश होते हैं । **पुष्प**–श्वेतवर्ण छत्रकों में होते हैं । **फल**–⅛ इञ्च लम्बे, रोमश, श्यामवर्ण, कृष्णजीरक के सदृश होते हैं (इनकी मिलावट कृष्णजीरक में की जाती है) । **मूल**–लाल या नारंगी रंग का गोपुच्छाकार, मूली के सदृश, २–१२ इञ्च लम्बा होता है । फल के समान यह खाया जाता है । इसका हलुआ भी बनाते हैं । जाड़ों में यह मिलता है ।

उत्पत्तिस्थान—प्रायः समस्त भारत में होता है ।

रासायनिक संघटन—गाजर में आर्द्रता ८६, प्रोटीन ०·९, वसा ०·१, कार्बोहाइड्रेट १०·७, सूत्र १·२, खनिज पदार्थ १·१, कैलशियम ०·०८ तथा फास्फरस ०·०३ प्रतिशत होते हैं । लौह १·५ मि० ग्रा० तथा करोटिन (विटामिन ए) २०००–४३०० युनिट प्रति १०० ग्राम तथा कुछ विटामिन बी और सी भी होते हैं । इसके बीजों तथा पुष्पों से सुगन्धित तैल प्राप्त होता है ।

गुणकर्म—गाजर मधुर-तिक्त, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, त्रिदोषशामक, हृद्य, ग्राही होते हैं तथा हृद्रोग, रक्तपित्त, अर्श और ग्रहणी में लाभकर है । गाजर के बीज वृष्य और गर्भपातकर हैं ।

× × × ×

'गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु । संग्राहि रक्तपित्तार्शोग्रहणीकफवातजित् ॥'
(भा. प्र.)

'बीजं चोष्णं मतं चास्य वृष्यं वै गर्भपातकृत् ।' (रा. नि.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आहारयोगिवर्ग

चरक ने इस वर्ग में आहारसंस्कारार्थ प्रयुक्त द्रव्यों का वर्णन किया है। इनमें स्नेहद्रव्यों में तैल (तिल, एरण्ड, सर्षप, प्रियाल, अतसी तथा कुसुम्भ) वसा तथा मज्जा का वर्णन किया है। सम्भवतः घृत का वर्णन पहले गोरसवर्ग में हो चुकने के कारण यहाँ पुनः नहीं लिखा। कटु द्रव्यों में शुण्ठी, पिप्पली, मरिच और हिंगु इन चार का ही वर्णन है। इसके बाद लवण और क्षार हैं। अन्त में अवशिष्ट कटु द्रव्यों-कारवी, कुञ्चिका, जीरक, यवानी, धान्यक और तुम्बुरु का निर्देश कर यह लिखा कि प्रयोग और रुचिभेद से इनमें इतना वैविध्य है कि समग्रतया वर्णन सम्भव नहीं[1]।

इस सभी द्रव्यों का वर्णन द्वितीय भाग में किया जा चुका है, वहीं देखें।

---

१. कारवी कुञ्चिकाजाजी यवानी धान्यतुम्बुरु।
रोचनं दीपनं वातकफदौर्गन्ध्यनाशनम्॥ (च. सू. २७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सप्तम अध्याय

कृतान्नवर्ग

धान्य, शाक आदि को जल, स्नेहद्रव्य (घी-तैल आदि) तथा आहारोपयोगी द्रव्यों से सिद्ध कर जो खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं वे 'कृतान्न कहलाते हैं। उदाहरणार्थ, चावल से भात, खिचड़ी, पुलाव आदि विविध पदार्थ बनते हैं, ये सब कृतान्न हैं। देश और काल के भेद से इनमें विविधता आती रहती है। विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क का भी प्रभाव पड़ता है। इतिहास के विभिन्न कालों में जब मुगल, अंगरेज आदि विदेशी जातियाँ इस देश में आकर बसीं तो उनके खानपान का भी असर पड़ा। देश के भीतर भी यातायात के साधनों की सुविधा से जब पारस्परिक सम्पर्क बढ़ा तब एक प्रदेश का खान-पान दूसरे प्रदेशों ने अपनाया। आजकल दक्षिण भारत का इडली-दोसा उत्तर भारत में अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा है, उसी प्रकार उत्तर भारत की पूरी-सब्जी अब दक्षिण में लोकप्रिय हो रही है। भोजनोत्तर मुखशुद्धि के लिए बनारसी पान तो अब भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में मिलने लगा है। यहाँ कुछ प्रमुख प्राचीन एवं अर्वाचीन आहारकल्पों का वर्णन किया जायगा।

१. **यवागू**—जल या औषधक्वाथ में चावल आदि शूकधान्य पका कर यवागू बनाते हैं। उसकी सान्द्रता के अनुसार यवागू तीन प्रकार की होती है—मण्ड, पेया और विलेपी। सिक्थरहित केवल द्रवभाग हो तो मण्ड, सिक्थसहित द्रवबहुल पेया तथा सिक्थबहुल अल्पद्रव विलेपी कहलाती है। चावल से चौदहगुने जल में मण्ड, ६ गुने जल में पेया तथा चौदहगुने जल में विलेपी बनाई जाती है। सामान्यतः 'यवागू' शब्द से पेया का ग्रहण होता है।[1]

मण्ड चावल का (शालिमण्ड), भूने यव का (वाट्यमण्ड), धान के लावा का (लाजमण्ड) तथा गेहूँ (गोधूम) या ज्वार (जौर्णाह्व) का बनाया जाता है। चावल, उसका आधा मूंग (किंचित् भना), धनियाँ, सेंधा नमक तथा त्रिकटु मिलाकर मण्ड बनाते हैं तथा तैल और हींग से छौंक दी जाती है। इसे अष्टगुण मण्ड कहते हैं[2]।

---

१. यवागूस्त्रिविधा ज्ञेया 'मण्डः पेया विलेप्यपि।
सिक्थकैः सहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता॥
यवागूर्बहुसिक्था स्याद् विलेपी विरलद्रवा।' (सु. सू. ४६)
अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी च चतुर्गुणे। मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि॥
(प. प्र.)
चरकसंहिता (सूत्र. २) में अनेक औषधीय यवागू का वर्णन किया गया है। शिवदास सेन यवागू के दो प्रकार पेया और विलेयी बतलाते हैं—
'द्विधा हि यवागूः पेयाविलेयीभेदात्'। (द्र. सं. ११।५)
२. कैयदेवनिघण्टु, कृतान्नवर्ग, ४७।६१.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यवागू दीपन, पाचन, स्वेदजनन, मूत्रल एवं सन्तर्पण होती है तथा ज्वर, तृष्णा, अतिसार, मूत्रविकार आदि में लाभकर है[1]।

मण्ड अतिशय दोषघ्न, दीपन, वातशामक, स्वेदन, स्रोतःशोधन, ज्वरघ्न तथा परम बल्य है। अष्टगुण मण्ड त्रिदोषघ्न, दीपन, जीवनीय, बस्तिशोधन तथा रक्तवर्धक है। वाट्यमण्ड (बार्ली वाटर) अनुलोमन, शूलहर विशेषतः तरुणज्वर में लाभकर है। लाजमण्ड हृद्य एवं वातानुलोमन है[2]।

पेया स्वेदन, दीपन, अनुलोमन, तर्पण तथा ज्वरघ्न है। विलेपी ग्राही, हृद्य, दीपन तथा तृष्णाशामक है। मण्ड, पेया, विलेपी तथा ओदन यथापूर्व लघु होते हैं[3]।

२. **यूष**—जल में शिम्बीधान्य, शाक आदि पका कर यूष बनाते हैं। इसे बनाने के लिये ४० ग्राम धान्य या शाक १६ गुने जल में पकाते हैं। इसमें सोंठ और पीपल का चूर्ण भी ५ ग्रा० डालते हैं। आधा या चौथाई शेष रहने पर उतार कर कपड़े से छान कर द्रवभाग पृथक् कर लेते हैं, यही यूष है। नमक मसाले घी-तैल डाल कर बनाने पर कृत तथा सादा बनाने पर अकृत यूष कहलाता है[4]।

---

१. सन्दीपनी स्वेदकरा यवागूः संपाचनी दोषमलामयानाम्।
सन्तर्पणी धातुबलेन्द्रियाणां शस्ता भवेत् स्याज्ज्वररोगिणाञ्च ॥ (हारीत १।२३।५)

२. मण्डस्तु भूरिदोषघ्नो दीपनोऽनिलनाशनः।
ज्वरहा परमो बल्यः स्वेदनो मार्गशोधनः ॥
लाजमण्डो विशुद्धानां पथ्यो पाचनदीपनः।
वातानुलोमनो हृद्यः पिप्पलीनागरान्वितः ॥ (द्र. सं.)
'बाट्यमण्डः कषायोष्णो विबन्धानाहशूलजित्।
पाचनो दीपनो ग्राही पित्तश्लेष्मानिलापहः ॥
वाते वा सकफे पित्ते सामे च तरुणज्वरे।
बाट्यमण्डं प्रशंसन्ति पटोलमगधान्वितम् ॥'
'मण्डश्चाष्टगुणो हन्ति ज्वरपित्तकफानिलान्।
क्षुद्बोधी प्राणदो बस्तिशोधनोऽसृग्विवर्धनः ॥ (कै. नि.)

३. पेया स्वेदाग्निजननी वातवर्चोनुलोमनी। क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोगज्वरापहा ॥
विलेपी ग्राहिणी हृद्या तृष्णाघ्नी दीपनी हिता।
व्रणाक्षिरोगसंशुद्धदुर्बलस्नेहपायिनाम् ॥
'मण्डपेयाविलेपीनामोदनस्य च लाघवम्।
यथापूर्वं शिवस्तत्र मण्डो वातानुलोमनः ॥ (द्र. सं.)

४. कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी।
वारिप्रस्थेन विपचेत् सद्रवो यूष उच्यते ॥ (शा.)
अस्नेहलवणं सर्वमकृतं कटुकैर्विना। विज्ञेयं लवणस्नेहकटुकैः संयुतं कृतम् ॥
(सु. सू. ४६)

काश्यप ने एक तृतीय वर्ग 'कृताकृत' बनाया है जो अल्प मसाले देकर बनाते हैं तथा इन तीनों का विधान त्रिदोषानुसार किया है :—

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शूकधान्य से यवागू बनती है जबकि शिम्बीधान्य आदि से यूष बनता है।

यूष सामान्यतः रोचन, दीपन, स्वेदजनन, तर्पण, बल्य तथा त्रिदोषशामक होता है। द्रव्य के अनुसार इसके विशिष्ट गुणधर्म होते हैं। शिम्बीधान्यों में मुद्गयूष तथा शाकों में पटोलयूष सर्वोत्तम माना गया है[1]। यूषों में मसूरादि यूष, कुलत्थपञ्चयूष (कुलथी, उड़द, सेम, मूँग तथा अरहर से सिद्ध), पञ्चमुष्टिक यूष (यव, कोल, कुलत्थ, मुद्ग, शुष्कमूली से सिद्ध) तथा नवाङ्ग यूष (मूँग, कोल, पिप्पली, शुण्ठी, आमलकी, सूखी मूली, कुलथी, चावल और जल से सिद्ध) प्रमुख हैं। पृथक् पृथक् शिम्बीधान्यों में मुद्ग के अतिरिक्त, कुलत्थ, आढकी, चणक, मसूर, माष आदि का यूष प्रचलित है[2]।

३. ओदन (भक्त)—पाँच गुने जल में खूब धोये हुए चावल को पकाने पर ओदन (भात) बनता है। इसका माँड़ पसा देने पर प्रस्रुत और माँड़ उसी में सुखा देने पर अप्रस्रुत कहलाता है।

खूब धोये चावलों से प्रस्तुत, पसाया हुआ, सुसिद्ध, गरम अन्योन्यासक्त (फरहर) तथा सुगन्धित भात लघु होता है। बिना पसाया असिद्ध तथा ठण्ढा भात गुरु होता है। बिना पसाया भात ग्राही, मधुरविपाक, कफवर्धक, बल्य तथा वृष्य होता है। भूने चावल से बना भात कफरोगों तथा विषों में लाभकर है[3]।

'कृताकृताकृतकृताः पित्तश्लेष्मानिलास्रसु।
रोगेषु स्नेहयोगाच्च ते यूषाः त्रिविधाः स्मृताः॥'

काश्यप ने अनेक प्रकार के फलयूष, पुष्पयूष, पत्रयूष आदि का वर्णन किया है। (देखें काश्यपसंहिता, खिलस्थान, चतुर्थ अध्याय)

१. द्रवैर्बहुविधैर्द्रव्यैस्तथा चान्यैस्तण्डुलैः।
यूष इत्युच्यते सिद्धो यवागूस्तण्डुलैः सह॥
रोचनो दीपनो वृष्यः स्वरवर्णबलाग्निकृत्।
प्रस्वेदजननो मुख्यस्तुष्टिपुष्टिसुखावहः॥
यूषः स्नेहोष्णभावाच्च वातं, स्नेहकषायतः।
पित्तं, कफं कटुष्णत्वात् संस्काराच्च नियच्छति॥ (काश्यप खिल. ४)
यूषाणामुत्तमो मौद्गो यूषो हृद्योऽग्निदीपनः।
शीतलो मधुरः पथ्यो बलासे पित्तलोहिते॥
तृड्दाहज्वरसंशुद्धव्रणजत्रूर्ध्वरोगिषु। (कै. नि.)

२. इनके गुणकर्म देखें—कैयदेवनिघण्टु, कृतान्नवर्ग, ६२–८९

३. सुधौतः प्रस्रुतः स्विन्नः सन्तप्तश्चौदनो लघुः।
अधौतोऽप्रस्रुतोऽस्विन्नः शीतश्चाप्योदनो गुरुः॥
भृष्टतण्डुलमिच्छन्ति गरे श्लेष्मामयेष्वपि।
मांसशाकवसातैलघृतमज्जफलौदनाः॥
बल्याः संतर्पणाः हृद्याः गुरवो बृंहयन्ति च। (च. सू. २७)
अन्योन्यासक्तसुरभिमनोज्ञसितसिक्थकम्।
निजोष्मवल्लघु प्रोक्तं विपरीतगुणं गुरु॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

घटक द्रव्यों के अनुसार ओदन विविध होते हैं यथा वाट्योदन (यावक–यव की दलिया), शाकौदन, मांसौदन, फलौदन आदि। इसके अतिरिक्त, मुद्गयूष में साधित मुद्गौदन, मांसरस में साधित रसौदन आदि होते हैं। चावल के अतिरिक्त श्यामाक, कोद्रव आदि धान्यों का भी भात बनता है। घटक द्रव्यों के अनुसार इसके गुण पृथक्-पृथक् हैं।

स्नेहसिद्ध चावलों से बना पुलाव गुरु और स्निग्ध होता है[1]।

४. **कृशरा**—चावल और दाल मिला कर नमक, अदरख, हींग आदि से संस्कृत कर कृशरा (खिचड़ी) बनाई जाती है। पतली गरम खिचड़ी लघु, बल्य एवं अनुलोमन होती है तथा ज्वरोत्तर, ग्रहणी आदि उदरविकारों में पथ्य है। गाढ़ी, ठण्डी खिचड़ी गुरु एवं विष्टम्भजनक होती है[2]।

प्राचीन कृशरा तिल, तण्डुल और उड़द की बनाई जाती थी। उससे भेद करने के लिए कैयदेव ने यवागू से पृथक् खिच्चा (खिचड़ी) का वर्णन किया है[3]।

५. **रोटिका**—मुख्यतः गेहूँ के आटे की बनती है। रोटी किञ्चिद् गुरु; वातशामक, बल्य, बृंहण एवं वृष्य है। यव की रोटी रूक्ष, कफघ्न, पुरीषजनन तथा प्रमेह में पथ्य है। चने (बेसन) की रोटी विष्टम्भकारक, रूक्ष, कफपित्तशामक तथा रक्तविकार में पथ्य है[4]:

भृष्टतण्डुलजं कण्ठरोगारुचिकफप्रणुत्।
अप्रस्रुतद्रवं ग्राहि स्वादुपाकं कफात्मकम्।
तर्पणं क्षयरोगघ्नं शुक्रवृद्धिकरं परम् ॥ (कै. नि.)
'कोष्णं पंकजचक्षुषः स्तन इव श्वेतं शरच्चन्द्रमः
शोचिर्वन्न मिलितं मिथो न च यथा चण्डः सपत्नीजनः।
सुस्निग्धं तरुणीकपोलवदलं कान्ताङ्गवत् कोमलं
भक्तं भुक्तमनेकदोषशमनं लघ्वग्निकृद् बृंहणम् ॥ (द्र. श.)

१. पुलावः साधितः स्नेहसिद्धैर्धवलतण्डुलैः।
गुरुरुष्णो भृशं स्निग्धः बल्यो वृष्यः परं मतः ॥ (स्व.)

२. सद्रवा कृशरा सोष्णा बल्या स्निग्धा लघुः सरा।
ज्वरोत्तरे ग्रहण्यादौ रोगे पथ्यतमा स्मृता ॥
सैवातिसान्द्रा शीता च ज्ञेया विष्टंभकृद् गुरुः। (स्व.)

३. यवागूः कृशरा ज्ञेया तिलतण्डुलमाषजा।
खिच्चाख्या तु यवागूः स्यात् कृता तण्डुलशिम्बजैः।
तद्वद् खिच्चा गुणैः किंचित् स्वधान्यगुणमावहेत् ॥ (कै. नि.)
समतण्डुलमुद्गकृता कृशरा रुचिकृद् बहुशुक्रबलप्रकरा।
जितपित्तसमीरकफा नचिरादथ माषकृता त्वमरुद्रुचिरा ॥ (द्र. सं.)

४. रोटिका बलकृद् रुच्या बृंहणी धातुवर्धनी।
वातघ्नो कफकृद् गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता ॥
यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः।
मलशुक्रानिलकरी बल्या हन्ति कफामयान् ॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रोटी में उड़द की पिट्ठी, सत्तू, आलू आदि भर कर भी बनाते हैं। इस प्रकार की सगर्भा रोटिका गुरु एवं विष्टम्भकारक होती है[1]।

पावरोटी (डबल रोटी) लघु एवं ग्राही है[2]। अनेक प्रकार के विषकूट (बिसकुट) भी आजकल बनते हैं। अरारोट का बिसकुट रूक्ष एवं स्तम्भन है।

६. **मण्डक**—मैदे को जल में सान कर इसकी लोई को हाथ पर ही फैला कर मृदु अग्नि पर उलटे घड़े को रख उसके पृष्ठ भाग पर पकाते हैं। सिद्ध होने पर यही 'मण्डक' कहलाता है। दूध-चीनी में मिलाकर इसे खाते हैं।

मण्डक लघु, ग्राही, त्रिदोषघ्न, बल्य, बृंहण एवं वृष्य है[3]।

७. **पोलिका**—मैदे की ही पतली मण्डक से किञ्चित् स्थूल पपड़ी बनाई जाती है जिसे पोलिका या पूपलिका कहते हैं। इसके गुण मण्डक के समान[4] हैं।

८. **अङ्गारकर्कटी**—यह बाटी या लिट्टी के नाम से प्रसिद्ध है। गेहूँ के आँटे को कड़ा सान कर वटकाकार बना निर्धूम अग्नि पर रख कर पकाते हैं। पक्व होने पर घी लगा कर दाल के साथ खाते हैं। उत्तरप्रदेश में 'बाटी-दाल' प्रचलित ग्रामीण आहार है।

भोजपुर और मगध में इसमें सत्तू भर कर बनाते हैं। यह सक्तुगर्भा अङ्गारकर्कटी है।

अङ्गारकर्कटी लघु, दीपन, बल्य, बृंहण है। सक्तुगर्भा गुरु है[5]।

९. **इण्डरिका**—इण्डरिका (इडली) दक्षिण भारत में लोकप्रिय है। इण्डरिका मृदु, लघु, मधुर, शीत, वातपित्तशामक, कफवर्धक, बल्य एवं वृहण है[6]।

१०. **घारिका**—घारिका (दोसा) सादी लघु तथा गुण में रोटी के समान होती है किन्तु मसालदोसा गुरु, उष्ण और विदाही होता है[7]।

चणक्या रोटिका रूक्षा श्लेष्मपित्तास्रनुद् गुरुः।
विष्टम्भिनी न चक्षुष्या— (भा. प्र.)

१. रोटिका तु सगर्भा स्याद् गुरु विष्टम्भकृत्तथा। (स्व.)

२. परं पथ्यतमा लघ्वी ग्राहिणी पादरोटिका। (स्व.)
विषकूटं च तत्तुल्यम्—

३. मण्डको बृंहणो वृष्यो बल्यो रुचिकरो भृशम्।
पाकेऽपि मधुरो ग्राही लघुर्दोषत्रयापहः॥ (भा. प्र.)

४. तस्याः मण्डकवद् गुणाः —(भा. प्र.)

५. अङ्गारकर्कटी ह्येषा बृंहणी शुक्रला लघुः।
दीपनी कफकृद्‌बल्या पीनसश्वासकासजित्॥ (भा. प्र.)
सैव चेत् सक्तुगर्भा स्याद् गुर्वी विष्टम्भकारिणी। (स्व.)

६. कोमला स्यादिण्डरिका मधुरा बृंहणी लघुः।
शीता पित्तानिलहरी श्लेष्मला बलवर्धनी॥ (स्व.)

७. घारिका तु भवेल्लध्वी रोटिकासदृशा गुणैः।
या तु वेशवारगर्भा सोष्णा गुर्वी विदाहकृत्॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

११. **सूप**—दाल को कहते हैं। रोटी और चावल के साथ इसे लेते हैं। शाकाहारियों के लिये प्रोटीन का यह प्रमुख माध्यम है। दाल को पानी में सिद्ध कर नमक-हल्दी आदि मसाले देते हैं और फिर हींग जीरा से छौंक देते हैं।

सूप (दाल) रूक्ष और विष्टंभी है अतः उदररोगों में वर्ज्य है। भून कर सिद्ध करने से लघु हो जाता है[1]। सुश्रुत का कथन है कि मुद्ग और मसूर को छोड़ कर शेष सभी दालें आध्मानकारक हैं[2]। सूपों में मूंग सर्वोत्तम है[3]। मध्यदेश में अरहर (आढकी) तथा पश्चिम में उड़द तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशों में राजमा की दाल प्रचलित है। पूरब में लोग मसूर, अरहर तथा कलाय (त्रिपुट) की दाल खाते हैं। कलाय (खेसाड़ी—लतरी) के सेवन से कलायखञ्ज भी उधर बहुत होता है। चने की दाल भी लोकप्रिय है[4]।

शूकधान्यों का भात और रोटी तथा शिम्बीधान्यों का सूप के रूप में प्रयोग होता है।

व्यञ्जन—शाक—सब्जी के विविध कल्पों को व्यञ्जन कहते हैं। शाक को उबाल कर (स्विन्न) बिना मसाले या मसाले डाल कर व्यञ्जन बनाते है। यह सामान्य विधि है। स्नेह (तैल या घी) में खूब भून कर (भृष्ट) 'भर्जिता' (भुंजिया) बनाते हैं। आलू, बैंगन आदि को आग में पका या उबाल कर मसल कर मसाले; तेल डाल कर भर्ता या चोखा (भरित्थ) बनाया जाता हैं। आलू आदि के छोटे-छोटे टुकड़े काट कर वेसन में मिला कर तल कर 'तरुआ' या 'बजका' (तलिता) बनाते हैं। इसी प्रकार इनकी पकौड़ी (पक्ववटी) बनती है। संस्कार के अनुसार इनके गुणधर्म में अन्तर आता है यथा स्विन्न की अपेक्षा भर्जित व्यञ्जन गुरु होगा। तलिता एवं पक्ववटी भी गरिष्ठ होती है। भर्त्ते में भी आग में पकाया हुआ उबाले

---

१. सूपो विष्टम्भको रूक्षो शीतस्तु स विशेषतः।
निस्तुषो भृष्टसंसिद्धो लाघवं सुतरां व्रजेत्॥ (भा. प्र.)
रूक्षा विष्टम्भिनः सूपाः निरम्लास्तु विशेषतः।
सूपं लघु जरां याति भृष्टस्विन्नं तुषैर्विना॥
काञ्चनाख्यः श्लेष्मपित्तकासश्वासहरो लघुः।
प्रहिताख्यः मनाक् भृष्टः सुस्विन्नो निस्तुषो लघुः॥ (कै. नि.)

२. ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारकाः। (सु. सू. ४६)

३. सूप्यानामुत्तमा मुद्गा लघीयांसोऽल्पमारुताः।
हरितास्तेष्वपि वराः—(अ. सं. ७।२६)

४. मौद्गः सूपस्त्रिदोषं ह्यपनयति हिमश्चाणको वातकर्त्ता,
रुच्यः पित्तास्रहन्ताऽप्यथ गुरुरुदितो वातलश्चाढकीनः।
बल्यो माषश्च पित्तं जनयति सकफं रक्तकृद् वातहर्त्ता,
माकुष्ठो मौद्गवत् स्यादथ पवनकरो शिम्बिनिष्पावसूपौ॥ (द्र. श.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

हुए की अपेक्षा लघु होता है[1]।

१२. **राज्यक्ता**—कद्दू, खीरे आदि को महीन काट कर उबाल कर दही, राई, नमक आदि मिला कर (राज्यक्ता) रायता बनाते हैं। रायता तीक्ष्ण, दीपन तथा रक्तपित्तकोपक है[2]।

१३. **रसम**—रसम बेशवारीय कट्वम्ल पेय दक्षिण भारत में प्रचलित है। रसम उष्ण, तीक्ष्ण, भेदन, दीपन, वातपित्तकर, कफघ्न तथा अवृष्य है[3]। अम्लपित्त, रक्तपित्त आदि में त्याज्य है।

१४. **लेह-राग-षाडव**—ये अम्ल पदार्थों के योग से बनते हैं। लेह चटनी, राग खटमिट्ठी (मधुराम्ल या मधुर अचार) तथा षाडव (खट्टा अचार) है। ये लघु, रुचिवर्धक तथा रक्तदूषक, रक्तपित्तकोपन होते हैं[4]। अतः इनका सर्वदा सेवन वर्जित है विशेषतः कफपित्तज विकारों तथा रक्तविकारों (वातरक्त, कुष्ठ आदि) में ये निषिद्ध हैं।

१५. **गुडाम्र**—कच्चे आम के टुकड़े कर गुडोदक में पकाते हैं तथा जीरा, मरिच आदि मसाले देकर संस्कृत करते हैं। यह गुडाम्र (गुरम्मा) है। रोटी के साथ गर्मियों में खाया जाता है।

गुडाम्र मधुराम्ल, गुरु, उष्ण, वातशामक तथा कफपित्तवर्धक है[5]।

१६. **पर्पट**—पर्पट (पापड़) मूंग, उड़द आदि के बनाते जाते हैं। आजकल

---

१. व्यञ्जनं स्विन्नमकृतं कृतं च लघु दीपनम्।
अभिष्यन्दकरी गुर्वी स्निग्धा स्यात् स्नेहभर्जिता॥
स्नेहसन्तलिता पक्ववटी गुरुतमा मता।
वह्निपक्वं भरित्थं स्याद् रुचिदं लघु वह्निकृत्॥
स्विन्नमल्पगुणं विद्यात् भरित्थं मृदुरोचनम्। (स्व.)
'लवणमरिचचूर्णेनावृतं रामठाढ्यं दहनवदनपक्वं जम्बुकान्तं नितान्तम्।
हरति पवनदोषं श्लेष्मदन्तृ प्रसिद्धं जठरमरणभव्यं चारुभोज्यं भरित्थम्॥ (रा.नि.)
२. राज्यक्ता स्वतितीक्ष्णा स्याद्दीपनी रक्तपित्तकृत्। (स्व.)
३. रसमं कटुकाम्लं स्यादुष्णं तीक्ष्णं च भेदनम्।
वातपित्तकरं वह्निदीपनं कफशुक्रहृत्॥ (स्व.)
४. 'आम्रामलकलेहास्तु पुष्टिवर्णबलप्रदाः।
मधुराः गुरवः स्निग्धाः हृद्याः रोचनतर्पणाः॥'
'द्विविधा षाडवाः रागाः लघवो भक्तरोचनाः।
हृद्याः मुखप्रियाः शुक्रकराः बृंहणरोचनाः॥'
'........................उत्क्लेशना रक्तपित्तश्लेष्मलाः कुष्ठकोपनाः।' (कै. नि.)
'रागषाडवयोगास्तु छर्दिमूर्च्छातृषापहाः।
लघवो बृंहणा वृष्याः हृद्याः रोचनदीपनाः॥ (द्र. सं.)
५. गुडाम्रं स्वदते सम्यक् भुक्तं रोटिकया सह।
गुरूष्णं मधुराम्लं तद् वातघ्नं कफपित्तकृत्॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आलू तथा साबूदाने का पापड़ भी चलता है। आग में भूनने पर लघु तथा स्नेह में तलने पर किंचिद् गुरु हो जाते हैं[1]।

१७. **वटक**—उड़द की पिठ्ठी के वटक (बड़े) बनते हैं। उत्तर भारत में विशिष्ट अवसरों पर किन्तु दक्षिण भारत में सर्वदा खाये जाते हैं। जब ये बड़े तक्र में डुबो दिये जाते हैं (तक्र वटक) तो फूल कर अत्यन्त मृदु हो जाते हैं। दधि में डुबोने पर दधिवटक (दहीबड़ा) बनता है। इसी प्रकार काञ्जिकवटक (काञ्जी-बड़ा), अम्लिकावटक होते हैं। मूंग के पिसान से बने वटक मुद्गवटक कहलाते हैं।

सूखे उड़द के बड़े वल्य, बृंहण, वृष्य, वातशामक विशेषतः अर्दित में लाभकर हैं। रसदार बड़े गुरु और विदाही होते हैं। मुद्गवटक त्रिदोषहर कहा गया है[2]।

१८. **वटी**—यह 'बड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। उड़द, मूंग, चने आदि के पिसान से मसाले देकर सुखा कर बनाई जाती है जो माषवटी, मुद्गवटी, (मुंगौरी), चणकवटी, तिलवटी (तिलौरी), कूष्माण्डवटी (कोंहड़ौरी) आदि के नाम से विदित है। बेसन को वटिकाकार बना कर तैल में पका कर बेसन की बड़ी बनाते हैं। यह कढ़ी या तक्र में डाल देने पर फूल कर फुलौड़ी (पुष्पवटी) बन जाती है।

वटी वटक के समानगुण होती हैं[3]। घटक द्रव्य से भी इनका गुण निर्धारित होता है।

---

१. 'मुद्गजा लघवो रूक्षाः माषजाः गुरुबृंहणाः।' (कै. नि.)
पर्पटास्ते सदाऽङ्गारभृष्टाः परमरोचकाः।
दीपनाः पाचनाः रूक्षाः गुरवः किञ्चिदीरिताः॥
मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ताः विशेषाल्लघवो हिताः।
चणकस्य गुणैर्युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः॥
स्नेहभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः। (भा. प्र.)

२. 'विशुष्का वटका वल्या बृंहणा वीर्यवर्धनाः।
वातामयहरा रुच्याः विशेषादर्दितापहाः॥
विबन्धभेदिनः श्लेष्मकारिणोऽग्निदूषिताः।' (भा. प्र.)
'मुद्गानां वटकास्तक्रे मज्जिता लघवो हिमाः।
संस्कारजप्रभावेण त्रिदोषशमना हिताः॥ (भा. प्र.)
'पवनार्त्तिविदैन्यभये भटकः, चपितार्दितकंपमरुत्कटकः।
रसनातलरंगधरानटकः कफपित्तविकारकरो घटकः॥' (द्र. श.)
'बाह्लीकार्द्रकजीरकैः कलुषिते तक्रे तु मग्नोत्थिताः।
सुस्निग्धा वटकाः सुधाजलनिधौ पूर्णाः शशांका इव॥
रेतःपित्तबलासरक्तबलदा रुच्या सराः बृंहणाः।
देवानामपि दर्शनेन दधते जिह्वालतालोलताम्॥' (द्र. श.)

३. वटकस्य गुणैर्युक्ता ज्ञातव्या रोचना भृशम्। (भा. प्र.)
'सुरसवती तु हिमा बलधात्री, कनकनिभा पृथुमार्दवदात्री।
अमरपतेरपि तोषविधात्री, चणकवटी सुनटी बहुगात्री॥'

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१९. **क्वथिता**—बेसन को जल में घोल कर मसाले आदि देकर क्वथिता (कढ़ी) बनाई जाती है।

कढ़ी लघु, रुचिकर, दीपन, पाचन, अनुलोमन तथा कफवातशामक है[१]।

पक्वान्न—घृत या तैल में सिद्ध आँटे आदि से बने पदार्थों को 'पक्वान्न' (पकवान) कहते हैं। यहाँ 'पक्व' शब्द 'स्नेहपक्व' का बोधक है।

घृत में पक्व पदार्थ हृद्य, लघु, वातपित्तशामक, बल्य, वर्ण्य तथा चक्षुष्य होते हैं। तैल में पक्व गुरु, विदाही, उष्ण, वातशामक, रक्तपित्तकोपक तथा अचक्षुष्य होते हैं[२]।

२०. **पूरिका**—पूरिका या शष्कुली[३] 'पूरी' को कहते हैं। मैदा या गेहूँ के आँटे को घी में छान कर बनाते हैं। पूरी गुरु, बल्य तथा कफपित्तवर्धक है[४]। चने की दाल उबाल-पीस कर इसमें भर कर 'दलपूरी' (दालपूरिका) बनती है। यह अधिक गरिष्ठ है[५]।

२१. **कचवती**—कचवती (कचौड़ी) पूरी की अपेक्षा मुलायम और स्निग्ध होती है। प्रायः मंगैरल-जवाइन, थोड़ा नमक देकर बनाई जाती है[६]। उड़द की पिट्ठी भर कर भी बनाते हैं। पहली लघु तथा दूसरी गुरु होती है।

२२. **घृतपूर**—घृतपूर (घेर) महाराष्ट्र में विशेष प्रचलित है। मैदे को दूध में सान कर नारियल, चीनी आदि मिलाकर घी में पकाने से बनता है।

माषमुद्गचणकादिसमुत्थाः शोषिता रविकरैर्वटिका याः।
तत्तदन्नगुणदोषपरीताः रोचनाः बलकराःप्रभवन्ति॥ (द्र. शु.)

१. क्वथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वह्निप्रदीपनी।
कफानिलविबन्धघ्नी किञ्चित् पित्तप्रकोपणी॥ (भा. प्र.)

२. हृद्याः सुगन्धिनो भक्ष्या लघवो घृतपाचिताः।
वातपित्तहराः बल्या वर्णदृष्टिप्रसादनाः॥
विदाहिनस्तैलकृता गुरवः कटुपाकिनः।
उष्णाः मारुतदृष्टिघ्नाः पित्तलास्रक्प्रदूषणाः॥ (द्र. सं.)

३. चावल के पिसान में तिल देकर तैल में पका कर शष्कुली बनाते थे। यह वही चीज है जो आजकल अनरसा के नाम से बिकती है। बाद में 'शष्कुली' शब्द का प्रयोग 'पूरी' के लिए होने लगा। प्राचीन शष्कुली से भेद करने के लिए 'पूरिका' शब्द भी प्रचलित हुआ। (देखें कैयदेवनिघण्टु, कृतान्नवर्ग)

४. कफवृद्धिकरी बल्या पित्तरक्तप्रदायिनी। पूरिका (हारीत १।२३।२८)

५. बल्या विष्टम्भिनी गुर्वी मृद्वी स्याद् दालपूरिका। (स्व.)

६. नितान्तं सत्कान्ताकुचसदृशकाठिन्यमृदुतां,
रुचिं धत्तेऽपूर्वां गुणगणितसस्नेहबहला।
यवानीपृथ्वीकालवणसहिता फुल्लवदना,
कपोलाभा भक्ष्ये रचयति विचित्रां कचवती॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

घृतपूर गुरु, कफवर्धक, वातपित्तशामक, जीवनीय, वृष्य तथा रक्त, मांस आदि धातुओं का वर्धक है[1]।

२३. **मधुमस्तक**—मधुशीर्षक भी इसे कहते हैं। चरक ने 'मधुक्रोड' कहा है। घी में मैदा को सान कर पूआ के सदृश गोल बना कर घी में छान चीनी की चाशनी में डुबो देते हैं। यही मधुमस्तक है। यह एक प्रकार का 'मालपुआ' है।

२४. **पूप-अपूप**—'पूप' पुआ है। 'अपूप' ठेकुआ है।

२५. **संयाव**—गुझिया या पँड़किया है।

मधुशीर्षक, संयाव और पूप गुरु, बृंहण, वृष्य, हृद्य तथा वातपित्तशामक होते हैं[2]।

२६. **मण्ठक**—मण्ठक (मठरी) मैदे को सान कर छोटे-छोटे पिण्डक बना घी में पकाते हैं और चीनी की चाशनी में डुबो कर निकाल लेते हैं। इलायची, लवंग, कर्पूर आदि भी डालते हैं।

मठरी सुमधुर, गुरु, बृंहण, वृष्य, बल्य, वातपित्तशामक है[3]।

२७. **मिष्टान्न**—विविध मोदक (लड्डू), पिण्डक (पेंड़ा), हिमाह्वा (बर्फी), पाटलजम्बू (गुलाबजामुन), रसगुडक (रसगुल्ला), जलेबी (जलवलिवलय), कुण्डलिनी (इमरती) आदि मिष्टान्न प्रचलित हैं। बेसन, खोये तथा छेने की मिठाइयाँ प्रायः बनती हैं। कुछ में मेवे भी डाले जाते हैं।

मिष्टान्नों के गुणधर्म घटक द्रव्यों तथा संस्कार के अनुसार होते हैं। घृतपक्व, बेसन तथा खोये की मिठाइयाँ दुर्जर होती हैं। छेना का मिष्टान्न लघु, सुपाच्य होता है। ये सभी अतिसेवन से स्थौल्य, प्रमेह तथा अन्य श्लेष्मविकार उत्पन्न करते हैं[4]।

२८. **लावणकीन**—शृङ्गाटक (सिंघाड़ा), सोमालिका (सोहाल), लवणकी (निमकी) आदि स्नेहपक्व नमकीन प्रसिद्ध हैं। ये दुर्जर और विबन्धकारक होते हैं। अतिसेवन से उदरविकार तथा रक्तविकार उत्पन्न करते हैं[5]।

२९. **क्षीरिका**—यह खीर है। पायस, परमान्न आदि इसके पर्याय हैं। दूध में

---

१. तेषां प्राणकरा हृद्याः घृतपूराः कफावहाः।
वातपित्तहरा वृष्या गुरवो रक्तमांसलाः॥ (सु. सू. ४६)

२. मधुमस्तकसंयावपूपा ज्ञेया विशेषतः।
गुरवो बृंहणाः वृष्याः हृद्याः पित्तानिलापहाः॥ (कै. नि.)

३. मण्ठको बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः।
पित्तानिलहरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः॥ (भा. प्र.)

४. मोदकादि तु मिष्टान्नं श्लेष्मलं गुरु बृंहणम्।
स्निग्धं स्थौल्यप्रमेहादीन् जनयत्यतिसेवनात्॥ (स्व.)

५. शृङ्गाटकादि सर्वं लावणकीनं तु दुष्पाच्यम्।
अतिसेवनाद्धि नूनं रुधिरोदररोगकारि स्यात्॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चावल पका कर चीनी तथा गन्धद्रव्य मिला कर बनाते हैं। नारियल कद्दू आदि की खीर भी बनती है।

खीर बृंहण बल्य तथा वातपित्तशामक है[1]। रक्तपित्त के लिए उत्तम पथ्य है।

३०. **सेविका**—सेविका (सेवई) प्रसिद्ध है। मैंदे के वर्त्तिकाकार टुकड़ों को सुखा कर रखते हैं। उन्हें घी में भून दूध-चीनी में पका कर खाते हैं।

सेवई गुरु, तर्पण, बल्य, वातपित्तशामक है[2]।

३१. **लप्सिका**—यह हलवा है। आँटे, मैंदे तथा सूजी का हलवा बनाते हैं।

लप्सिका (हलवा) बृंहण, वृष्य, गुरु, कफवर्धक वातपित्तशामक है[3]।

३२. **पलल**—पलल तिलकुट को कहते हैं। तिल को गुड़ या चीनी के साथ खूब कूट कर बनाते हैं। गया का तिलकुट प्रसिद्ध है।

पलल (तिलकुट) उष्ण, स्निग्ध, कफपित्तकारक वातशामक, बृंहण, वृष्य तथा मूत्ररोधक है। गुड़ का तिलकुट अधिक उष्ण होता है[4]।

३३. **भृष्टान्न**—भूना (अन्न) या चबेना भृष्टान्न कहलाता है। धान का लावा लाजा तथा यव आदि अन्य भृष्ट धान्य 'धाना' कहलाते हैं।

धाना (दाना, चबेना) रूक्ष, दुर्जर, कफनाशक तथा प्रमेह के लिए परम पथ्य है। लाजा (धान का लावा, खील) मधुर, शीत, तर्पण तथा श्रेष्ठ छर्दिनिग्रहण हैं[5]। रक्तपित्त, छर्दि तथा ग्रहणीविकार में उत्तम पथ्य है।

धाना को गुड़ या चीनी में बाँध कर लाई (लाजी) बनाते हैं। रामदाने की लाई अत्यन्त लघु होती है।

३४. **पृथुक**—ये चिपिट (चिउड़ा, चूड़ा) भी कहलाते हैं। आर्द्र धान्य को भून कर कूट कर बनाते हैं। मगध तथा तिरहुत में विशेष प्रचलित हैं।

---

१. क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बलवर्धिनी।
विष्टम्भिनी हरेत् पित्तरक्तपित्ताग्निमारुतान् ॥ (भा. प्र.)
पायसः कफकृद् बल्यो विष्टम्भी मेदुरो गुरुः। (द्र. सं.)

२. सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्तानिलापहा।
ग्राहिणी सन्धिकृद्रुच्या तां खादेन्नातिमात्रया ॥ (भा. प्र.)

३. लप्सिका बृंहणी वृष्या बल्या पित्तानिलापहा।
स्निग्धा श्लेष्मकरी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम् ॥ (भा. प्र.)

४. पललं मलकृद् वृष्यं वातघ्नं कफपित्तकृत्।
बृंहणं च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्यनिवर्तकम् ॥ (भा. प्र.)

५. धानाः स्युर्दुर्जराः रूक्षास्तृट्प्रदाः गुरवश्च ताः।
तथा मेहकफच्छर्दिनाशिन्यः संप्रकीर्तिताः।
लाजाः स्युर्मधुराः शीताः लघवो दीपनाश्च ते।
स्वल्पमूत्रमला रूक्षाः बल्याः पित्तकफच्छिदः ॥
छर्द्यतीसारदाहास्रमेहमेदस्तृषापहाः। (भा. प्र.)
[illegible] । (द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पृथुक (चूड़ा) गुरु, विष्टम्भी, बल्य, बृंहण, वातनाशक तथा कफवर्धक है[1]। इसका सेवन दूध, दही, आम्ररस आदि के साथ करते हैं।

३५. होलक-उम्बी—अर्धपक्व शिम्बीधान्य (चना, मटर आदि) को तृणाग्नि में भून कर होलक (होरहा) बनाते हैं। इसी प्रकार शूकधान्य (यव, गोधूम आदि) की प्रौढ़ मञ्जरी को भून कर उम्बी (उलम्बिका) बनाई जाती है।

होलक के गुणधर्म द्रव्यानुसार हैं। सामान्यतः यह मेदोहर तथा कफनाशक है। उम्बी वातपित्तशामक तथा कफवर्धक है[2]।

३६. कुल्माष—चना, मूंग आदि कच्चे धान्य को जल में कुछ काल तक छोड़ देते हैं। फूल जाने या अंकुरित होने पर उसे यों ही या अग्नि पर संस्कृत कर खाते हैं। यही कुल्माष (घुघरी या घुघनी) है।

कुल्माष (घुघरी) गुरु, रूक्ष, वातल तथा पुरीषभेदन हैं।[3] अंकुरित धान्य विशेष पुष्टिकर और शक्तिदायक होते हैं।

३७. सक्तु—भूने अन्न को पीस कर सत्तू बनाते हैं। चना और यव का सत्तू विशेष प्रचलित है।

सक्तु (सत्तू) प्रायः रूक्ष, विबन्धकारक तथा वातवर्धक होते हैं।[4] प्रमेह तथा अम्लपित्त में ये उत्तम पथ्य हैं। चीनी, घी, आदि के योग से ये स्निग्ध एवं तर्पण हो जाते हैं।

सत्तू का अवलेह की तरह या द्रव के रूप में लेने पर लघु तथा ठोस पिण्डी के रूप में लेने पर गुरु होता है।[5]

सत्तू भारत का एक प्राचीन आहारकल्प है। इसके सेवन के अनेक नियम अनुभव के आधार पर बनाये गये हैं। ऐसा कहा गया है कि पृथक् से जलपान, पुनः लेना, मांससहित, दूध के साथ, रात में, दांत से काट-काटकर तथा गरम कर सत्तू का सेवन वर्जित है।[6]

---

१. पृथुका गुरवो वातनाशनाः श्लेष्मला अपि। (भा. प्र.)
पृथुकाः गुरवः स्निग्धाः कफविष्टम्भकारकाः।
बल्याः सक्षीरभावात्तु वातघ्ना भिन्नवर्चसः॥ (द्र. सं.)
२. होलकोऽल्पानिलो मेदःकफदोषत्रयापहः।
भवेद् यो होलको यस्य स च तत्तद्गुणो भवेत्॥ (भा. प्र.)
उम्बी कफप्रदा बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा।
३. कुल्माषा गुरवो रूक्षा वातला भिन्नवर्चसः। (भा. प्र.)
धान्यमंकुरितं बल्यं सद्यः स्फूर्तिकरं हि तत्। (स्व.)
४. सक्तवो वातला रूक्षा बद्धवर्चस एव च। (द्र. सं.)
५. गुर्वी पिण्डी खरात्यर्थं लघ्वी सैव विपर्ययात्।
सक्तूनामाशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका॥ (द्र. सं.)
६. पृथक् पानं पुनर्दानं सामिषं पयसा निशि।
दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त सक्तुषु वर्जयेत्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३८. **मन्थ**—सत्तू में घी-चीनी मिला कर ठंढे जल में घोल (सम्भवतः मथानी से मथ) कर 'मन्थ' बनता है। इसका सेवन विशेषतः लोग गर्मियों में करते थे। यह आधुनिक 'लस्सी' का प्राचीन रूप है।

मन्थ तर्पण, सद्यःबलकर, तृष्णाशामक तथा दाहनाशक है[1]।

३९. **रसाला**—इसे शिखरिणी (श्रीखण्ड) भी कहते हैं। यह महाराष्ट्र में विशेष प्रचलित है। इसे छालीदार दही को मसल-छान कर बनाते हैं। अत्यन्त स्वादिष्ट बल्य है।

रसाला वातपित्तशामक, बल्य, बृंहण, वृष्य स्निग्ध तथा शीत है। रक्तपित्त, तृष्णा, दाह आदि में पथ्य है[2]।

४०. **शर्करोदक**—चीनी को पानी में घोल कर सौंफ मरिच आदि डाल कर शर्करोदक (शिकञ्जी) बनाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में सेवनीय है।

शर्करोदक शीत, वातपित्तशामक, तृष्णा, दाह, छर्दि में उपयोगी है[3]।

४१. **पानक**—शर्करोदक में फल (आम, नींबू, अनानास आदि) का रस मिला कर पानक (शरबत) बनाते हैं। चन्दन, उशीर आदि का भी पानक बनता है।

पानक (शरबत) के गुणधर्म घटक द्रव्यों के अनुसार होते हैं। सामान्यतः ये शीत-मधुर, वातपित्तशामक तथा मूत्रल होते हैं[4]।

द्राक्षा, महुआ, गंभार, खर्जूर तथा फालसा के फलों से पञ्चसार पानक बनता है। यह विशेष रूप से दाहशामक तथा तृष्णाहर है[5]।

४२. **आम्रजालि**—कच्चे आम के फलों को आग में भून कर मसल कर नमक-जीरा आदि देकर आम्रजालि (अमझोरा) बनाया जाता है। यह दाहशामक

---

१. मन्थः सद्योबलकरः पिपासाज्वरनाशनः। (द्र. सं.)

२. 'रसाला शुक्रला बल्या रोचनी वातपित्तजित्।
दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा॥
रक्तपित्तं तृषां दाहं प्रतिश्यायं विनाशयेत्।' (भा. प्र.)
'नभस्वन्तं हन्ति व्यपजयति पित्तं सरुधिरं,
बलासं सोल्लासं रचयति बलं वर्धयति च।
श्रमच्छर्दिभ्रान्तिक्लमदवथुपानात्ययतृषोऽपि जित्वा,
तत्कालं प्रथयति रुचिं सा शिखरिणी॥ (द्र. श.)

३. शर्करोदकमाख्यातं शुक्रलं शिशिरं सरम्।
बल्यं रुच्यं लघु स्वादु वातपित्तप्रणाशनम्॥
मूर्च्छाछर्दितृषादाहज्वरशान्तिकरं परम्।' (भा. प्र.)

४. पानकं प्रीणनं हृद्यं गुरु विष्टम्भि मूत्रलम्।
क्षुत्तृट्श्रमक्लमहरं यथाद्रव्यगुणं च तत्॥ (कै. नि.)

५. कै. नि.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तथा रुचिवर्धक है। ग्रीष्मऋतु में इसका सेवन करते हैं। लू लगने पर इसे पिलाते तथा शरीर पर लेप करते हैं[1]।

४३. **चाय-कॉफी**—चाय और कॉफी आजकल प्रमुख पेय के रूप में प्रचलित हैं। ये उष्ण, वातशामक, स्फूर्तिदायक, मूत्रल तथा निद्रानाशक हैं[2]।

४४. **मांसरस**—मांसरस (सोरवा) तर्पण, बल्य, वृष्य तथा बृंहण है[3]।

४५. **सिद्धमांस**—पकाया हुआ मांस त्रिदोषशामक, दीपन तथा धातुवर्धक है[4]।

४६. **तलितमांस**—तला हुआ मांस अधिक स्निग्ध एवं पौष्टिक होता है[5]।

४७. **शूल्य**—शलाका में गूँथ कर मांस को पकाने से शूल्य (कबाब) बनता है। यह लघु, दीपन, कफवातशामक तथा बल्य है[6]।

४८. **दग्धमत्स्य**—भूनी मछली वृष्य, बृंहण है तथा कामियों के लिए सेवनीय है[7]।

---

१. आम्रजालिस्तु रुचिदा जिह्वाकण्ठविशोधनी।
दाहतृष्णाप्रशमनी ज्वरे वातपजे हिता॥ (स्व.)

२. चायकाफी लघू रूक्षे चोष्णवीर्येऽनिलापहे।
स्फूर्त्तिदे मूत्रले स्यातां निद्रावेगनिरोधके॥ (स्व.)
कॉफी का गुण द्वितीय भाग में देखें।

३. 'सिद्धमांसरसो रुच्यः श्रमश्वासक्षयापहः।
प्रीणनो वातपित्तघ्नः क्षीणानामल्परेतसाम्॥
विश्लिष्टभग्नसन्धीनां शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम्।
स्मृत्योजोबलहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम्॥
शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुःश्रवणार्थिनाम्।' (भा. प्र.)
'रसो ज्वरक्षयहरः स्मृत्योजः स्वरवर्धनः।
बृंहणः प्रीणनो वृष्यश्चक्षुष्यो व्रणिनां हितः॥ (द्र. सं.)

४. 'सिद्धमांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यं च बृंहणम्।
त्रिदोषशमनं श्रेष्ठं दीपनं धातुवर्धनम्॥ (भा. प्र.)

५. तलितं बलमेधाग्निमांसौजःशुक्रवृद्धिकृत्।
तर्पणं लघु सुस्निग्धं रोचनं दृढताकरम्॥ (भा. प्र.)

६. शूल्यं पलं सुधातुल्यं रुच्यं वह्निकरं लघु।
कफवातहरं बल्यं किञ्चित् पित्तकरं हितम्॥ (भा प्र.)

७. दग्धमत्स्यो गुरुर्वृष्यो बृंहणः प्राणवर्धनः।
क्षीणशुक्राश्च ये केचिद् भग्नजर्जरिताश्च ये॥
नित्यं स्त्रीसेविनश्चैव क्षीणरेतस एव च।
दग्धमत्स्यो हितस्तेषां सतैललवणान्वितः॥ (द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अष्टम अध्याय

मिष्टवर्ग

आहार में मिष्ट (मधुर) द्रव्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी न किसी रूप में मनुष्य इनका ग्रहण करता है। मधुर द्रव्यों (Sugars) से शरीर को सद्यः शक्ति प्राप्त होती है। यदि इनका अभाव हो या शरीरविकृति के कारण (यथा मधुमेह में) इनका समुचित उपयोग न हो तो शरीर शक्तिहीन एवं दुर्बल हो जाता है।

शरीर में माधुर्य की आपूर्त्ति के दो प्रमुख माध्यम हैं—इक्षु और मधु। प्राचीन काल में जांगल मधु से माधुर्य प्राप्त किया जाता था। आजकल इक्षु और उनके विविध विकारों का प्रचुर उपयोग होता है।

इक्षु

संप्रति पौण्ड्रक (पौंडा–Saccharum officinarum Linn.—इसका विवरण द्वितीय भाग में देखें।) की खेती भारत में सर्वत्र होती है। वैज्ञानिकों की ऐसी मान्यता है कि पौण्ड्रक का आदि स्थान न्यू गिनी तथा उसके पार्श्ववर्त्ती प्रदेश है। काश (S. spontaneum Linn.) की वन्य जातियों के साथ उपर्युक्त आदिम इक्षु के संकर से वर्त्तमान पौण्ड्रक का प्रादुर्भाव अतिप्राचीन काल में ही हुआ। पौण्ड्रक के पूर्व कान्तार (केतारी–S. sinensa Roxb.) का प्रचलन था। इसका काण्ड पतला होता है जो 'उत्तरभारतीय इक्षु' (North indian cane) के नाम से प्रसिद्ध है जबकि पौण्ड्रक 'भद्रेक्षु' (Noble cane) कहा जाता है। आजकल इक्षु की अनेक नई-नई संकर जातियाँ[1] विकसित हुई हैं।

चरक ने काण्डासव (सूत्र० २५) के प्रसङ्ग में चार द्रव्यों का उल्लेख किया है :—इक्षु, काण्डेक्षु, इक्षुबालिका तथा पौण्ड्रक। ये चारों इक्षु की ही जातियाँ हैं। ध्यान देने की बात है कि पौण्ड्रक सबसे अन्त में दिया गया है जिससे इसके परवर्त्ती उद्भव का तथ्य पुष्ट होता है। वानस्पतिक दृष्टि से ये निम्नाङ्कित रूप में रक्खे जा सकते हैं :—

१. इक्षु—S. sinense Roxb.
२. काण्डेक्षु (काशभेद)—Variety of S. spontaneum Linn.
३. इक्षुबालिका (शरभेद)—S. arundinaceum Retz.
४. पौण्ड्रक—S. officinarum Linn.

---

१. सुश्रुत ने भी अनेक जातियों का वर्णन किया है जो चरक की अपेक्षा निःसन्देह विकसित हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक संघटन—सामान्यतः इक्षु में जल ७०–७५, शर्करा (इक्षुशर्करा, ग्लूकोज तथा फलशर्करा) १२–१५, सूत्र १२–२०, नत्रजनीय पदार्थ ०·३–०·४, वसा एवं मोम ०·१५–०·२५, गोंद एवं पेक्टिन ०·१५–०·२५, स्वतन्त्र अम्ल ०·०८–०·१२, संयुक्त अम्ल ०·१०–०·१२ तथा राख ०·३–०·५ प्रतिशत होती है। इक्षुरस में तीनों शर्कराओं में इक्षुशर्करा (सक्रोज) सर्वाधिक (७०–८८%) होता है। नत्रजनीय पदार्थों में प्रोटीन, पेप्टोन, एमाइड, ऐमिनो एसिड (मुख्यतः ऐस्पेरेजिन तथा ग्लुटेमिन), नाइट्रेट तथा अमोनियम लवण होते हैं। कार्बनिक अम्लों में एकोटिनिक अम्ल सर्वाधिक (लगभग ३/४) होता है। इसके अतिरिक्त निम्बुकाम्ल, सेवाम्ल, चुक्राम्ल आदि होते हैं। खनिजों में सिलिका २·१–५·३, लौह + अलुमिनियम ५·२–११·४, कैलशियम ३–५·६, मैगनीशियम १·२–६·२, क्लोराइड २·८–५·१, सलफेट ३५·०–३६·९, फास्फेट १०·८–१७·२ तथा कुल क्षार २३·८–२४·९ प्रतिशत होता है। जीवनीय द्रव्यों में विटामिन बी कम्प्लेक्स तथा डी होते हैं। कुछ किण्वतत्व तथा रञ्जक द्रव्य भी पाये जाते हैं।

इक्षु के विकार

१. **इक्षुरस**—ईख को दांतों से चबा कर रस चूसते हैं और यन्त्र से दबा कर रस निकाला जाता है।

२. **गुड**—रस को अत्यन्त गाढ़ा कर, घन बनाने से गुड़ बनता है।

३. **फाणित**—यह इक्षुरस को गाढ़ा करने पर बनता है।

४. **मत्स्यण्डी**—इक्षुरस को और गाढ़ा करने पर मत्स्यण्डी बनती है जिसमें मछली के अण्डों की तरह दाने होते हैं। यह राब कहलाता है।

५. **खण्ड**—गुड़ को और साफ कर खण्ड (खांड़) बनाते हैं किन्तु यह बिलकुल सफेद नहीं होता।

६. **शर्करा**—और साफ होने पर शर्करा (शक्कर) बनती है। यह बालू की तरह दानेदार होती है।

७. **सिता**—बिलकुल सफेद चीनी सिता कहलाती है।

८. **सितोपला**—सैन्धवखण्ड के सदृश सिता का विकार सितोपला (मिश्री) है।

गुण-कर्म

इक्षु—इक्षु मधुर, मधुरविपाक, गुरु, शीत, स्निग्ध, बल्य, वृष्य, मूत्रल, रक्तपित्तशामक, कफवर्धक तथा कृमिजनक होते हैं[1]।

---

१. इक्षवो मधुराः मधुरविपाकाः गुरवः शीताः स्निग्धाः बल्या वृष्याः मूत्रलाः रक्तपित्तप्रशमनाः कृमिकफकराश्चेति। (सु. सू. ४६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इक्षुरस—इक्षु का दन्तनिष्पीडित रस मधुर, शीत, स्निग्ध, सर, बृंहण, वृष्य, वातपित्तशामक, कफवर्धक तथा अविदाही है जबकि यन्त्र से निकाला रस गुरु, विदाही एवं विष्टम्भी है[1]।

फाणित—गुरु, अभिष्यन्दी, कफवर्धक, शुक्रल तथा बृंहण है[2]।

मत्स्यण्डी—मत्स्यण्डिका, खण्ड और शर्करा उत्तरोत्तर निर्मल होने के कारण उसी क्रम से उनमें उत्तरोत्तर माधुर्य, स्नेह, गुरुत्व, शैत्य और सरत्व अधिक होता है[3]।

गुड—क्षारीय, गुरु, स्निग्ध, मूत्रशोधन, नातिपित्तहर, मेद, कफ, क्रिमि एवं बल को बढ़ाने वाला है। पुराना गुड़ पथ्यतम कहा गया है[4]।

खण्ड—नातिस्निग्ध, वातपित्तशामक, हृद्य, बल्य, वृष्य, बृंहण, चक्षुष्य है[5]।

शर्करा—शर्करा (शकर) वातपित्तशामक, रक्तपित्तहर, मूर्च्छा, छर्दि तथा विष का नाशक है[6]।

सिता—सिता (चीनी) अत्यन्त निर्मल, सुमधुर, सुशीत एवं वृष्य होती है[7]।

सितोपला—सितोपला (मिश्री) इन सब में श्रेष्ठ है। यह सर, शीत एवं वातपित्तशामक है[8]।

---

१. वृष्यः शीतः सरः स्निग्धो बृंहणो मधुरो रसः।
श्लेष्मलो भक्षितस्येक्षोर्यान्त्रिकस्तु विदह्यते॥ (च. सू. २७)
'अविदाही कफकरो वातपित्तनिवारणः।
वक्त्रप्रह्लादनो वृष्यो दन्तनिष्पीडितो रसः॥
गुरुर्विदाही विष्टम्भी यान्त्रिकस्तु प्रकीर्त्तितः।' (सु. सू. ४६)

२. फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफशुक्रलम्। (द्र. सं.)

३. मत्स्यण्डिका-खण्ड-शर्कराः विमलजाताः उत्तरोत्तरं शीताः स्निग्धाः गुरुतराः मधुरतरा वृष्या रक्तपित्तप्रशमनास्तृष्णाप्रशमनाश्च।
यथा यथैषां वैमल्यं मधुरत्वं तथा तथा। स्नेहगौरवशैत्यानि सरत्वञ्च तथा तथा॥
(सु. सू. ४६)

४. प्रभूतक्रिमिमज्जासृङ्मेदोमांसकरो गुडः। (सु. सू. २७)
'गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धः सक्षारो मूत्रशोधनः।
वातपित्तहरो मेदःकफक्रिमिबलप्रदः॥
पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः।
स पुराणोऽधिकगुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः॥ (द्र. सं.)

५. खण्डं वृष्यतमं बल्यं चक्षुष्यं बृंहणं तथा।
वातपित्तहरं नाति स्निग्धं हृद्यं सुखप्रदम्॥ (द्र. सं.)

६. शर्करा वातपित्तासृङ्मूर्च्छाच्छर्दिविषापहा। (द्र. सं.)

७. सिता सुमधुरा रुच्या वातपित्तास्रदाहनुत्।
मूर्च्छाछर्दिज्वरान् हन्ति सुशीता शुक्रकारिणी॥ (भा. प्र.)

८. सितोपला सरा लघ्वी वातपित्तहरी हिमा। (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अन्य शर्करायें

इक्षु के अतिरिक्त उस कुल की अन्य वनस्पतियों यथा काश, शर, दर्भ आदि के काण्ड एवं पत्र से शर्करा प्राप्त होती है। इसी प्रकार यवास के पत्तों से यवासशर्करा (तुरञ्जबीन) निकलती है। मधु कुछ दिनों तक रख देने पर नीचे मधुशर्करा जम जाती है। ताल और खर्जूर के नीरा से भी गुड़ एवं शर्करा बनाई जाती है।

ये सब शर्करायें दाहशामक, रक्तपित्तप्रशमन तथा छर्दि, तृष्णा और मूर्च्छा में लाभकर हैं। काश, शर और दर्भ की शर्करा त्रिदोषघ्न; यवासशर्करा सारक तथा मधुशर्करा छेदन एवं छर्दि–अतिसारहर है[1]।

मधु

मधु का निर्माण पुष्परसों के द्वारा मधुमक्षिकायें करती हैं[2]। चरकसंहिता में इन मक्षिकाओं के आधार पर मधु चार प्रकार का कहा गया है[3] :—

१. माक्षिक
२. भ्रामर
३. क्षौद्र
४. पौत्तिक

पाणिनि ने 'माक्षिक' को संज्ञार्थक (संज्ञायाम् ४।३।११७) मान कर उसके बाद उस (मक्षिका) की चार जातियों का उल्लेख किया है यथा क्षुद्रा, भ्रमर, वटर[4] और पादप। इस प्रकार इनसे निष्पन्न मधु क्रमशः क्षौद्र, भ्रामर, वाटर और पादप हुये[5]। यदि उपर्युक्त चरकीय भेदों से सामञ्जस्य किया जाय तो वाटर माक्षिक तथा पादप पौत्तिक के समकक्ष होगा। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में मधुमक्षिकाओं की चार जातियों के अनुसार मधु के चार भेद निर्धारित थे।

---

१. मधुशर्करा पुनश्छर्द्यतीसारहरी रूक्षा छेदनी प्रह्लादनी कषायमधुरा मधुरविपाका च।
यवासशर्करा मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा चेति।
यावत्यः शर्कराः प्रोक्ताः सर्वाः दाहप्रणाशनाः।
रक्तपित्तप्रशमनाश्छर्दिमूर्च्छातृषापहाः॥ (सु. सू. ४६)
'त्रिदोषघ्नी सिता काशेक्षुदर्भच्छदसम्भवा।
दाहतृट्छर्दिमूर्च्छासृक्पित्तघ्न्यः सर्वशर्कराः॥ (अ. सं. सू. ६)

२. मक्षिकाओं के द्वारा निर्मित होने के कारण यह 'माक्षिक' (मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम्) कहलाता है।

३. माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौत्तिकं मधुजातयः। (च. सू. २७)

४. 'वटर' के स्थान पर 'वरट' हो सकता है जो भ्रमरवत् कीट होता है तथा जिसका दंश विषाक्त होता है 'वरटीदष्टसंकाशः'......।

५. क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् (सू. ४।३।११९)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आगे चल कर सुश्रुत ने इसकी आठ जातियों का उल्लेख किया है[1] :—

१. पौत्तिक

२. भ्रामर

३. क्षौद्र

४. माक्षिक

५. छात्र

६. आर्घ्य

७. औद्दालक

८. दाल

स्पष्टतः इनमें प्रथम चार चरकोक्त भेद ही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मक्षिका की जातियाँ तो चार ही हैं, अन्य चार भेद मधुच्छत्र (Bee hive) के परिमाण, आकृति, स्थान आदि के अनुसार किये गये। छात्र मधु के बड़े छत्ते हिमालय में पाये जाते हैं। आर्घ्य मधुच्छत्र से मधु चूता रहता है जैसे निरन्तर अर्घ्य दे रहा हो। औद्दालक मधु वल्मीक (भूकोटरों) में तथा दाल मधु वृक्षकोटरों में होता है।

आधुनिक दृष्टि से मधुमक्षिकाओं की चार जातियाँ होती हैं :—

१. एपिस डॉर्सेटा (Apis dorsata Fabr.)—यह शैलमक्षिका (Rock bee) कही जाती है क्योंकि यह खुले हुए चट्टानों, बड़े पेड़ों की शाखाओं या बड़े मकानों में छत्ते लगाती है। छत्ते बहुत बड़े लगभग ३–५ फीट लम्बे, २–३ फीट चौड़े होते हैं। यह मक्षिका सबसे बड़ी तथा निर्बन्ध स्वभाव की होती है अतः इसे घरेलू छत्तों में रखना असंभव है।

२. एपिस इण्डिका (Apies indica Fabr.)—यह मध्यमाकार सामान्य भारतीय मक्षिका (Indian hive bee) है। यह आच्छादित स्थानों यथा वृक्षकोटर, गिरिकन्दरा या भित्तिकोटरों में अपने छत्ते बनाती है। इन्हीं मक्खियों का पालन मधुमक्खी-पालक करते हैं।

इसके दो भेद होते हैं—एक देशीय तथा दूसरा पार्वत्य। पार्वत्य मक्षिका बड़ी तथा गहरे रंग की होती है और मधु भी अधिक बनाती है।

३. एपिस फ्लोरिया (Apies florea Fabr.)—यह क्षुद्रा (Little bee) कहलाती है और छोटे खुले छत्तों में स्वल्प मधु का निर्माण करती हैं।

४. मेलिपोना या ट्राइगोना प्रजाति (Melipona or Trigona species)—ये निर्यासमक्षिकायें (Dammar bees) कहलाती हैं क्योंकि

१. पौत्तिकं भ्रामरं क्षौद्रं माक्षिकं छात्रमेव च।
आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः॥ (सु. सू. ४५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इनसे रालीय निर्यास प्राप्त होता है। ये मक्षिकायें स्वल्प आकार की, गहरे रंग की, निर्दंश होती है और वृक्ष या भित्ति के कोटरों में छोटे छत्ते फनेल की आकृति के बनाती हैं। इनसे मधु स्वल्प किन्तु अधिक औषधीय गुणयुक्त निकलता है। ये अधिकांश बर्मा, श्रीलंका, आसाम तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशों में होता है[1]।

रासायनिक संघटन—मधु का वर्ण पीताभ से लेकर रक्ताभ भूरा या कृष्णाभ होता है[2]। वर्ण; गन्ध, स्वाद एवं सान्द्रता के अनुसार मधु की कोटि निर्धारित होती है। मधु एक सान्द्र द्रव है जिसका विशिष्ट गुरुत्व १·३५९–१·३६१ है तथा जो इक्षुशर्करा (सक्रोज) की तुलना में ९७% माधुर्ययुक्त है।

मधु में आर्द्रता १४–२४, द्राक्षशर्करा (डेक्स्ट्रोज) २३–३६, मधुशर्करा (लेव्युलोज) ३०–४४, इक्षुशर्करा (सक्रोज) ०·४–६, डेक्स्ट्रिन एवं गोंद ०·७ तथा राख ०·१–७ प्रतिशत होती है। इसमें विटामिन बी और सी पाये जाते हैं।

गुणकर्म—मधु के गुणकर्म मक्षिकाओं के द्वारा गृहीत पुष्परस के स्रोत तथा मक्षिका की जाति पर निर्भर होता है। यथा कमलमधु चक्षुष्य, सर्षपमधु कास-श्वासहर होता हैं।

चरक ने मधु को कषाय-मधुर, रूक्ष, गुरु, शीत, रक्तपित्तहर, कफशामक, वातवर्धक, छेदन तथा सन्धानीय कहा है[3]।

सुश्रुत ने इसे त्रिदोषशामक कहा है[4]।

नया मधु बृंहणीय, ईषत् कफघ्न और सर तथा पुराना मधु अतिलेखन, ग्राही; मेदोहर एवं स्थौल्यनाशक है। मधु एक उत्तम योगवाही द्रव्य है अतः विभिन्न

---

१. W. I., I, 166–172.

२. चरक ने माक्षिक तैलवर्ण, पौत्तिक घृतवर्ण, क्षौद्र कपिलवर्ण तथा भ्रामर श्वेतवर्ण बतलाया है। (च. सू. २७)

३. वातलं गुरु शीतं च रक्तपित्तकफापहम्।
सन्धानं छेदनं रूक्षं कषायं मधुरं मधु॥ (च. सू. २७)

४. मधु तु मधुरं कषायानुरसं रूक्षं शीतमग्निदीपनं वर्ण्यं स्वर्यं लघु सुकुमारं लेखनं हृद्यं सन्धानं शोधनं रोपणं वाजीकरणं संग्राहि चक्षुःप्रसादनं सूक्ष्ममार्गानुसारि पित्तश्लेष्ममेदोमेहहिक्काश्वासकासातिसारच्छर्दितृष्णाकृमिविषप्रशमनं ह्लादि त्रिदोषप्रशमनञ्च तत्तु लघुत्वात् कफघ्नं पैच्छिल्यात् माधुर्यात् कषायभावाच्च वातपित्तघ्नम्। (सु. सू. ४५)

मधु स्वादुरसं शीतं [illegible] व्रणशोधनरोपणम्।
कषायानुरसं रूक्षं [illegible] दीपनं लेखनम्॥
संधानं लघु चक्षुष्यं स्वर्यं [illegible] त्रिदोषनुत्।
श्वासहिक्काविषहरं [illegible] च॥ (द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

योगों के साथ अनेक रोगों में उपयोगी होता है[1]। आयुर्वेदीय औषधों के अनुपान रूप में मधु सर्वाधिक प्रचलित द्रव्य है।

मधु का उष्णता से विरोध बतलाया गया है अतः मधु को गरम नहीं करना चाहिए। इसी कारण उष्ण द्रव्यों के साथ, उष्णकाल में तथा उष्णताजन्य रोगों से पीड़ित व्यक्तियों में मधु का प्रयोग निषिद्ध है। वमन कार्य इसका अपवाद है क्योंकि उसमें वह शरीर के बाहर निकल जाता है अतः विषाक्त प्रभाव उत्पन्न करने का अवसर नहीं मिलता[2]।

घृत के साथ भी सम मात्रा में मधु का योग निषिद्ध है किन्तु विषम मात्रा में इनका संयोग अत्यन्त लाभकर है। अनेक रोगों में मधु–घृत के साथ औषध देने का विधान है विशेषतः परिणामशूल, यक्ष्मा आदि में। इस मिथुन में लेखन-रोपण दोनों धर्म हैं अतः व्रण या व्रणशोथ की स्थिति में इनका प्रयोग प्रशस्त है। आजकल वैद्य लोग इस उत्तम अनुपान पर ध्यान नहीं देते और धात्रीलौह, सितोपलादि आदि औषधों को केवल मधु से देते हैं जब कि इन्हें मधु–घृत से देने का विधान है। विधानपूर्वक औषधप्रयोग से अच्छा लाभ मिलता है।

मधूच्छिष्ट—मधु के छत्ते से जो मोम (Wax) निकलता है वह मधूच्छिष्ट (मोम) कहलाता है। मदनक, सिक्थक, मयन आदि इसके पर्याय हैं।

मोम मृदु, सुस्निग्ध, जन्तुघ्न, व्रणरोपण तथा सन्धानीय है। यह वातविकार, कुष्ठ, वीसर्प, वातरक्त, विपादिका[3] आदि में मलहम बना कर लगाने से लाभकर होता है।

मिलावट एवं परीक्षा

अन्य द्रव्यों की तरह मधु में भी मिलावट की जाती है। प्रायः इसमें चीनी की चाशनी मिला देते हैं।

रूई की बत्ती में मधु लेकर जलाने से विना आवाज के जलता है, चाशनी होने पर चट-चट की आवाज होगी।

---

१. 'बृंहणीयं मधु नवं नाति श्लेष्महरं सरम्।
मेदःस्थौल्यापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम्॥'
तद्युक्तं विविधैर्योगैर्निहन्त्यामयान् बहून्।
नानाद्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं मधु॥ (सु. सू. ४५)

२. 'उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु।
उष्णार्तमुष्णैरुष्णे वा तन्निहन्ति यथा विषम्॥'
'उष्णेन मधु संयुक्तं वमनेष्ववचारितम्।
अपाकादनवस्थानान्न विरुध्येत पूर्ववत्॥' (सु. सू. ४५)

३. 'मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रणरोपणम्।
भग्नसन्धानकृद् वातकुष्ठवीसर्परक्तजित्॥' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नवम अध्याय

स्नेहवर्ग

शरीर में बल के लिए स्नेहद्रव्यों की आपूर्त्ति आवश्यक है। मधुर द्रव्यों से तो सद्यः शक्ति एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है जबकि स्नेहद्रव्यों से स्थायी बल प्राप्त होता है।

योनिभेद से स्नेह दो प्रकार के हैं—एक जांगम और दूसरा स्थावर। जांगम स्नेह में गोरस (दूध, घी आदि) तथा स्थावर में तैल आते हैं।

गोरस

गौ, भैंस आदि पशुओं के दूध और उसके विकारों को गोरस कहते हैं। चरक ने गोरसवर्ग में दूध, दही, घी आदि द्रव्यों का वर्णन किया है।

१. **दुग्ध**—क्षीर, पयस्, स्तन्य इसके पर्याय हैं।

गुणकर्म—दुग्ध गुरु, स्निग्ध, मृदु, पिच्छिल, मधुररस, मधुरविपाक, शीतवीर्य, वातपित्तशामक तथा कफवर्धक है। यह मेध्य, वृष्य, बल्य, बृंहण तथा रसायन है! ओज के दसों गुण दुग्ध में होने के कारण यह पूर्ण ओजोवर्धक एवं जीवनीय है। इसी कारण ओज के विपरीत गुण विष का नाशक है। दुग्ध सर, शोणितस्थापन, स्नेहन, सन्धानीय, गर्भस्थापन, स्तन्यजनन, वर्ण्य, मूत्रल तथा दाहप्रशमन है। यह क्षय, जीर्णज्वर, अम्लपित्त-परिणामशूल, रक्तपित्त, उदररोग, विबन्ध, शुक्रदौर्बल्य तथा शोष आदि विकारों में अत्यन्त लाभकर है। क्षीर जीवनीय द्रव्यों में श्रेष्ठ तथा दुग्ध-घृत का निरन्तर सेवन सर्वोत्तम रसायन माना गया है अतः जरानिवारण के लिए दूध से बढ़कर कोई द्रव्य नहीं है। सभी प्रकार के दुग्ध में गोदुग्ध सर्वोत्तम तथा भेड़ी का दूध निकृष्ट कहा गया है[1]।

---

१. 'क्षीरं जीवनीयानाम्।' 'क्षीरघृताभ्यासो रसायनानाम्। (च. सू. २५)
'गोक्षीरं क्षीराणाम् (हिततमम्), अविक्षीरं क्षीराणाम् (अहिततमम्)'
(च. सू. २६)

'प्रायशो मधुरं स्निग्धं शीतं स्तन्यं पयो मतम्।
प्रीणनं बृंहणं वृष्यं मेध्यं बल्यं मनस्करम्॥
जीवनीयं श्रमहरं श्वासकासनिबर्हणम्।
हन्ति शोणितपित्तं च सन्धानं विहतस्य च॥
सर्वप्राणभृतां सात्म्यं शमनं शोधनं तथा।
तृष्णाघ्नं दीपनीयं च श्रेष्ठं क्षीणक्षतेषु॥
पाण्डुरोगेऽम्लपित्ते च शोषे गुल्मे तथोदरे।
अतिसारे ज्वरे दाहे श्वयथौ च विशेषतः॥

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

क्षीराष्टक—गो, अजा (बकरी), उरभ्र (भेंड़ी), महिषी (भैंस), करेणु (हथिनी), उष्ट्र (ऊँटनी), वड़वा (घोड़ी) तथा नारी इन आठ प्राणियों का दूध प्रयुक्त होता है। इसे क्षीराष्टक कहते हैं[1]। उपर्युक्त सामान्य गुण के अतिरिक्त इनके विशिष्ट गुणकर्म निम्नांकित हैं :—

गोदुग्ध—यह क्षीराष्टक में श्रेष्ठ माना गया है। गोदुग्ध अनभिष्यन्दी, स्निग्ध, मधुर, शीत, वातपित्तशामक, रक्तपित्तहर, जीवनीय एवं रसायन है[2]।

महिषीदुग्ध—भैंस का दुग्ध गोदुग्ध की अपेक्षा अधिक शीत, स्निग्ध तथा गुरु होता है। यह विशेषतः अनिद्रा तथा अत्यग्नि से पीड़ित व्यक्तियों के लिए उपयोगी है। महिषीक्षीर सर्वोत्तम निद्राजनन है[3]।

योनिशुक्रप्रदोषेषु मूत्रेषु प्रदरेषु च। पुरीषे ग्रथिते पथ्यं वातपित्तविकारिणाम्॥
नस्यलेपावगाहेषु वमनास्थापनेषु च। विरेचने स्नेहने च पयः सर्वत्र युज्यते॥'
(च. सू. १)

'तत्र सर्वमेव क्षीरं सर्वप्राणभृतामप्रतिषिद्धं जातिसात्म्यत्वात्, वातपित्तशोणितमानसेष्वपि विकारेष्वविरुद्धं, जीर्णज्वरकासश्वासशोषक्षयगुल्मोन्मादोदरमूर्च्छाभ्रममददाहपिपासाहृद्वस्तिदोषपाण्डुरोगग्रहणीदोषार्शःशूलोदावर्त्तातिसारप्रवाहिकायोनिरोगगर्भास्रावरक्तपित्तश्रमक्लमहरं पाप्मापहं बल्यं वृष्यं वाजीकरणं रसायनं मेध्यं वयःस्थापनमायुष्यं जीवनं बृंहणं संधानं वमनविरेचनास्थापनं तुल्यगुणत्वाच्चौजसो वर्धनं बालवृद्धक्षतक्षीणानां क्षुद्व्यवायव्यायामकर्शितानां च पथ्यतमम्।' (सु. सू. ४५)

'स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥
तदेवंगुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्।
प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥ (च. सू. २७)
'उपवासाध्वभाष्यस्त्रीमारुतातपकर्मभिः।
क्लान्तानामनुपानार्थं पयः पथ्यं यथामृतम्॥' (च. सू. २७)
'केवलं तु पयस्तस्याः शृतं वाऽशृतमेव वा।
शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्युक्तं तद् वृष्यमुत्तमम्॥' (च. चि. २)
जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्। (च. चि. ३)
'क्षीरं स्वादुरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम्।
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम्॥ (द्र. सं.)

१. क्षीरमष्टविधं गव्यमाजमौरभ्रमाहिषम्। कारेणवमथौष्ट्रं च वाडवं मानुषं तथा॥
(द्र. सं.)

२. गोक्षीरमनभिष्यन्दि स्निग्धं गुरु रसायनम्।
रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः॥
जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं मतम्। (सु. सू. ४५)

३. महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः।
स्नेहान्न्यूनमनिद्राय हितमत्यग्नये च तत्॥ (च. सू. २७)
'महिषीक्षीरं स्वप्नजननानाम्'। (च. सू. २५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अजादुग्ध—अजा (बकरी) का दूध कषाय-मधुर, शीत, लघु और ग्राही है तथा रक्तपित्त, अतिसार, क्षय, कास एवं विषों में प्रशस्त है। प्रायः इसका दुग्ध सर्वव्याधिहर है। शोषरोग में लाभकर है[1]।

मेषीदुग्ध—मेषी (भेंड़ी) का दुग्ध गुरु, उष्ण तथा कफपित्तवर्धक है। अतः विशुद्ध वातरोग में पथ्य है तथा वातरक्त में परिषेक के लिए उपयोगी है। अधिक सेवन से हिक्का-श्वास उत्पन्न करता है[2]।

हस्तिनीदुग्ध—हथिनी का दूध बल्य, गुरु तथा स्थिरताकर है[3]।

उष्ट्रीदुग्ध—उष्ट्री (ऊँटनी) का दूध ईषद् रूक्ष, उष्ण एवं लवण, लघु, दीपन तथा वात-कफ, आनाह, क्रिमि, शोफ, उदररोग और अर्श के लिए हितकर है[4]। राजस्थान तथा अन्य मरुस्थलीय प्रदेशों में यह दूध प्रचलित है।

घोटकीदुग्ध—घोटकी (वडवा, एकशफा) या घोड़ी का दूध बल्य, ईषत् अम्ललवण, रूक्ष तथा उष्ण है और शाखावात में हितकर है[5]।

नारीस्तन्य—नारी का दुग्ध सात्म्य, स्नेहन, जीवनीय, बृंहणीय तथा रक्तपित्त में नस्य और नेत्ररोगों में तर्पण के लिए उपयोगी है[6]।

गोदुग्ध धारोष्ण, माहिषदुग्ध धाराशीत, मेषीदुग्ध शृतोष्ण तथा अजादुग्ध शृतशीत हितकर होता है। दूध को विना जल के जितना ही पकाया जायगा उतना

---

१. छागं कषायमधुरं शीतं ग्राहि पयो लघु। रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम् ॥ (द्र. सं.)

गव्यतुल्यगुणं त्वाजं विशेषाच्छोषिणां हितम्।
दीपनं लघु संग्राहि श्वासकासास्रपित्तनुत् ॥
अजानामल्पकायत्वात् कटुतिक्तनिषेवणात्।
नात्यम्बुपानाद् व्यायामात् सर्वव्याधिहरं पयः ॥ (सु. सू. ४५)
'अजाक्षीरं शोषघ्नस्तन्यसात्म्यसांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्।' (च. सू. २५)

२. मेषीक्षीरं गुरु स्वादु स्निग्धोष्णं कफपित्तकृत्।
शुद्धेऽनिले भवेत् पथ्यं सेके चानिलशोणिते ॥ (द्र. सं.)
अविक्षीरं श्लेष्मपित्तजननानाम्—(च. सू. २५)
हिक्काश्वासकरं तूष्णं पित्तश्लेष्मलमाविकम्। (च. सू. २७)

३. हस्तिनीनां पयो बल्यं गुरु स्थैर्यकरं परम्। (च. सू. २७)

४. ईषद्रूक्षोष्णलवणमौष्ट्रकं दीपनं लघु।
शस्तं वातकफानाहक्रिमिशोफोदरार्शसाम् ॥ (द्र. सं.)

५. बल्यं स्थैर्यकरं सर्वमुष्णं चैकशफं पयः।
साम्लं सलवणं रूक्षं शाखावातहरं लघु ॥ (च. सू. २७)

६. जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः।
नावनं रक्तपित्ते च तर्पणं चाक्षिशूलिनाम् ॥ (च. सू. २७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

ही गुरु और स्निग्ध होगा। दूध में आधा पानी मिला कर उबाले और पानी जल जाने पर ले। यह दूध लघुतर हो जाता है[1]। उबालते समय पीपल, सोंठ या हलदी का टुकड़ा डाल दे तो दूध का श्लेष्मल दोष दूर हो जाता है।

कच्चा (अपक्व) दूध प्रायः अभिष्यन्दी और गुरु होता है तथा पकाया दूध लघुतर एवं अनभिष्यन्दी होता है। नारीदुग्ध अपक्व ही हितकर है[2]।

दुग्धविकार—दूध को गरम करने पर जो छाली जम जाती है वह सन्तानिका (दुग्धसर) कहलाती है। नवप्रसूता गौ के दूध को पीयूष (Colostrum) कहते हैं। इसमें प्रोटीन अधिक होता है। दूध में बिना जल दिये औंटाते-औंटाते जब गाढ़ा घन हो जाता है तब वह किलाटी (खोया या मावा) कहलाता है। दूध को फाड़ देने पर जो ठोस भाग बैठ जाता है वह किलाट (छेना) है तथा ऊपरी द्रवभाग क्षीरमस्तु या मोरट (छेना का पानी) कहलाता है। खोया और छेना की मिठाइयाँ बनती हैं। मलाई खाते हैं तथा छेना का पानी[3] मन्दाग्नि रोगियों को पिलाते हैं।

क्षीरसन्तानिका (मलाई) स्निग्ध, वातपित्तशामक तथा वृष्य है। पीयूष गुरु, अभिष्यन्दी तथा कफवर्धक है। किलाटी (खोया) गुरु, सुस्निग्ध, बल्य एवं वृष्य है। कूचिका बल्य तथा खोये से लघु है। छेना का पानी बल्य है तथा मन्दाग्नि में हितकर है[4]।

प्रातःकाल का दुग्ध सायंकाल के दुग्ध की अपेक्षा गुरु एवं शीत होता है[5]।

---

१. धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतं तु माहिषम्।
श्रतोष्णमाविकं पथ्यं श्रतशीतमजापयः॥
अर्धोदकं क्षीरशिष्टमामाल्लघुतरं पयः।
जलेन रहितं दुग्धमतिपक्वं यथा यथा॥
तथा तथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बलविवर्धनम्।' (भा. प्र.)

२. पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं प्रायशः परिकीर्त्तितम्।
तदेवोक्तं लघुतरमनभिष्यन्दि वै श्रतम्॥
वर्जयित्वा स्त्रियाः स्तन्यमाममेव हि तद्धितम्।

३. छेना का पानी में प्रोटीन १, वसा ०·३ तथा कार्बोहाइड्रेट ५ प्रतिशत होता है। १ कप छेना के पानी से ५० कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है।

४. क्षीरसन्तानिका वृष्या स्निग्धा पित्तानिलापहा। (द्र. सं.)
पीयूषं श्लेष्मलं स्निग्धमभिष्यन्दि गुरु स्मृतम्।
किलाटी मधुरा गुर्वी सुस्निग्धा बलशुक्रकृत्॥
किलाटं स्याल्लघुतरं सुस्वादु बलवर्धनम्।
लघु स्यात् किलाटनीरं बल्यं मन्दाग्नये हितम्॥ (स्व.)

५. प्राभातिकं पयः प्रायः प्रादोषाद् गुरु शीतलम्। (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दिन में प्रायः लोग विदाही अन्न-पान का सेवन करते हैं। इसके शमन के लिए रात में सोते समय दूध लेना चाहिए। ऐसी मान्यता है कि दिन में भोजन के बाद तक्र, रात में दुग्ध तथा उषाकाल में जल का सेवन करे तो मनुष्य नीरोग रहता है[1]।

निषिद्ध दुग्ध—जिसका वर्ण, रस, गन्ध विकृत हुआ हो तथा जो फट गया हो ऐसा दूध नहीं लेना चाहिए। दूध में अम्ल-लवण मिला कर भी न ले क्योंकि यह विरुद्ध संयोग हैं और इससे कुष्ठ आदि रोग होते हैं[2]।

२. **दधि**—दूध में जामन (आतञ्चन) डालने से जब वह जम जाता है तो दही कहलाता है। दही की छाली को 'दधिसर' तथा द्रवांश को 'मस्तु' या 'दधिमण्ड' कहते हैं।

रसभेद से दही मधुर, अम्ल और अत्यम्ल तीन प्रकार का होता है।[3] प्रायः ताजे जामन से जमाया ताजा दही मधुर होता है। कुछ काल रखने पर वह अम्ल फिर अत्यम्ल हो जाता है। भावमिश्र ने दही पाँच प्रकार का माना है—मन्द, मधुर, मधुराम्ल, अम्ल और अत्यम्ल। जो दही ठीक से नहीं जमता तथा दुग्धवत् ही रहता है वह मन्द कहलाता है[4]।

गुणकर्म—दही गुरु, स्निग्ध, अभिष्यन्दी, अम्लविपाक, उष्णवीर्य, वातघ्न, कफपित्तवर्धक, दीपन, बल्य, बृंहण एवं वृष्य है। यह उदररोग, पीनस, विषमज्वर तथा दौर्बल्य मे लाभकर है। अधिक तथा अविधिपूर्वक सेवन करने पर शोथ, रक्तविकार, ज्वर, रक्तपित्त तथा कामला उत्पन्न करता है।

दही की छाली बल्य, वृष्य तथा रक्तार्श में लाभकर है। दही का पानी (मस्तु) लघु, दीपन तथा ग्राही है[5]।

---

१. विदाहीन्यन्नपानानि दिवा भुङ्क्ते हि यन्नरः।
तद्विदाहस्य शान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा पिबेत्॥ (भा. : .)
भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वासरान्ते पिबेत् पयः।
निशान्ते च पिबेत् वारि त्रिभी रोगो न जायते॥ (स्व. दृ.)

२. विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः। वर्जयेदम्ललवणयुक्तं कुष्ठादिकृद् यतः॥
(भा. प्र.)

३. दधि तु मधुरमम्लमत्यम्लञ्चेति। (सु. सू. ४५)

४. आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लं च ततः परम्।
अम्लं चतुर्थमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्चधा॥ (भा. प्र.)

५. 'रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्धनम्।
पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं मंगल्यं बृंहणं दधि॥
पीनसे चातिसारे च शीतके विषमज्वरे।
अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्श्ये च दधि शस्यते॥' (च. सू. २७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मक्खन निकाला दही रूक्ष, विष्टम्भी, वातवर्धक एवं ग्राही है ।[1]

प्रयोगविधि—रात में दही न खाये । बिना घी-चीनी मिलाये भी न खाये । दही में मूंग का यूष, आंवला या मधु मिलाकर खाये । दही को गरम कर भी न ले ।[2]

प्रायः दही का सेवन वर्षा, हेमन्त और शिशिर में करना चाहिए । शेष तीन ऋतुओं (ग्रीष्म, शरद् और वसन्त में यह वर्जित है[3] ।)

३. **तक्र**—दही में जल देकर या निर्जल मथने से तक्र तैयार होता है ।

तक्रभेद—रस, जल तथा स्नेहांश के अनुसार तक्र के भेद किये गये हैं ।

रसानुसार दही के समान तक्र भी मधुर, अम्ल और अत्यम्ल तीन प्रकार का होता है ।

'दधि तु मधुरमम्लमत्यम्लं चेति । तत् कषायानुरसं स्निग्धमुष्णं पीनसविषमज्वरातिसारारोचकमूत्रकृच्छ्रकार्श्यापहं वृष्यं प्राणकरं मंगल्यं चेति ।
महाभिष्यन्दि मधुरं कफमेदोविवर्धनम् ।
कफपित्तकृदम्लं स्यादत्यम्लं रक्तदूषणम् ॥' (सु. सू. ४५)
'दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ।
पाकेऽम्लं श्वासपित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥
मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे ।
अतिसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते मलशुक्रकृत् ॥' (भा. प्र.)
कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि ।
कफपित्तकरः मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत् ॥ (भा. प्र.)
'मन्दकं दध्यभिष्यन्दकराणाम् ।' 'दधि शोफं जनयति ।' (च. सू. २७)

1. दधिस्त्वसारं रूक्षं च ग्राहि विष्टम्भि वातलम् । (द्र. सं.)

2. 'न नक्तं दधि भुञ्जीत चाप्यघृतशर्करम् ।
नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥' (च.)
'ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान् ।
प्राप्नुयात् कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥'
दध्नः सरो गुरुर्वृष्यो विज्ञेयोऽनिलनाशनः ।
वह्नेर्विधमनश्चापि कफशुक्रविवर्धनः ॥ (द्र. सं.)
दध्नः सरं शरच्चन्द्रसन्निभं दोषवर्जितम् ।
शर्कराक्षौद्रमरिचैस्तुगाक्षीर्या च बुद्धिमान् ॥
बलवर्णस्वरोपेतः पुमांस्तेन वृषायते ॥ (च. चि. २)
'दधिसरमथिताभ्यासादर्शांस्यपयान्ति रक्तानि । (च. चि. १४)
'दध्नः सरश्च यमके भृष्टो वर्चःक्षये हितः ।' (सु. उ. ४०)
'दधिमस्तु सरं स्रोतःशोधि दीपनपाचनम् ।' (स्व.)

3. 'हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ।
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद् विगर्हितम् ॥' (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक ने स्नेहांश के अनुसार तीन प्रकार का तक्र बतलाया है :—अनुद्धृतस्नेह, अर्धोद्धृतस्नेह तथा उद्धृतस्नेह (रूक्ष)[१]।

चक्रपाणि ने चार प्रकार का तक्र इस प्रकार कहा है[२] :—

- तक्र
  - ससर
    - निर्जल (घोल)
    - पादजल (तक्र)
    - अर्धजल (उदश्वित्)
  - सररहित (मथित)

भावमिश्र ने सररहित में एक और भेद प्रचुरोदक 'छच्छिका' (छाछ) नाम से किया है। इस प्रकार भावप्रकाश में तक्र के पांच भेद वर्णित है।[३]

गुणकर्म—घोल: वातपित्तशामक, तक्र त्रिदोषहर, उदश्वित् कफवर्धक तथा मथित कफपित्तशामक है[४]। छाछ लघु, शीतल, वातपित्तशामक, कफकारक तथा नमक के साथ लेने पर दीपन है[५]।

घृत निकाला हुआ तक्र अत्यन्त लघु, पथ्य, किञ्चित् घृत निकाला हुआ गुरु, वृष्य तथा कफवर्धक तथा बिना घी निकाला तक्र गरिष्ठ, बल्य तथा श्लेष्मल है[६]।

कुछ आचार्य कहते हैं कि अम्लता से वात, माधुर्य से पित्त तथा कषाय रस से कफ का शमन करने के कारण तक्र त्रिदोषशामक है[७] किन्तु अधिकतर आचार्य तक्र को कफवातशामक मानते हैं। चरक कहते हैं कि कफवातज विकारों के

---

१. रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम्।
तक्रं दोषाग्निबलवित् त्रिविधं तत् प्रयोजयेत्॥ (च. चि. १४)

२. ससरं निर्जलं घोलं तक्रं पादजलान्वितम्।
अर्धोदकमुदश्वित् स्यान् मथितं सरवर्जितम्॥ (द्र. सं.)

३. ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम्। तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्वर्धवारिकम्॥
छच्छिका सारहीना स्यात् स्वच्छा प्रचुरवारिका। (भा. प्र.)

४. घोलं पित्तानिलहरं तक्रं दोषत्रयापहम्।
उदश्वित्श्लेष्मलं चैव मथितं कफपित्तनुत्॥ (द्र. सं.)

५. छच्छिका शीतला लघ्वी पित्तश्रमतृषाहरी।
वातनुत् कफकृत् सा तु दीपनी लवणान्विता॥ (भा. प्र.)

६. 'समुद्धृतघृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः।
स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद् गुरु वृष्यं कफावहम्॥'
अनुद्धृतघृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः।

७. अम्लेन वातं मधुरेण पित्तं कफं कषायेण निहन्ति सद्यः। (रा. नि.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लिए तक्र से बढ़ कर कोई औषध नहीं है। यों अन्य द्रव्यों के संयोग से दोषविशेष में इसके उपयोग का विधान किया गया है यथा वातज विकारों में अम्ल तक्र सोंठ और सैन्धव लवण मिला कर; पैत्तिक विकारों में मधुर तक्र शर्करा के साथ; कफज विकारों में त्रिकटु एवं यवक्षार मिला कर तक्र का प्रयोग करना चाहिए। हींग, जीरा और सेंधा नमक मिला कर तक्र वातशामक, अर्श, अतिसार, बस्तिशूल तथा अग्निमांद्य में लाभकर हैं। मूत्रकृच्छ्र में गुड़ मिला कर तथा पाण्डु में चित्रक मिला कर तक्र देना चाहिए[1]।

तक्र मधुर, अम्ल, कषाय, लघु, रूक्ष, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, दीपन, स्रोतः शोधन, ग्राही, हृद्य, मूत्रल तथा लेखन है[2]। यह ग्रहणीदोष, अर्श, शोथ तथा स्नेहव्यापत् (मेदोरोग) के लिए सर्वोत्तम पथ्य कहा गया है[3]।

---

१. वातेऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठीसैन्धवसंयुतम्।
पित्ते स्वादु सितायुक्तं व्योषक्षारयुतं कफे॥
हिंगुजीरयुतं घोलं सैन्धवेन च संयुतम्।
भवेद्‌तीव वातघ्नमर्शोऽतीसारहृत् परम्॥
रुचिदं पुष्टिदं बल्यं बस्तिशूलविनाशनम्।
मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम्॥ (भा. प्र.)

२. वातश्लेष्महरं कषायमधुराम्लाष्णं सकृच्छ्राश्मजित्,
मूत्राघातविबन्धमेहशमनं सप्लीहगुल्मापहम्।
दुर्नामामयपाण्डुरोगजठरव्यापद्ग्रहण्यन्तकृत्,
तक्रं दीपनपाचनं लघुतरं ग्राह्याज्यदोषप्रणुत्॥ (द्र. गु.)

३. 'तक्राभ्यासो ग्रहणीदोषशोफार्शोघृतव्यापत्प्रशमनानाम्।' (च. सू. २५)
'तक्रं तु मधुरमम्लं कषायानुरसमुष्णवीर्यं लघु रूक्षमग्निदीपनं गरशोफातिसार-ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःप्लीहगुल्मारोचकविषमज्वरतृष्णाच्छर्दिप्रसेकशूलमेदःश्लेष्मानि-लहरं मधुरविपाकं हृद्यं मूत्रकृच्छ्रस्नेहव्यापत्प्रशमनमवृष्यं च।......
वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वादु सशर्करम्।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम्॥ (सु. सू. ४५)
'नातिसान्द्रं मतं पाने स्वादु तक्रमपेलवम्।' (च. चि. १३)
गौरवारोचकार्त्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम्।
तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्पते॥ (च. चि. १३)
'हतानि न विरोहन्ति तक्रेण गुदजानि तु।
भूमावपि निषिक्तं तद्दहेत्तक्रं तृणोलुपम्॥
किं पुनर्दीप्तकायाग्नेः शुष्काण्यर्शांसि देहिनः।
'स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैति यः।
तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते॥
वातश्लेष्मविकाराणां शतं चापि निवर्त्तते।
नास्ति तक्रात् परं किंचिदौषधं कफवातजे॥' (च. चि. १४)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आधुनिक अनुसन्धान से भी तक्र मेदोरोगजन्य हृद्विकार में लाभकर पाया गया है।

ताजा (अपक्व) तक्र कोष्ठगत कफ को तो नष्ट करता है किन्तु कण्ठ में कफ को उत्पन्न करता है। अतः पीनस, कास श्वास तथा कण्ठ रोगों में पक्व तक्र का प्रयोग करना चाहिए[1]।

प्रयोगनिषेध—उरःक्षत, दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, दाह एवं रक्तपित्त में तथा उष्णकाल में तक्र का प्रयोग निषिद्ध है[2]।

४. **नवनीत**—नवनीत दूध से निकाले हुए ताजे मक्खन को कहते हैं। दही से निकाला नवनीत हैयंगवीन कहलाता है किन्तु आजकल मक्खन के लिए सामान्यतः नवनीत शब्द का प्रयोग होता है।

गुणकर्म—नवनीत लघु-स्निग्ध, मधुर-कषाय-ईषदम्ल, मधुरविपाक, शीतवीर्य, वातपित्तशामक, दीपन, संग्राही, हृद्य, मेध्य, वृष्य है। यह क्षय, कास, व्रणशोष, अर्श तथा अर्दित रोग के लिए प्रशस्त है। दूध से निकाला मक्खन अतिशीत, चक्षुष्य, रक्तपित्तहर तथा संग्राही है[3]।

वातश्लेष्मार्शसां तक्रात् परं 'नास्तीह भेषजम्।
तत् प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव च॥ (च. चि. १४)
तक्रं तु ग्रहणीदोषे दीपनग्राहिलाघवात्।
श्रेष्ठं मधुरपाकित्वान्न च पित्तं प्रकोपयेत्॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे मतम्।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहि तत्॥
तस्मात् तक्रप्रयोगा ये जठराणां तथार्शसाम्।
विहिता ग्रहणीदोषे सर्वशस्तान् प्रयोजयेत्॥' (च. च. १५)

१. तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च। (अ. सं. सू. ७)
पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव प्रयुज्यते॥ (भा. प्र.)

२. 'नैवं तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले।
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे॥ (अ. सं. सू. ६)

३. संग्राहि दीपनं हृद्यं नवनीतं नवोद्धृतम्।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नमर्दितारुचिनाशनम् ॥ (च. सू. २७)
'नवनीतं पुनः सद्यस्कं लघु सुकुमारं मधुरं कषायमीषदम्लं शीतलं मेध्यं दीपनं हृद्यं संग्राहि पित्तानिलहरं वृष्यमविदाहि क्षयकासप्रक्षतिव्रणशोषार्शोर्दितापहं कफमेदोविवर्धनं बलकरं बृंहणं शोषघ्नं विशेषतो बालानां प्रशस्यते। क्षीरोत्थितं पुनर्नवनीतमुत्कृष्टस्नेहं माधुर्ययुक्तमतिशीतं सौकुमार्यकरं चक्षुष्यं संग्राहि रक्तपित्त-नेत्ररोगहरं प्रसादनम्। (सु. सू. ४५)
'नवनीततिलाभ्यासात् केसरनवनीतशर्कराभ्यासात्।
दधिसरमथिताभ्यासादर्शांस्युपयान्ति रक्तानि॥ (च. चि. १४)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

घी स्निग्धतर होने पर भी अर्दित में नवनीत के समान लाभकर नहीं होता[1]। अतः अर्दित रोग में नवनीत का विशिष्ट प्रभाव है।

५. **घृत**—नवनीत का पाक कर उससे घृत बनता है। गव्य घृत सर्वोत्तम और भेड़ी का घी निकृष्ट माना गया है।

गुणकर्म—घृत गुरु-स्निग्ध, मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, वातपित्तशामक है। यह मेध्य, दीपनीय, स्नेहन, अनुलोमन, हृद्य, वृष्य, गर्भस्थापन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, बल्य, बृंहण, रसायन तथा चक्षुष्य है। यह सभी स्नेहों में उत्तम माना गया है। पुराण घृत मानसदोषहर, विषघ्न, ज्वरघ्न तथा स्रोतःशोधन है।

रक्तपित्त में घृत का नस्य लेते हैं। पार्श्वशूल में पुराना घी मालिश करते हैं। कार्श्य, दौर्बल्य, उदावर्त्त, गुल्म, कास, गर्भपात, जीर्णज्वर तथा तिमिर रोग में घृत सेवन प्रशस्त है। क्षीरघृत का अभ्यास सभी रसायनों में उत्तम है। पुराना घी विषमज्वर, जलसंत्रास, तिमिर, उन्माद, अपस्मार आदि मानस विकारों में लाभकर है।

दस वर्षों तक रखा घी पुराण, ग्यारह से सौ वर्षों तक का पुराना कुम्भघृत तथा सौ वर्षों के बाद का महाघृत कहलाता है।

घृत एक उत्तम योगवाही है। औषधों से संस्कृत होने पर उनके गुणों में उत्कृष्टता ला देता है। ऐसा गुण किसी अन्य स्नेह में नहीं है।

× × × ×

'घृतं पित्तानिलहरं रसशुक्रौजसां हितम्। निर्वापणं मृदुकरं स्वरवर्णप्रसादनम्॥
(च. सू. १३)

'वातपित्तप्रकृतयो वातपित्तविकारिणः। चक्षुःकामाः क्षताः क्षीणाः वृद्धाः बालास्तथाऽबलाः॥
आयुःप्रकर्षकामाश्च बलवर्णस्वरार्थिनः। पुष्टिकामाः प्रजाकामाः सौकुमार्यार्थिनश्च ये॥
दीप्त्योजःस्मृति मेधाग्निबुद्धीन्द्रियबलार्थिनः। पिबेयुः सर्पिरार्त्ताश्च दाहशस्त्रविषाग्निभिः॥'
(च. सू. १३)

'सर्पिर्वातपित्तप्रशमनानाम्।' (च. सू. २५)

'गव्यं सर्पिः सर्पिषाम् (हिततमम्), आविकं सर्पिः सर्पिषाम् (अहिततमम्)' (च. सू. २६)

'स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्धनम्।
वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीविषापहम्। सर्वस्नेहोत्तमं सर्पिर्मधुरं रसपाकयोः॥'
(च. सू. २७)

सहस्रवीर्यं विधिवद् घृतं कर्मसहस्रकृत्।
मदापस्मारमूर्च्छायशोषोन्मादगरज्वरान्। योनिकर्णशिरःशूलं घृतं जीर्णमपोहति॥
यथा प्रज्वलितं वेश्म परिषिञ्चन्ति वारिणा। नराः शान्तिमभिप्रेत्य तथा जीर्णज्वरे घृतम्॥
स्नेहाद् वातं शमयति शैत्यात् पित्तं नियच्छति। घृतं तुल्यगुणं दोषं संस्कारात्तु जयेत् कफम्॥
नान्यः स्नेहस्तथा कश्चित् संस्कारमनुवर्त्तते। यथा सर्पिरतः सर्पिः सर्वस्नेहोत्तमं मतम्॥'

१. सर्पिः स्निग्धतरं हन्ति नार्दितं नवनीतवत्। (अ. सं. सू. ७)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

दुग्ध एवं दुग्धविकारों का रासायनिक सङ्घटन[1]

[पृ० ३०४

	प्रति १०० ग्राम पोषक तत्व						खनिज						विटामिन					
	आर्द्रता ग्रा.	प्रोटीन ग्रा.	वसा ग्रा.	खनिज ग्रा.	कार्बोहाइड्रेट ग्रा.	कैलोरी	कैल्शियम मि. ग्रा.	फास्फरस मि. ग्रा.	लौह मि. ग्रा.	सोडियम मि. ग्रा.	पोटाशियम मि. ग्रा.	गन्धक मि. ग्रा.	विटामिन ए I. U.	कैरोटिन I. U.	थायामिन मि. ग्रा.	राइबोफ्लेविन मि. ग्रा.	निकोटिनिक एसिड मि. ग्रा.	विटामिन सी मि. ग्रा.
१. दुग्ध																		
गोदुग्ध	८७.५	३.२	४.१	०.८	४.४	६७	१२०	९०	०.२	१६.०	१४०	१५	१७४	१०	०.०५	०.१९	०.१	२
माहिषदुग्ध	८१.०	४.३	८.८	०.८	५.१	११७	२१०	१३०	०.२	१९.०	९०	—	१६०	—	०.०४	०.१०	०.१	१
अजादुग्ध	८६.८	३.३	४.५	०.८	४.६	७२	१७०	१२०	०.३	११.०	११०	—	१८२	०	०.०५	०.०४	०.३	१
गर्दभीदुग्ध	८९.९	२.१	१.५	०.३	६.२	४८	८०	—	—	—	—	—	—	—	०.०६	०.०३	०.१	१०
नारीस्तन्य	८८.०	१.१	३.४	०.१	७.४	६५	२८	११	०.१	—	—	—	१३७	०	०.०२	०.०२	—	३
किलाटी (गोदुग्ध)	२५.२	२०.१	२५.९	४.०	२४.८	४१३	९५६	६१३	—	—	—	—	४९७	—	०.२४	०.४१	०.४	—
,, (माहिषदुग्ध)	३०.६	१४.६	३१.२	३.१	२०.५	४२१	६५०	४२०	५.८	—	—	—	—	—	—	—	—	—
किलाट (गोदुग्ध)	५७.१	१८.३	२०.८	२.६	१.२	२६५	२०८	१३८	—	—	—	—	३६६	—	०.०७	०.०२	—	३
किलाट (माहिषदुग्ध)	५४.१	१३.४	२३.०	१.६	७.९	२९२	४८०	२७७	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
२. दधि	८९.१	३.१	४.०	०.८	३.०	३०	१४९	९३	०.३	३२	१३०	—	१०२	—	०.०५	०.१६	०.१	१
३. तक्र	९७.५	०.८	१.१	०.१	०.५	१५	३०	३०	०.८	—	—	—	—	—	—	—	—	—
४. नवनीत	१९.०	—	८१.०	२.५	—	७२९	—	—	—	—	—	—	३२००	—	—	—	—	—
५. घृत—गोघृत	८.०	—	९२.०	०.	—	८२८	—	—	—	—	—	—	२०००	—	—	—	—	—
माहिषघृत	—	—	१००.०	—	—	९००	—	—	—	—	—	—	९००	—	—	—	—	—

1. Gopalan et al : Special Report Series No. 42, I. C. M. R, New Delhi, 1966.

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

'सर्पिः खल्वेवमेव पित्तं जयति, माधुर्याच्छैत्यान्मन्दवीर्यत्वाच्च, पित्तं ह्यमधुरमुष्णं तीक्ष्णं च। (च. वि. १)

पुराणं तिमिरश्वासपीनसज्वरकासनुत् । मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥
एकादशशतञ्चैव वत्सरानुषितं घृतम् । रक्षोघ्नं कुम्भसर्पिः स्यात् परतस्तु महाघृतम् ॥
(सु. सू. ४५)

घृतं बुद्ध्यग्निशुक्रौजोमेदःस्मृतिकफावहम् । वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम् ॥
स्नेहोत्तमं योगवाहि सर्वथा मधुरं हिमम् । (द्र. सं.)

तैल

स्नेहद्रव्यों में घी के बाद तैल का स्थान आता है। मूलतः 'तैल' शब्द तिल के स्नेह (तैल) के लिए था किन्तु बाद में सामान्य स्नेहवाचक हो जाने के कारण वार्त्तिककार (कात्यायन) ने उसे प्रत्यय के रूप में परिणत कर दिया[1]।

तैल अभ्यङ्ग तथा खाने में व्यवहृत होते हैं। मुख्यतः तिल, सर्षप, अतसी, कुसुम्भ, नारिकेल और मधूक के तैल प्रयोग में लाते हैं[2]। आजकल इन तैलों को घृतोपम बनाकर 'वनस्पति' नाम से व्यवहार करते हैं।

गुणकर्म—तैल मधुर, कषायानुरस, उष्णवीर्य, सूक्ष्म, व्यवायी, वातघ्न, पित्तवर्धक, कफोदासीन, बद्धविण्मूत्र, त्वचा के लिए हितकर, मेध्य और दीपन है। वातघ्न द्रव्यों में तैल सर्वोत्तम माना गया है और संयोगसंस्कार से सर्वरोगहर है[3]।

१. **तिलतैल**—सभी तैलों में तिलतैल श्रेष्ठ माना गया है[4]। इसका बाह्य एवं

---

१. स्नेहे तैलच् (५।२।२९) यथा सर्षपस्य स्नेहः सर्षपतैलम् यहाँ सर्षपपद से स्नेहार्थ में तैलच् प्रत्यय हुआ है।

२. तिलः प्रियालाभिषुकौ बिभीतकश्चित्राभयैरण्डमधूकसर्षपाः।
कुसुम्भबिल्वारुकमूलकातसीनिकोचकाक्षोटकरञ्जशिग्रुकाः ॥
स्नेहाशयाः स्थावरसंज्ञितास्ते। (च. सू. १३)

३. कषायानुरसं स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च।
पित्तलं बद्धविण्मूत्रं न च श्लेष्माभिवर्धनम् ॥
वातघ्नेषूत्तमं बल्यं त्वच्यं मेधाग्निवर्धनम्।
तैलं, संयोगसंस्कारात् सर्वरोगापहं मतम् ॥ (च. सू. २७)
तैलसर्पिर्मधूनि वातपित्तश्लेष्मप्रशमनानि द्रव्याणि भवन्ति। तत्र तैलं स्नेहौष्ण्यगौरवोपपन्नत्वाद् वातं जयन्ति सततमभ्यस्यमानं, वातो हि रौक्ष्यशैत्यलाघवोपपन्नो विरुद्धगुणो भवति, विरुद्धगुणसन्निपाते हि भूयसाऽल्पमवजीयते, तस्मात्तैलं वातं जयति सततमभ्यस्यमानम्। (च. चि. १)

४. सर्वेभ्यस्त्विह तैलेभ्यस्तिलतैलं प्रशस्यते। (सु. सू. ४५)
सर्वेषां तैलजातानां तिलतैलं विशिष्यते। बलार्थे स्नेहने चाग्र्यम्—
(च. सू. १३)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आभ्यन्तर दोनों प्रयोग होता हैं। महाराष्ट्र में इसका आहार में विशेष प्रयोग है। उपर्युक्त सभी गुणकर्म तिलतैल में मिलते हैं।

२. **सर्षपतैल**—सर्षपतैल कटु, उष्णवीर्य, कफवातशामक, रक्तपित्तकोपक, शुक्रनाशन तथा कण्डू, कोठ आदि चर्मरोगों को नष्ट करने वाला है[१]। काश्यपसंहिता में कटुतैलकल्प में इसके प्रयोगों का विस्तृत वर्णन किया है। प्लीहावृद्धि के लिए यह उत्तम द्रव्य कहा गया है।

३. **अतसीतैल**—अतसी (अलसी) का तैल मधुराम्ल, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वातशामक, कफ एवं रक्तपित्त का कोपक, चर्मरोग का जनक है[२]।

४. **कुसुम्भतैल**—कुसुम्भ (बर्रे) का तैल गुरु, उष्ण, कटुविपाक, विदाही, सर्वदोषकोपक एवं चर्मरोगजनक होता है[३]।

५. **नारिकेलतैल**—नारिकेल (नारियल) का तैल दक्षिणभारत में घी के स्थान पर बहुशः प्रयुक्त होता है। यह गुरु, शीत, वातपित्तशामक, कफवर्धक, केश्य है।

६. मधूकतैल भी इन्हीं गुणों वाला है[४]।

७. **भूमिगिरतैल**—भूमिगिर (मूंगफली–Ground nut) का तैल आजकल आहार में काफी प्रचलित है। यह उष्ण, स्निग्ध, विदाही, कफवातशामक है[५]।

तैल बृंहण और लेखन दोनों है। वाग्भट ने इस तथ्य का उल्लेख किया है[६]। इसके पूर्व सुश्रुत ने भी तैल को बृंहण और लेखन दोनों कहा है। इसकी व्याख्या करते हुए डल्हण लिखते हैं कि धातुपुष्टिकर होने से शरीर को दृढ़ बनाता है अतः बृंहण और मेदोहर होने के कारण लेखन है। मेदोहर होते हुए भी इसका मांसवर्धन

---

१. कटूष्णं सार्षपं तैलं रक्तपित्तप्रदूषणम्। कफशुक्रानिलहरं कण्डूकोठविनाशनम्॥ (च. सू. २७)

२. आतस्यं मधुराम्लं तु विपाके कटुकं तथा। उष्णवीर्यं हितं वाते रक्तपित्तप्रकोपणम्॥ (च. सू. २७)

उमाकुसुम्भजं सोष्णं त्वग्दोषकफपित्तकृत्। (अ. सं. सू. ६)

३. कुसुम्भतैलमुष्णं च विपाके कटुकं गुरु। विदाहि च विशेषेण सर्वदोषप्रकोपणम्॥ (च. सू. २७)

४. नालिकेरमधूकजम्।........वातपित्तहरं केश्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम्॥ (अ. सं. सू. ६)

५. तैलं भूमिगिरोत्थं तु गुरूष्णं कफवातहृत्।
स्निग्धं च कटुकं पाके विदाहि पित्तवर्धनम्॥ (स्व.)

६. कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्शनाय च।' (अ. सं. सू. ६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर्म अविरुद्ध है क्योंकि द्रव्यों की शक्ति विशिष्ट होती है[1]। अभिप्राय यह है कि सूक्ष्म एवं व्यवायी होने के कारण तैल स्रोतों में सद्यः प्रविष्ट हो जाता है और अपने उष्ण–तीक्ष्ण गुणों से मेद का शोषण कर धातुवह स्रोतों को शोधित कर देता है। इससे एक ओर स्थौल्य का विनाश हो जाता है और दूसरी ओर धातुओं का समुचित निर्माण होने के कारण शरीर पुष्ट एवं दृढ़ होता है। अतिशय मेद दूर होकर शरीर संहत एवं दृढ हो जाता है। इस प्रकार तैल का बृंहण एवं लेखन कर्म परस्पर अविरुद्ध है[2]। परवर्ती आचार्यों ने भी इसी प्रकार व्याख्या की है[3]। कुछ लोग कहते हैं कि तैल अभ्यंग से बृंहण और आहार से लेखन है[4]। इन सब तथ्यों पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है तैल प्रकृत्या लेखन है अतः यदि स्रोतोरोध होने से कृशता हो तो उसे दूर कर शरीर को पुष्ट बनाता है और यदि मेदोवृद्धि के कारण स्रोतोरोध से स्थौल्य एवं दौर्बल्य है तो वहाँ भी कर्शन कर शरीर को संहत बनाता है। किन्तु यदि स्रोतोरोध नहीं है तब इसका लेखन एवं कर्शन प्रभाव ही होना फलतः कृश के लिए उपयोगी नहीं है। आधुनिक दृष्टि से भी तैल में अतृप्त वसाम्ल होने के कारण वे मेदोरोग तथा तज्जन्य मधुमेह, हृद्रोग आदि रोगों में पथ्य होते हैं।

घृत इसके विपरीत स्नेहन होने के कारण कृश व्यक्तियों के लिए बृंहण है तथा संतृप्त वसाम्ल अधिक होने के कारण मेदस्वी व्यक्तियों के लिए निषिद्ध है।

तैल परवर्ती निघण्टुओं में ग्राही एवं सारक दोनों कहा गया है। इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि पतले पुरीष को तो यह बांधता है जबकि स्खलित पुरीष को बाहर निकाल देता है[5]। इसी प्रकार का प्रश्न शुण्ठी के प्रसंग में

---

१. बृंहणं धातुपुष्टिकरत्वेन शरीरदार्ढ्यावहत्वात्, न च लेखनत्वमप्यस्य विरुद्धं, मेदोहरत्वात्। न खलु तैलं मेदोघ्नमपि र यं न करोति, प्रतिनियतशक्तित्वाद् द्रव्याणाम्। (डल्हण, सु. सू. ४५)

२. ननु कथमेकस्माद् वस्तुनो विरुद्धकार्यद्वयं कृशत्वबृंहणस्वरूपं स्यादिति, ब्रूमः। कृशानां तावत् स्रोतांसि सङ्कोचमायान्ति सङ्कुचितस्रोतसां च नराणां तैलमन्तरेणान्यानि द्रव्याणि बृंहणगुणयुक्तान्यपि न तथा प्रवेष्टुं समर्थानि भवन्ति। तैलं पुनः सङ्कुचितानि स्रोतांसि तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्झटित्येव प्रविश्य शोधयति, स्रोतः शुद्ध्या च शरीरपुष्टिः तथा च वक्ष्यति—
'स्रोतःसु तत्र शुद्धेषु रसो धातूनुपैति यः। तेन तुष्टिर्बलं वर्णः परं पुष्टिश्च जायते ॥ इति। तस्मात् कृशानां बृंहणायालमित्युपपन्नम्। तथा स्थूलानां सूक्ष्मस्रोतोगामित्वात् सर्वस्रोतःसु तैलं प्रविश्य तीक्ष्णोष्णादिगुणयोगान् मेदः क्षपयति, तत्क्षपणाच्च कर्शनं सम्पद्यते इति स्थूलानां कर्शनाय चेत्युपपन्नम्। (अरुणदत्त. अ. हृ. सू. ५।५८)

३. देखें कै. नि. तथा भा. प्र.।

४. त्वग्दोषजिच्च चक्षुष्यमभ्यङ्गे भोजनेऽन्यथा। (कै. नि.)

५. श्लक्ष्णं पुरीषं बध्नन्ति स्खलितं तु प्रवर्त्तयेत्। (कै. नि.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भावप्रकाश में उठाया गया है कि शुण्ठी 'विबन्धनुत्' और ग्राही दोनों एक साथ कैसे हो सकती है ? वहाँ यह समाधान दिया गया कि शुण्ठी की शक्ति केवल विबन्धभेदन में है, मल के पातन में नहीं[1]। तैल इसके विपरीत, प्रवृत्त मल को बाहर निकाल देता है और अन्तःस्थ द्रुत पुरीष को बांधता है।

घृत और वनस्पति

वनस्पति का निर्माण तैलों से होता है अतः वे घृताभास तैल ही हैं। गुणकर्म भी उनमें तैल के ही है। वनस्पति घृत के विपरीत, कटुविपाक, विदाही, विष्टम्भी एवं वातकारक है[2]।

१. शक्तिर्विबन्ध भेदे स्याद् यतो न मलपातने। (भा. प्र.)
२. घृताभासं तु यत्तैलं वनस्पतिसमाह्वयम्।
मधुरं कटुकं पाके दाहविष्टम्भवातकृत्॥ (स्व.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दशम अध्याय

अनुपानवर्ग

जल

अनुपान में जल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण द्रव्य है। इससे रस का संवहन होकर शरीरधातुओं को पोषण प्राप्त होता है तथा मलों का निःसरण भी इसी माध्यम से होता है। जल की इसी महत्त्वपूर्ण भूमिका को देख कर इसे 'जीवन' कहा गया है[1]। उदक, अम्बु, वारि, नीर आदि इसके अन्य पर्याय हैं।

जल के भेद

बिभिन्न दृष्टियों से जल का वर्गीकरण किया गया है :—

(क) **देशभेद से**—देशभेद से जल तीन प्रकार का है :—जांगल, आनूप और साधारण।

जांगल देश का जल रूक्ष, लघु, कफपित्तहर, दीपन तथा पथ्य है। आनूप-देश का जल अभिष्यन्दी, स्निग्ध, गुरु, कफकारक, अग्निमांद्यजनक तथा अनेक रोगों का कारणभूत होता है। साधारण जल लघु, शीतल, मधुर, दीपन तथा त्रिदोषहर है[2]।

(क) **योनिभेद से**—जल के दो भेद किये गये हैं—दिव्य और भौम। आकाश से प्राप्त होने वाला जल दिव्य तथा पृथ्वी से मिलने वाला जल भौम है। दिव्य जल में शीत, शुचि, शिव, मधुर, विमल और लघु ये छः गुण स्वाभावतः होते हैं[3]। दिव्य जल पुनः चार प्रकार का है—धार, कार, तौषार और हैम। वर्षा के जल को धार या ऐन्द्र कहते हैं। धार जल लघु, अव्यक्तरस, त्रिदोषघ्न, तर्पण, बल्य, रसायन, पाचन तथा परम पथ्य है[4]। कार या कारक आकाश से

---

१. जीवनं जीविनां जीवो जगत् सर्वं तु तन्मयम्।
जातोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद् वारि वार्यते॥ (भा. प्र.)

२. जांगलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत्।
वह्निकृत् कफहृत् पथ्यं विकारान् हरते बहून्॥
आनूपं वार्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु।
वह्निकृत् कफकृत् हृद्यं विकारान् कुरुते बहून्॥
साधारणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु। तर्पणं रोचनं तृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत्॥
(भा. प्र.)

३. शीतं शुचि शिवं मिष्टं विमलं लघु षड्गुणम्। प्रकृत्या दिव्यमुदकम्। (च. सू. २७)

४. धारं नीरं त्रिदोषघ्नमनिर्देश्यरसं लघु। सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम्॥
पाचनं मतिकृन् मूर्च्छातन्द्रादाहश्रमक्लमान्।
तृष्णां हरति तत् पथ्यं विशेषात् प्रावृषि स्मृतम्॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गिरने वाले ओले से उत्पन्न जल कहलाता है। करका से उत्पन्न जल रूक्ष, गुरु, शीतल, पित्तशामक, कफवातकारक होता है[१]। ओस या कुहासे से बने जल को तौषार तुषार से उत्पन्न जल रूक्ष, शीतल, वातवर्धक, कफशामक होता है[२] तथा बर्फ से प्राप्त जल जल को हैम कहते हैं। बर्फ का पानी गुरु, शीतल, पित्तशामक, वातवर्धक होता है[३]।

धार जल भी स्वरूपभेद से दो प्रकार का होता है—गांग और सामुद्र। गांग जल प्रायः आश्विन मास में बरसता है। इसकी परीक्षा यह है कि चाँदी के बर्त्तन में भात का पिण्ड बना कर बारिश में बाहर रख दे। यदि मुहूर्त्त भर रहने पर भी यदि उसके वर्ण या क्लेद में कोई परिवर्त्तन न हो तो उसे गांग समझे अन्यथा वर्ण-विकार और पिण्ड का प्रक्लेद होने पर सामुद्र समझे। गांग जल का ही ग्रहण करे, सामुद्र का नहीं। किन्तु आश्विन मास में सामुद्र जल भी गांग जल के समान ही हो जाता है। इसे कपड़े से छान कर पवित्र पात्रों में एकत्रित कर ले और बराबर प्रयोग में लावें[४]।

दिव्य जल के अभाव में भौम जल का ग्रहण करे। भौम जल योनिभेद से अनेक प्रकार का होता है। सुश्रुत ने सात प्रकार का भौम जल कहा है—कौप, नादेय, सारस, ताडाग, प्रास्रवण, औद्भिद और चौण्ड्य। वाग्भट ने 'वाण्ड्य' जोड़ कर आठ प्रकार बनाये। बाद में वैकिर, पाल्वल, कैदार और सामुद्र और जोड़े गये। फिर भी इसकी सीमा नियत करना कठिन है।

१. **कौप**—कुएँ से प्राप्त जल कौप है। गाँवों में प्रायः इसी जल का प्रयोग होता है। कौप जल भी क्षार (खारा), मधुर (मीठा) भेद से दो प्रकार का होता है। मधुर जल उत्तम होता है। मधुर जल लघु, त्रिदोषशामक होता है, क्षार जल दीपन, पित्तवर्धक, कफवातशामक होता है[५]।

२. **नादेय**—शीघ्रगामी स्वच्छ जलवाली नदियों का जल लघु, दीपन तथा मन्दगामी, शैवाल आदि से ढँकी, कलुषित नदियों का जल गुरु, अभिष्यन्दी होता है[६]।

---

१. करकाजं जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम्।
दारुणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत् कफवातकृत्॥ (भा. प्र.)
२. तुषाराम्बु हिमं रूक्षं स्याद् वातलमपित्तलम्।
कफोरुस्तम्भकण्ठाग्निमेहगण्डादिरोगनुत्॥ (भा. प्र.)
३. हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरु वातविवर्धनम्। (भा. प्र.)
४. सु. सू. ४५
५. कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु।
तत् क्षारं कफवातघ्नं दीपनं पित्तकृत् परम्॥ (भा. प्र.)
६. नद्यः शीघ्रवहाः लघ्व्यः सर्वा याश्चामलोदकाः।
गुर्व्यः शैवलसंछन्नाः मन्दगाः कलुषाश्च याः॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

३. **सारस**—सर (झील) का जल कषाय-मधुर, लघु, तृष्णाशामक, बल्य होता है[१]।

४. **ताडाग**—तडाग (तालाब) का जल कषाय-मधुर, कटुविपाक, वात-वर्धक, बद्धविण्मूत्र होता है[२]।

५. **प्रास्रवण**—प्रस्रवण (झरने) का जल लघु, दीपन, कफघ्न तथा पथ्य है[३]।

६. **औद्भिद**—पृथ्वी के भीतर से (टयूब वेल) आदि से जो जल बाहर निकल कर आता है वह औद्भिद है[४]। यह जल मधुर, शीतल अविदाही तथा पित्तशामक होता है।

७. **चौण्ड्य**—चुण्डी (उथले कुएं या पहाड़ों पर चट्टानों के बीच एकत्रित स्वल्प जल) का जल चौण्डय कहलाता है। यह रूक्ष, मधुर, दीपन तथा कफ-वर्धक है[५]।

८. **वाप्य**—वापी (बावली) का जल क्षारीय, कटु, पित्तवर्धक तथा कफवात-शामक है[६]।

९. **वैकिर**—सूखी नदियों में बालू को हटा कर जो जल निकाला जाता है वह वैकिर है। यह लघु, क्षारीय, दीपन और कफवर्धक है[७]।

१०. **पाल्वल**—पल्वल (गढ़ों में एकत्र) जल गुरु, अभिष्यन्दी और त्रिदोष-कोपक है[८]।

११. **कैदार**—खेत की क्यारियों में इकट्ठा जल पाल्वल जल के समान ही होता है।

१२. **सामुद्र**—समुद्र का जल लवण, दुर्गन्धि तथा सर्वदोषकोपक है[९]।

१३. **नारिकेलोदक**—नारियल का पानी समुद्रतटवर्त्ती प्रदेशों में बहुशः प्रचलित है। यह मधर, शीतल, गुरु, स्निग्ध, पित्तशामक, मूत्रल तथा हृद्य है। ज्वर, अम्लपित्त आदि में प्रशस्त है[१०]।

---

१. सारसं तुवरं बल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघु। (द्र. सं.)
२. ताडागं वातलं स्वादु कषायं कटुपाकि च। (द्र. सं.)
३. नैर्झरं लघु पथ्यं च दीपनं कफनाशनम्। (द्र. सं.)
४. औद्भिदं पित्तशमनं मधुरमविदाहि च। (द्र. सं.)
५, चौण्ड्यमग्निकरं रूक्षं मधुरं कफकारि च। (द्र. सं.)
६. वाप्यं सक्षारकटुकं पित्तलं कफवातनुत्। (द्र. सं.)
७. वैकिरं लघु सक्षारं श्लेष्मलं वह्निदीपनम्। (द्र. सं.)
८. पाल्वलं वार्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोषलम्। (भा. प्र.)
९. सामुद्रं लवणं विस्रं सर्वदोषप्रकोपकम्। (द्र. सं.)
१०. नारिकेलोदकं वृष्यं स्वादु स्निग्धं हिमं गुरु।
हृद्यं पित्तपिपासाघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम्॥ (द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

१४. **तालाम्बु**—ताड़ का नीरा गुरु, पित्तशामक, वृष्य तथा स्तन्यजनन है[1]।

(ग) **ऋतुभेद से**—वर्षा का जल ऋतुभेद से चरकसंहिता में वर्णित है।

वर्षा—वर्षा ऋतु का नया जल मधुर, गुरु, अभिष्यन्दी होता है।

शरद्—लघु, अनभिष्यन्दी तथा निर्दोष होता है। यह परम प्रशस्त है। शरद् में अगस्त्योदय से जल निर्विष हो जाता है।

हेमन्त—हेमन्त का जल गुरु, स्निग्ध, बल्य, वृष्य होता है।

शिशिर—शिशिर का जल हेमन्त की अपेक्षा किञ्चित् लघु तथा कफवातशामक होता है।

वसन्त—वसन्त का जल कषाय-मधुर, रूक्ष होता है।

ग्रीष्म—ग्रीष्म ऋतु का जल अनभिष्यन्दी होता है[2]।

अंशूदक (हंसोदक)—शरद् ऋतु का निर्मल पवित्र जल जो दिन में सूर्यकिरणों से गरम हो और रात में चाँदनी से ठंढा हो तथा अगस्त्योदय से निर्विष हो गया है अंशूदक या हंसोदक कहलाता है। यह अमृततुल्य है और स्नान-पान आदि में इसीका प्रयोग करना चाहिए[3]। यह आन्तरिक्ष जल के समान गुणवाला होता है[4]।

(घ) **तापभेद से**—ताजा जल शीत जल तथा आग पर गरम किया उष्ण जल कहलाता है। शीत के ईषत् शीत, शीत तथा अतिशीत ये तीन भेद होते हैं। ताजा जल ईषत् शीत, सुराही-घड़े आदि में रक्खा ठंढा जल शीत तथा फ्रीज में ठंढा किया जल अतिशीत है। इसी प्रकार उष्ण की तीन अवस्थायें (ईषदुष्ण, उष्ण, अत्युष्ण) होती हैं। जल अग्नि पर कितना पकाया गया इस आधार पर भी उष्णोदक तीन प्रकार का होता है :—अर्धावशिष्ट, पादावशिष्ट तथा अष्टमांशावशिष्ट जो क्रमशः वात, पित्त और कफ के विकारों में उपयोगी होता है[5]।

---

१. तालाम्बु पित्तजित् शुक्रस्तन्यवृद्धिकरं गुरु। (द्र. सं.)

२. च. सू. २७।

३. दिवा सूर्यांशुसन्तप्तं निशि चन्द्रांशुशीतलम्।
कालेन पक्वं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम्॥
हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि।
स्नानपानावगाहेषु शस्यते तद् यथामृतम्॥ (च. सू. ६)

४. दिवार्ककिरणैर्जुष्टं जुष्टमिन्दुकरैर्निशि।
अरूक्षमनभिष्यन्दि तत्तुल्यं गगनाम्बुना॥ (द्र. सं.)

५. अष्टमांशावशेषेण चतुर्थेनार्धकेन वा।
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत्॥ (प. प्र.)
सुश्रुत पादावशिष्ट को गुणवान् मानते हैं। वाग्भट क्षीणपाद, क्षीणत्रिभाग तथा क्षीणार्ध तीन प्रकार मानते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

धनियाँ या लवंग या कमलबीज या षडंग से सिद्ध जल विशिष्ट विकारों में दिया जाता है।

शीत जल का प्रयोग—पित्तज विकार, मूर्च्छा, दाह, विष, रक्तविकार, मदात्यय, श्रम, प्रतमक, वमन, ऊर्ध्वग रक्तपित्त में शीत जल प्रशस्त है[1]।

शीत जल का निषेध—पार्श्वशूल, प्रतिश्याय, वातरोग, गलग्रह, आध्मान, कोष्ठबद्धता, सद्य: शुद्ध, नवज्वर, हिक्का, स्नेहपान के बाद शीत जल नहीं पीना चाहिए[2]।

उष्णोदक का प्रयोग—कास, श्वास, ज्वर, कफदोष, वातविकार, आमदोष, अग्निमांद्य तथा मूत्राघात में उष्णोदक पथ्य है[3]। आमाजीर्ण तथा विष्टब्धाजीर्ण में बिना प्यास के भी थोड़ा-थोड़ा गरम जल पीये। इससे कफवात का शमन होकर आहार शीघ्र पच जाता है[4]।

उष्णोदक का निषेध—जिन रोगों में शीत जल के प्रयोग का विधान किया गया है उन रोगों में उष्णोदक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पैत्तिक विकारों में उष्णोदक वर्ज्य है।

गरम किया जल स्वयं ठंढा होने पर (शृतशीत) त्रिदोषघ्न होता है। यदि पंखे आदि से ठंढा किया जाय तो दुर्जर और विष्टम्भी हो जाता है। गरम जल बासी होने पर अम्लपाक तथा दोषकारक होता है। अतः दिन का गरम किया जल रात में और रात का गरम किया दिन में प्रयोग नहीं करना चाहिए[4]।

---

१. मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये।
भ्रमक्लमपरीतेषु तमके वमथौ तथा॥
ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते तु शीतमम्भः प्रशस्यते। (द्र. सं.)

२. पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे।
आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धे नवज्वरे॥
हिक्कायां स्नेहपीते च शीताम्बु परिवर्जयेत्। (द्र. सं.)

३. उष्णोदकं सदा पथ्यं कासश्वासज्वरापहम्।
कफवातामदोषघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम्॥ (द्र. सं.)
आमविष्टम्भयोः कोष्णं निष्पिपासोऽप्यपः पिबेत्।
यावत्यः क्लेदयन्त्यन्नमतिक्लेदोऽग्निनाशनः॥
विबद्धः कफवाताभ्यां मुक्तामाशयबन्धनः।
पच्यते क्षिप्रमाहारः कोष्णतोयद्रवीकृतः॥ (अ. सं. सू. ६)

४. शृतशीतं त्रिदोषघ्नं यदशृतं\ऽपशीतलम्।
शीतीकृतं तु विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम्॥
शृतं तोयं दिवा रात्रौ गुरु रात्रिशृतं दिवा। (द्र. सं.)
"तोयं वह्निगुणभ्रष्टं पाकेऽम्लं सर्वदोषकृत्।
भवेत् पर्युषितं तच्च। (अ. सं. सू. ६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पीया हुआ जल सामान्यतः दो प्रहर (छः घण्टों) में पचता है। गरम कर ठंडा किया हुआ जल एक प्रहर (३ घण्टों) में तथा गरम गुनगुना जल आधा प्रहर (१½ घण्टे) में पच जाता है[1]।

जल के गुण—उत्तम जल ईषत् कषाय-मधुर, सुसूक्ष्म, विशद, लघु, अरूक्ष तथा अनभिष्यन्दी होता है[2]।

निषिद्ध जल—पिच्छिल कृमियुक्त, पत्ते, सेवार, कीचड़ आदि से युक्त, विकृतवर्ण, विकृतरस, गाढ़ा तथा दुर्गन्धित जल त्याज्य है[3]। इसके अतिरिक्त; जहाँ धूप, हवा न लगती हो, अत्यधिक गरम, अतिशीत, ऋतुविपरीत वर्षाजल तथा बरसात का भी पहला वर्षाजल निषिद्ध है। इस प्रकार के जल से स्नान-पान करने पर तृष्णा, आध्मान, उदररोग, ज्वर, कास, कण्डू, गलगण्ड आदि रोग होते हैं[4]।

जलदोष—सुश्रुत ने छः जलदोष बताये हैं :—स्पर्शदोष, रूपदोष, रसदोष, गन्धदोष, वीर्यदोष और विपाकदोष।

१. **स्पर्शदोष**—खरता, पिच्छिलता, उष्णता तथा दन्तग्राहिता (अतिशैत्य के कारण) स्पर्शदोष कहे जाते है।

२. **रूपदोष**—कीचड़, बालू, सेवार आदि से संपृक्त तथा अन्य विविध वर्ण रूपदोष हैं।

३. **रसदोष**—स्वभावतः शुद्ध जल अव्यक्तरस होता है। इसमें किसी भी रस की अभिव्यक्ति होना (व्यक्तरसता) रसदोष है।

---

१. पीतं जलं जीर्यति यामयुग्माद् यामैकमात्राच्छृतशीतलञ्च।
तेदर्धमात्रेण शृतं कदुष्णं पयःप्रपाके त्रय एव कालाः॥ (भा. प्र.)

२. ईषत् कषायमधुरं सुसूक्ष्मं विशदं लघु।
अरूक्षमनभिष्यन्दि सर्वं पानीयमुत्तमम्॥ (च. सू. २७)
निर्गन्धमव्यक्तरसं तृष्णाघ्नं शुचि शीतलम्।
अच्छं लघु च हृद्यं च तोयं गुणवदुच्यते॥ (सु. सू. ४५)

३. पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्णशैवालकर्दमैः।
विवर्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं न हितं जलम्॥ (च. सू. २७)

४. सूर्येन्दुपवनादृष्टं जुष्टं च क्षुद्रजन्तुभिः।
अभिवृष्टं विवर्णं च कलुषं स्थूलफेनिलम्॥
विरसं गन्धवत्तप्तं दन्तग्राह्यतिशैत्यतः।
अनार्तवं च यद् दिव्यमार्तवं प्रथमं च यत्॥
लूतादितन्तुविण्मूत्रविषसंश्लेषदूषितम्।
तत् कुर्यात् स्नानपानाभ्यां तृष्णाध्मानोदरज्वरान्।
कासाग्निसादाभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकानतः॥
तद् वर्जयेत्। (अ. सं. सू. ६)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE.

४. **गन्धदोष**—अनिष्टगन्ध होना गन्धदोष है।

५. **वीर्यदोष**—जिसका उपयोग करने पर तृष्णा, गौरव, शूल तथा कफप्रसेक उत्पन्न हों वह वीर्यदोष है।

६. **विपाकदोष**—इस दोष के कारण जल देर से या विष्टम्भ कर पचता है। ये दोष आन्तरिक्ष जल में नहीं होते[1]।

जलशोधन—दूषित जल के शोधन के निम्नाङ्कित उपाय हैं :—

१. **परिस्रावण (छानना)**—कपड़े से छानने पर जल से कीड़े, पत्ते, आदि हट जाते हैं।

२. **प्रसादन**—निर्मली, गोमेद, शैवालमूल, कमलमूल आदि देने से जल की मलिनता नीचे बैठ जाती है और ऊपर जल स्वच्छ हो जाता है।

३. **तापन**—जल को आग पर उबाल देना, धूप में गरम करना या लौहपिण्ड, ईंट या बालू गरम कर उसमें बुझाना (निर्वापण) इनसे जल शुद्ध हो जाता है।

४. **अधिवासन**—नागकेशर, चम्पा, कमल, पाटला, करवीर आदि के पुष्पों तथा कर्पूर से सुवासित करने से जल की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है[2]।

जलसेवन-विधि

१. अधिक जल पीने से तथा बिलकुल जल न लेने से आहार का पाचन नहीं होता। अधिक जल लेने से पाचक रस पतले पड़ जाते हैं अतः उनकी क्रिया मन्द पड़ जाती है। बिलकुल जल न लेने से आहार का क्लेदन तथा पाचक रसों का स्राव समुचित न होने के कारण अजीर्ण हो जाता है। अतः बीच-बीच में आवश्यकतानुसार थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए। एक बार बहुत अधिक पानी पीना ठीक नहीं है[3]।

२. वर्षा ऋतु में आन्तरीक्ष, कौप तथा औद्भिद् जलों का प्रयोग करे। शरद् ऋतु में अगस्त्य के उदय होने पर सभी जल निर्मल होने के कारण ग्राह्य हैं। हेमन्त में सर तथा तडाग का जल प्रशस्त है। शिशिर में भी यही ग्राह्य है। वसन्त में

---

१. (सु. सू. ४५)

२. अ. सं. सू. ६, सु. सू. ४५.
सुश्रुत ने जल रखने (निक्षेपण) के पाँच स्थानों का उल्लेख किया है—फलक, अष्टक (तिपाई), मुञ्जवलय, उदकमञ्चिका, शिक्य (शिकहर)। इसी प्रकार जल को ठण्डा करने के सात उपाय बताये हैं—प्रवातस्थापन, उदकप्रक्षेपण, यष्टिकाभ्रामण, व्यजन, वस्त्रोद्धरण, बालुकाप्रक्षेपण, शिक्यलंबन।

३. अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः।
अतो नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ (भा. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कौप और चौण्ड्य तथा ग्रीष्म में नैर्झर तथा औद्भिद् जल प्रशस्त हैं। प्रावृट् में कूप का जल लेना चाहिए। किन्तु सभी प्रकार का जल संस्कृत (शोधित) कर लेना श्रेयस्कर है।[1]

३. अरुचि, प्रतिश्याय, लालाप्रसेक, शोथ, क्षय, मन्दाग्नि, उदररोग, कुष्ठ, ज्वर, नेत्ररोग, व्रण और मधुमेह में जल कम लेना चाहिए।[2]

वाग्भट का कथन है कि जल अग्नि का विरोधी होने के कारण मन्दाग्नि पुरुष इसका वर्जन करे। इसके अतिरिक्त अभिष्यन्द, प्लीहा, विद्रधि, गुल्म, पाण्डु, उदर, अतिसार, अर्श, ग्रहणी, शोष एवं शोफ के रोगी जल न ले। यदि ऐसा सम्भव न हो अल्प मात्रा में या औषध-संस्कृत कर लें।

शरद् और ग्रीष्म को छोड़ कर स्वस्थ पुरुष भी जल कम ही पीवे।

जल मधुरविपाक तथा शीतवीर्य होने के कारण उष्ण जल भी अधिक लेने पर पित्त-कफ को बढ़ाता है, विशेषतः ज्वरग्रस्त रोगी में। इसके अतिरिक्त, आमदोष, तृष्णा, तन्द्रा, निद्रा, आध्मान, गौरव, कास, अग्निमांद्य, हृल्लास, लालाप्रसेक, पीनस, श्वास आदि उपद्रव करता है[3]।

४. भोजन के पहले लिया गया जल अग्निमांद्य, कार्श्य; भोजन के अन्त में लिया गया जल स्थौल्य तथा कफज विकार और भोजन के मध्य में लिया गया जल मध्यशरीरता, धातुसात्म्य तथा सुखपूर्वक पाचन करता है।[4]

मद्य

मद्य द्रव्यों के सन्धान से बनता है। मद (विवेकराहित्य) उत्पन्न करने के कारण यह मद्य कहा जाता है।[5] मद की तीन अवस्थायें आचार्यों ने बतलाई हैं जिनमें तृतीय अवस्था में पूर्ण रूप से विवेक नष्ट हो जाता है।

---

१. आन्तरीक्षं तु वर्षासु कौपमौद्भिदमेव च।
अगस्त्योदयनैर्मल्यात् सर्वं शरदि शस्यते॥
सारस्ताडागसंभूतं हेमन्ते जलमिष्यते।
कौपचौण्ड्ये वसन्ते तु ग्रीष्मे प्रास्रवणौद्भिदे॥
कौपं प्रावृषि, सर्वं वा संस्कृतं वारि चेष्यते॥ (द्र. सं.)

२. अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये।
मन्देऽग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा॥
व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत्। (द्र. सं.)

३. अ. सं. सू. ६

४. भक्तस्यादौ जलं पीतमग्निसादं कृशाङ्गताम्।
अन्ते करोति स्थूलत्वमूर्ध्वं चामाशयात् कफम्॥
मध्ये मध्याङ्गतां साम्यं धातूनां जरणं सुखम्। (अ. सं. सू. ६)

५. पेयं यत् मादकं लोकैस्तत् मद्यमभिधीयते। (आ. प्र.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मद्य का प्रभाव मनुष्य की प्रकृति पर भी निर्भर है। सात्त्विक प्रकृति का पुरुष मद से शीघ्र और अतिशय आक्रान्त नहीं होता। राजस और तामस प्रकृति के पुरुष उसी क्रम से मद से प्रभावित होते हैं।

मद्य के गुण

चरक ने मद्य को बहुद्रव्य, बहुगुण तथा बहुकर्मप्रद कहा है। यदि विधिपूर्वक, मात्रा में, समय पर, हितकर अन्न के साथ, बलानुसार तथा प्रसन्न होकर मद्य का सेवन किया जाय तो वह अमृत के समान गुणकारी होता है[1]।

मद्य शक्तिदायक, बल्य, दीपन, बृंहण, श्रमहर, निद्राजनन, सौमनस्यजनन, वाग्विबोधन, सारक, चिन्तानाशक, रतिवर्धक, वृष्य, जीवलोक के विश्रामस्थल जैसा है[2]।

सभी मद्य अम्ल, कटुविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, कफवातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, विदाही, भेदन, मूत्रल, सारक और इन्द्रियबोधन है[3]।

मद्य एक उत्तम स्रोतः शोधक है। यह सूक्ष्मता, तीक्ष्णता एवं उष्णता के कारण प्रमाथी है तथा स्रोतों से मलों को हटाकर उसे साफ कर देता है जिससे रससंवहन समुचित होने पर धातुनिर्माण ठीक से होने लगता है और इस प्रकार बृंहण प्रभाव होता है। इसी गुण के कारण यह राजयक्ष्मा (शोष) में विहित है[4]।

नवीन मद्य—नया मद्य गुरु, अभिष्यन्दी, अनिष्टगन्ध, विकृतरस, अहृद्य, विदाही तथा वातादि दोषों का प्रकोपक होता है।

पुराण मद्य—पुराना मद्य सुगन्धित, रुचिकर, लघु, कफवातशामक, स्रोतःशोधक, दीपन, हृद्य तथा कृमिघ्न होता है[5]।

---

१. बहुद्रव्यं बहुगुणं बहुकर्मप्रदात्मकम्।
विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम्।
प्रहृष्टो यः पिबेन् मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा। (च. चि. २४)

२. हर्षमूर्जं मदं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं बलम्।
विश्रामो जीवलोकस्य मद्यं युक्त्या निषेवितम्॥ (च. चि. २४)

३. सर्वं पित्तकरं मद्यमम्लं दीपनपाचनम्।
भेदनं कफवातघ्नं हृद्यं वस्तिविशोधनम्॥
पाके लघु विदाह्युष्णं तीक्ष्णमिन्द्रियबोधनम्।
विकासि सृष्टविण्मूत्रं निद्राभावप्रसक्तिनुत्॥ (ह्. सं.)

४. मद्यं तैक्ष्ण्यौष्ण्यवैशद्यसूक्ष्मत्वात् स्रोतसां मुखम्।
प्रमथ्य विवृणोत्याशु तन्मोक्षात् सप्त धातवः॥
पुष्यन्ति धातुपोषाच्च शीघ्रं शोषः प्रशाम्यति॥ (च. चि. ८)

५. नवं मद्यमभिष्यन्दि गुरु वातादिकोपनम्।
अनिष्टगन्धि विरसमहृद्यञ्च विदाहि च॥
सुगन्धि दीपनं हृद्यं रोचिष्णु कृमिनाशनम्।
स्फुटस्रोतस्करं जीर्णं लघु वातकफापहम्॥ (सु. सू. ४५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मद्य के दोष—अविधिपूर्वक तथा अतिमात्रा में मद्यपान करने से मूर्च्छा आदि मानसिक विकार तथा यकृद्दाल्युदर आदि शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं। इससे तीव्र एवं जीर्ण मदात्यय उत्पन्न होता है जिससे मनुष्य का जीवन निरर्थक हो जाता है[1]।

मद्य में सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके सभी गुण ओज के विपरीत हैं अतः यह ओज एवं ओज के आश्रय हृदय को विकृत एवं क्रमशः नष्ट कर देता है। विष भी ओज का नाशक है। इस प्रकार ओजोहरत्व की दृष्टि से मद्य विषतुल्य है[2]।

इसी कारण चरक ने विष के बाद ही मदात्यय का वर्णन किया है।

मानसिक शारीरिक दोषों तथा तज्जन्य सामाजिक असन्तुलन के कारण मद्यपान समाज में गर्हित माना जाता है।

मद्यपान-विधि

अन्न, पान, वय, व्याधि, बल, काल, दोष तथा सत्त्व इन आठ भावों का विचार कर मद्यपान करे[3]।

मद्यपान की विधि विस्तार से चरकसंहिता (चि० २४।११-२५) में दी हुई है। जिज्ञासु जन उसे वहीं देखें। इसमें विशेष बात यह है कि अवदंश (अन्न, चिखना) के साथ ही मद्य लेना चाहिए, खाली पेट नहीं। मद्य में यथेच्छ जल भी मिलाना चाहिए जिससे उसकी तीक्ष्णता कम हो जाय।

---

१. मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रितः।
सोन्मादमदमूर्च्छायाः सापस्मारापतानकाः॥
यत्रैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधुवत्।
इत्येवं मद्यदोषज्ञा मद्यं गर्हन्ति तत्त्वतः॥
सत्यमेते महादोषा मद्यस्योक्ता न संशयः।
अहितस्यातिमात्रस्य पीतस्य विधिवर्जितम्॥

२. मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान्।
दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम्॥
अतिपीतेन मद्येन विहतेनौजसा च तत्।
हृदयं याति विकृतिं तत्रस्था ये च धातवः॥ (च. चि. २४)
विषस्य ये गुणाः दृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः।
त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः॥
हन्त्याशु हि विषं किञ्चित् किञ्चिद् रोगाय कल्पते।
यथा विषं तथैवान्त्यो ज्ञेयो मद्यकृतो मदः॥ (च. चि. २४)

३. अन्नपानवयोव्याधिबलकालत्रिकाणि षट्।
त्रीन् दोषांस्त्रिविधं सत्त्वं ज्ञात्वा मद्यं पिबेत् सदा॥ (च. चि. २४)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दोषप्रकृति के अनुसार वातिक प्रकृति पुरुषों के लिए गौडिक और पैष्टिक तथा पित्त और कफ प्रकृति के लिए फल, मधु और शर्करा से बना मद्य हितकर होता है[1]।

मद्याकर

मद्य जिन द्रव्यों से बनाया जाता है वे मद्याकर (मद्ययोनि) कहे जाते हैं। उत्तम मद्याकर द्रव्य पाँच हैं—द्राक्षा, इक्षु, मधु, शालि, व्रीहि। इसके अतिरिक्त अन्य द्रव्यों से भी मद्य बनाया जाता है किन्तु वह उत्तम नहीं होता[2]।

मद्य के भेद

घटक द्रव्य तथा निर्माणप्रक्रिया के भेद से मद्य अनेक प्रकार का होता है।

१. **अरिष्ट**—द्रव्यों का क्वाथ कर सन्धान करने के बाद यह तैयार होता है[3]। अधिकतर इनका औषधीय प्रयोग होता है।

२. **आसव**—बिना क्वाथ किये द्राक्षा आदि का सन्धान करने पर आसव बनते हैं[4]। आसव एक प्रचलित मद्य है। चरक (सू. २५) ने वनस्पतियों के अंगभेद से आठ आसवयोनियों (नवीं शर्करा) का वर्णन किया है जिनसे कुल ८४ आसव बनते हैं जो उत्तम कोटि के हैं[5]।

३. **सुरा**—चावल से जो मद्य बनता है, वह सुरा कहलाती है[6]।

४. **वारुणी**—ताल, खर्जूर के रस से जो ताड़ी तैयार होती है वह वारुणी है[7]।

अन्य सन्धानभेद

१. **धान्याम्ल (काञ्जिक)**—धान्य आदि जल में रख देने से ३–४ दिनों में काँजी तैयार हो जाती है। काँजी तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तवर्धक, कफवातशामक, दीपन, भेदन है। मुखदुर्गन्ध या मुखशोष में इसका गण्डूषधारण विहित है[8]।

---

१. वातिकेभ्यो हितं मद्यं प्रायो गौडिकपैष्टिकम्।
कफपित्ताधिकेभ्यस्तु फालमाधवशार्करम् ॥ (च. चि. २४)

२. द्राक्षेक्षुर्माक्षिकं शालिरुत्तमा व्रीहिपञ्चमाः।
मद्याकरा यदेभ्योऽन्यत्तत्स्यमद्यप्रतिरूपकम् ॥ (अ. सं. सू. ६)

३. पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन् मद्यं तत् स्यादरिष्टकम्। (भा. प्र.)

४. यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। (भा. प्र.)

५. मनःशरीराग्निबलप्रदानामस्वप्नशोकारुचिनाशनानाम्।
संहर्षणानां प्रवरासवानामशीतिरुक्ता चतुरुत्तरैषा ॥ (च. सू. २५)

६. शालिषष्टिकपिष्टादिकृतं मद्यं सुरा स्मृता। (भा. प्र. (

७. संहितैस्तालखर्जूररसैर्या सा तु वारुणी। (भा. प्र.)

८. सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते बुधैः। (भा. प्र.)
'काञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं पित्तकृत् स्पर्शशीतलम्।
श्रमक्लमहरं रुच्यं दीपनं बस्तिशूलनुत् ॥
शस्तमास्थापने हृद्यं लघु वातकफापहम्।
गण्डूषधारणाद् वक्त्रमलदौर्गन्ध्यशोषजित् ॥ (द्र. सं.)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

२. **शुक्त**—कन्द, मूल, फल आदि तैल नमक मिला कर पानी में रख देते हैं। कुछ दिनों में खट्टा अचार तैयार हो जाता है। यही शुक्त है। मूली, अदरख, हरा मिर्चा, नींबू, आम आदि का शुक्त बनाते हैं।

शुक्त तीक्ष्ण, उष्ण, पाचन, भेदन, कफनाशक तथा रक्तपित्तकोपक है[1]।

३. **सीधु**—यह सिरका है। ईख के रस को पका कर रखने पर जो सिरका बनता है वह पक्वरस सीधु तथा अपक्व रस से तैयार शीतरस सीधु कहलाता है।

पक्वरस सीधु बल्य, कफनाशक, वातपित्तकर, दीपन-पाचन तथा भेदन है। शीतरस सीधु इससे अल्पगुण और लेखन है। सिरका शीतस्पर्श होने के कारण दाह, प्रलाप आदि में इसकी पट्टी सिर पर देते हैं[2]।

सेवनीय मद्य

पुराना, जातरस, स्वच्छ, सुगन्धित, उत्तम मद्य का सेवन करे जो रुचिकर, दीपन तथा कफवातशामक हो[3]।

वर्ज्य मद्य

नया, गाढ़ा, विदाही, दुर्गन्धि, विकृतरस, कृमियुक्त, गुरु, अरुचिकर, दूषित पात्र में रखा, पिच्छिल, अतिस्वच्छ मद्य का सेवन निषिद्ध है। यह सब दोषों को प्रकुपित करता है[4]।

---

१. कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च।
यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते॥
शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु।
पाण्डुक्रिमिहरं रूक्षं भेदनं रक्तपित्तकृत्॥ (भा. प्र)

२. इक्षोः पक्वैः रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः।
आमैस्तैरेव यः सीधुः स च शीतरसः स्मृतः॥
सीधुः पक्वरसः श्रेष्ठः- स्वराग्निबलवर्णकृत्।
वातपित्तकरः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत्॥
विबन्धमेदःशोफार्शःशोफोदरकफामयान्।
तस्मादल्पगुणः शीतरसः संलेखनः स्मृतः॥ (भा. प्र.)

३. चिरस्थितं जातरसं दीपनं कफवातजित्। रुच्यं प्रसन्नं सुरभि मद्यं सेव्यं मदावहम्॥
(सु. सू. ४५)

४. सान्द्रं विदाहि दुर्गन्धं विरसं कृमिलं गुरु।
अहृद्यं तरुणं तीक्ष्णमुष्णं दुर्भाजनस्थितम्॥
अल्पौषधं पर्युषितमत्यच्छं पिच्छिलं च यत्।
तद् वर्ज्यं सर्वदा मद्यं किञ्चित् शेषन्तु यद् भवेत्॥ (सु. सू. ४५)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संस्कृत-हिन्दी-पदानुक्रमणी

अ

अंकुरित धान्य २८५
अंगूर २२३
अंशुलीन ३१
अंशूदक ३१२
अकीक ११७
अखरोट २४०
अगस्त्य २०२
अग्निजार ५४
अग्नितापी ९९
अग्न्याशय ३१
अग्न्याशयिक किण्वतत्त्व ९
अङ्ग-प्रत्यङ्ग २५
अङ्गारकर्कटी २७८
अक्षि २५३
अक्षोट २४०
अक्षोड २४०
अजवायन १९९
अजा २६४
अजादुग्ध २९७
अञ्जन ९१
अञ्जीर २२९
अणु १६२
अण्ड ४५
अण्डज ३
अण्डे २६७
अतसी २७३, ३०५
अतसीतैल ३०६
अद्रिनिलीन ३६
अधिवृक्क ग्रन्थि ३६
अनानास २३४
अनार २२४
अनारदाना १९४
अनुपानवर्ग ३०९

अन्तःस्रवा ग्रन्थियाँ ३२
अन्नद्रव्य १४५
अन्न-पान १४५
अपरा ३९
अपूप २८३
अबरख १०१
अबरेशम ६७
अभिषुक २३७
अभ्रक १०५
अमझोरा २८६
अमरुफल २४४
अमरूद २४४
अमृतफल २३५
अम्बर ५४
अम्बु ३०९
अम्लनारंग २४८
अम्लिका २५६
अम्लिकावटक २८१
अरवी २१७
अरहर १७२, २७९
अरिष्ट ३१९
अलसान्द्र १८२
अलसी ३०६
अलाबू २०४
अलुवा २२०
अवटु ग्रन्थि ३२
अवि २६४
अश्व २६४
अष्टगुण २७४
अस्थि १३

आ

आँवला २५१
आस्तिक २४७

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आड़ू २३२
आढकी १७२, २७९
आतञ्चन २९९
आमड़ा २५५
आमरूद २४४
आमलक २५१
आमलासार गन्धक ८०
आमाशय ३१
आमाशयिक किण्वतत्व ९
आम्र २२३
आम्रजालि २८६
आम्रातक २५४
आरकूट १०४
आरुक २३२
आर्ष्य २९२
आर्यभक्त १४३
आल ८४
आलुक २१७
आलुकी २१७
आलू २१६
आलूक २१६
आलूबुखारा २३२
आशफल २४७
आसव ३१९
आहार १४१

इ

इक्षु २८८, ३१९
इक्षुबालिका २८८
इक्षुरस २८९
इक्ष्वाकु २०५
इडली २७८
इण्डरिका २७८
इन्द्रगोप ६९
इबरेशम ६७
इमरती २८३
इमली २५३

उ

उड़द १७१, २७९
उड़ी १६०
उत्तरभारतीय इक्षु २८८
उदक ३०९
उदुम्बर २५९
उद्दाल १५७
उद्भिज्ज ३
उद्भिद् जगत् ३
उपधातु १९
उपावटु ग्रन्थि ३३
उपोदका १९२
उपोदिका १९२
उम्बी २८५
उरुमाणा २३३
उलम्बिका २८५
उष्ट्रीदुग्ध २९७
उष्णोदक ३१३

ए

एरण्ड २७३
एरण्डकर्कटी २४५
एर्वारु २०६
एर्वारुक २४३
एलची २४७

ओ

ओदन २७५, २७६

औ

औद्दालक २९२
औद्भिद १२४, १२९, ३११

क

कंगुनी १६१
ककड़ी २०६, २४३
ककोड़ २२६
ककोड़ा २११
कङ्गु १६१
कचनार २०३
कचरी २०७
कचवती २८२
कचालू २१८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कचौड़ी २८२
कच्छप ४८
कच्छू २१७
कछुवा २६६
कच्छ्री २१७
कच्चट १९३
कटहल २३१
कटुतुम्बी २०५
कठालू २१७
कढ़ी २८२
कदम्ब २६०
कदली २०३, २१०, २१९, २२४
कदीमा २१४
कद्दू २०४
कन्दशाक २१६
कन्दा २१८
कपर्दिका ६१
कपिञ्जल २६५
कपित्थ २५६
कपोत २६६
कबाब २८७
कबूतर ५१, २६६
कमरख २५४
कमलगट्टा २१५, २४१
कमलनाल २१६
कमलमधु २९३
करमर्द २५५
करमी १९५
करीर २६१
करील २६१
करैला २०८
करौंदा २५५
कर्कटक ४८, २६६
कर्कटी २०६, २४३
कर्कन्धु २२६
कर्कशा २११
कर्कोटी २११
कचरी २०७
कर्मरङ्ग २५४
कलमी १३६
कलम्बी १९५
कलाय १७७, १७९, २०२, २७९
कशेरू २१९
कसौंदी २००
कस्तूरी २८
कस्तूरीमृग २८
कहरुबा ११८
काँसा १०६
कांस्य १०६
कांस्यविमल ९६
काकमाची २०२
कागजी नींबू २५१
काच ११७
काचमणि ११६
काजू २३९
काजूत २३९
काजूतक २३९
काञ्चनार २०३
काञ्जिक ३१९
काञ्जिकवटक २८१
काञ्जीवड़ा २८१
काण्डेक्षु २८८
कान्तपाषाण ९८
कान्तलौह ९३
काफी २८७
काबुली अनार २२४
काबुली चना १७५
काबुली मटर १७७
कारवी २७३
कारवेल्ल २०८
कालशाक १९५
काला केकड़ा २६६
काला नमक १२८
काला सुरमा १०४
कालिङ्ग २४४
कालिन्द २४४
काश २८८
काशभेद २८८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

काशीफल २१४
काशीश ९७
कासमर्दपत्र २००
काष्ठालुक २१७
किलाट २९८
किलाटी २९८
कुक्कुट ४९, २६५
कुक्कुटाण्ड ४५
कुक्कुटाण्डकपाल ४६
कुञ्चिका २७२
कुण्डलिनी २८३
कुन्दरु २०९
कुमुद २०३, २४२
कुलत्थ १८१
कुलत्थपञ्चयूष २७६
कुलत्थिका १८१
कुलफा १९६
कुल्माष २८५
कुलिंग २६५
कुसुम २५७
कुसुम्भ १६९; २७३. ३०५
कुसुम्भतैल ३०६
कूर्म २६६
कूष्माण्ड २०४
कूष्माण्डवटी २८१
कृतान्न २७४
कृतान्नवर्ग २७४
कृशरा २७७
कृष्ण कर्कटक २६६
कृष्ण गोमेद ११३
कृष्ण प्रवाल ५८
कृष्ण मोठ १८०
कृष्ण वैक्रान्त ११३
केंचुल ५१
केंचुवा ६९
केकड़ा ४८
केतारी २८८
केराव १७७
केला २४, २०३, २१०
केश ४२
कैंत २५६
कैदार ३११
कोइलार २०३
कोई २४२
कोई २०३
कोदो १५६
कोद्रवविष १५८
कोद्रव १५६
कोरदूष १५६
कोल २२६
कोविदार २०३
कोश ६६
कोशकार ६६
कोशस्थ जन्तु २६७
कोशातकी २०५
कोशाम्र २५७
कोंहड़ौरी २८१
कोहड़ा २१४
कौड़ी ६१
कौप ३१०
कौशेयाश्म १२२
क्वथिता २८२

क्ष

क्षार १२९, २७३
क्षारपत्र १९१
क्षीर २९५
क्षीरमस्तु २९८
क्षीरसन्तानिका २९८
क्षीराष्टक २९६
क्षीरिका २६०, २८३
क्षुद्रधान्य १४८, १५६
क्षुद्रशुक्ति ५८
क्षुद्रा २९२
क्षौद्र २९१

ख

खटमिट्ठी २८०
खटिका ११९
खट्टा २४८
खट्टा अचार २८०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खड़िया ११९
खण्ड २८९
खण्डिक १७९
खरगोश २६६
खरथुवा १९१
खरिया नमक १२९
खरों २०५
खर्जूर २२४
खर्परसत्त्व ९२
खर्बूज २४३
खर्बूज २४३
खल्ली ११९
खाँड़ २८९
खाद्य तैल १५१
खारी नोन १२९
खिचड़ी २७७
खिचा २७७
खिरनी २६०
खीर २८३
खीरा २०६, २४२
खील २८४
खुबानी २३३
खुर ४०
खेकसा २११
खेसाड़ी २७९
खेसारी १७९, २०२
खोया २९७

ग

गगरिया नीबू २४९
गण्डगात्र २४६
गण्डूपद ६९
गन्धक ८०
गन्धमार्जार २५
गन्धमार्जारवीर्य २७
गम्भारी २२९
गरहेडुवा १६०
गर्जर २७२
गवेधु १६०
गवेधुका १६०
गाँठगोभी २१९
गाजर २७२
गाभ २५९
गाय २६४
गारुत्मत १११
गिरिसिन्दुर ८०
गिलोय २००
गुझिया २८३
गुड़ २८९
गुड़पुष्प २४८
गुड़ाम्र २८०
गुडूचीपत्र २००
गुरम्मा २८०
गुर्मी २०७
गुलपिस्ता २४७
गुलाबजामुन २८३
गूमा १९९
गूलर २५९
गेरू ९८
गैरिक ९८
गोक्षार २१३
गोजिह्वापत्र २००
गोदन्ती १२०
गोदुग्ध २९६
गोधूम १५२
गोपघोण्टा २२६
गोपशिम्बी २१६
गोमेद ११३
गोरस २९५
गोरोचन ४२
गोस्तन खर्जूर २२४
गौ २६४
गौडवास्तूक १९१
गौर षष्टिक १४९
गौरीपाषाण ८२
गौरैया २६५
ग्रन्थिगोभी २१९
ग्वालिन २१३

घ

घारिका २७८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

घियातरोई २०५
घुइयां २१७
घुघनी २८५
घुघरी २८५
घृत ३०४
घृतपूर २८२
घेर २८२
घोंघा ६२, २६७
घोंट २२६
घोटकीदुग्ध २९७
घोटिका १९६
घोड़ा २६४
घोण्टा २२६

च

चकवड़ १९९
चकोतरा २४९
चक्रमर्दपत्र १९९
चक्षुष्या १८१
चञ्चु १९५
चटक २६५
चटनी २८०
चणक १७५, २०१
चणकवटी २८१
चणकाम्ल १७६
चतुष्पत्री १९८
चन्द्रकान्त ११५
चना १७५
चबेना २८४
चर्बी १४
चर्म ४१
चवल १८२
चांगेरी १९६
चाँदी ८८
चाय २८७
चार २४१
चारुक १६९
चालता २५२
चावल १४८
चिउड़ा २८४
चिचिण्ड २०७
चिञ्चा २५३
चिपिट २८४
चिरबिल्व २०१
चिरौंजी २४१
चिर्भिट २४३
चिलगोजा २३८
चिल्ली १९१
चीना १६३
चीनाक १६३
चुक्र १९७
चुक्रिका १९७
चुम्बकपत्थर ९८
चुलमोरा १९७
चुल्लिकालवण १२७
चूका १९७
चूड़ा २८४
चूना ११९
चूर्ण ११९
चूर्णकाशीश ९७
चूहा २६६
चेंच १९५
चोखा २७९
चौण्ड्य ३११
चौपतिया १९८
चौलाई १९३

छ

छत्रक २२१
छात्र २९२
छिम्बर १६६
छुहाड़ा २२४
छेना २९८
छेना का पानी २९८
छौंकर २६१
छोला १७५

ज

जन्तुजगत् ३
जबाद २७
जमीरी नींबू २५१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जम्बीर २५१
जम्बू २५९
जर्दालु २३३
जरायुज ३
जरायुज द्रव्य ६
जल ३०९
जलदोष ३१४
जलब्राह्मी १९८
जलवलिवलय २८३
जलशोधन ३१५
जलसेवन विधि ३१५
जलेबी २८३
जलौका ९५
जवाखार १३२
जस्ता ९२
जस्ते का फूल १०२
जहरमोहरा १२२
जामन २९९
जामुन २१९
जिनोर १६४
जीरक २७३
जीवन ३०९
जीवन्ती २१२
जुन्दबेदस्तर २५
जूर्ण १६४
जूर्णाह्व १६४
जोंक ६५
जोंधरी १६४
ज्वार १६४

झ

झड़बेर २२६
झिंगा २०५

ट

टंक १३५
टंकण १३३
टमाटर २१५
टिण्डा २११
टेकुआ २८३

ड

डबल रोटी २७८
डिण्डिश २११
डोडीशाक २१२

त

तक्र ३००
तक्र वटक २८१
तण्डुल १४८
तण्डुलीय १९३
तण्डुलोदक १५२
तरबूज २४४
तरुआ २७९
तरोई २०५
तलितमांस २८७
तलिता २०९
ताँबा ८९
ताड़ २३०
ताडाग ३११
तापीज १०६
ताप्य १०६
ताम्र ८९
ताल ८४, २३०
तालाम्बु ३१२
तार्क्ष्य १११
तित्तिडी २५३
तित्तिरि २६५
तिन्दुक २५९
तिल २७३, ३०५
तिलकल्क २२१
तिलकुट २८४
तिलतैल ३०५
तिलवटी २८१
तिलौरी २८१
तीक्ष्णलौह ९३
तीतर २६५
तुत्थ १०७
तुम्बी २०४
तुम्बुरु २७३
तुर १७३

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

घियातरोई २०५
घुइयां २१७
घुघनी २८५
घुघरी २८५
घृत ३०४
घृतपूर २८२
घेर २८२
घोंघा ६२, २६७
घोंट २२६
घोटकीदुग्ध २९७
घोटिका १९६
घोड़ा २६४
घोण्टा २२६

च

चकवड़ १९९
चकोतरा २४९
चक्रमर्दपत्र १९९
चक्षुष्या १८१
चक्षु १९५
चटक २६५
चटनी २८०
चणक १७५, २०१
चणकवटी २८१
चणकाम्ल १७६
चतुष्पत्री १९८
चन्द्रकान्त ११५
चना १७५
चबेना २८४
चर्बी १४
चर्म ४१
चबल १८२
चांगेरी १९६
चाँदी ८८
चाय २८७
चार २४१
चाक्क १६९
चालता २५२
चावल १४८
चिउड़ा २८४
चिचिण्ड २०७
चिञ्चा २५३
चिपिट २८४
चिरबिल्व २०१
चिरौंजी २४१
चिर्भिट २४३
चिलगोजा २३८
चिल्ली १९१
चीना १६३
चीनाक १६३
चुक्र १९७
चुक्रिका १९७
चुम्बकपत्थर ९८
चुलमोरा १९७
चुल्लिकालवण १२७
चूका १९७
चूड़ा २८४
चूना ११९
चूर्ण ११९
चूर्णकाशीश ९७
चूहा २६६
चेंच १९५
चोखा २७९
चौण्ड्य ३११
चौपतिया १९८
चौलाई १९३

छ

छत्रक २२१
छात्र २९२
छिम्बर १६६
छुहाड़ा २२४
छेना २९८
छेना का पानी २९८
छोंकर २६१
छोला १७१

ज

जन्तुजगत् ३
जबाद २७
जमीरी नींबू २५१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जम्बीर २५१
जम्बू २५९
जर्दालु २३३
जरायुज ३
जरायुज द्रव्य ६
जल ३०९
जलदोष ३१४
जलब्राह्मी १९८
जलवलिबलय २८३
जलशोधन ३१५
जलसेवन विधि ३१५
जलेबी २८३
जलौका ६५
जवाखार १३२
जस्ता ९२
जस्ते का फूल १०२
जहरमोहरा १२२
जामन २९९
जामुन २५९
जिनोर १६४
जीरक २७३
जीवन ३०९
जीवन्ती २१२
जुन्दबेदस्तर २५
जूर्ण १६४
जूर्णाह्व १६४
जोंक ६५
जोंधरी १६४
ज्वार १६४

झ

झड़बेर २२६
झिंगा २०५

ट

टंक १३५
टंकण १३२
टमाटर २१५
टिण्डा २११
टेकुआ २८३

ड

डबल रोटी २७८
डिण्डिश २११
डोडीशाक २१२

त

तक्र ३००
तक्र वटक २८१
तण्डुल १४८
तण्डुलीय १९३
तण्डुलोदक १५२
तरबूज २४४
तरुआ २७९
तरोई २०५
तलितमांस २८७
तलिता २७९
ताँबा ८९
ताड़ २३०
ताडाग ३११
तापीज १०६
ताप्य १०६
ताम्र ८९
ताल ८४, २३०
तालाम्बु ३१२
तार्क्ष्य १११
तित्तिड़ी २५३
तित्तिरि २६५
तिन्दुक २५९
तिल २७३, ३०५
तिलकल्क २२१
तिलकुट २८४
तिलतैल ३०५
तिलवटी २८१
तिलौरी २८१
तीक्ष्णलौह ९३
तीतर २६५
तुत्थ १०७
तुम्बी २०४
तुम्बुरु २७३
तुर १७३

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तुरञ्जबीन २९१
तुरमलीन ११४
तुवरी १३५, १७३, १८८
तूत २२८
तूतिया १०७
तूद २२८
तृणकान्तमणि ११८
तृणधान्य १४८
तृणाम्र १६०
तेतुल २५३
तेंदु २५९
तेनी १६०
तेकनी मक्खी ६७
तैल ३०५
तैलमक्षिका ६७
तोरी १८८
त्रपुस २०६, २४२
त्रिपुट २७९
त्रिपुटक १७७, १७८
त्वक्सुगन्ध २४८

द

दुग्धमत्स्य २८७
दधि २९९
दधित्थ २५६
दधिमण्ड २९९
दधिसर २९९
दधिवटक २८१
दन्त ३९
दलपूरी २८२
दही का पानी २९९
दहीबाड़ा २८१
दाडिम २२४
दाना २८४
दाल २७९, २९२
दालपूरिका २८२
दिव्यनिम्बुक २४९
दुग्ध २९५
दुग्धपाषाण १२१
दुग्धविकार २९८
दुग्धसर २९८
दूधिया खड़ी १२१
देशी मटर १७७
दोष ६
दोसा २७८
द्रवद्रव्य १४५
द्राक्षा २२३, ३१९
द्रोणपुष्पीपत्र १९९

ध

धातु ११, ४५, ७३
धातु-उपधातु ८७
धान १४८
धान का लावा २८४
धाना २८४
धान्य १४८
धान्यक २७३
धान्याम्ल ३१९
धान्यवर्ग १४८

न

नख ४०, ६३
नन्दीमुख १५३
नन्दीमुखी १६६
नमक १२४
नरमूत्र २२
नरसार १२७
नर्त्तक १६५, १६६
नवनीत ३०३
नवान्न यूष २७६
नवीन मद्य ३१७
नाख २३५
नाग ९१
नागपाषाण १२२
नागरङ्ग २४८
नागलीची २४७
नाचनी १६५
नाड़ीशाक १९५
नादेय ३१०
नारङ्ग २४८
नारिकेल २३०, ३०५

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नारिकेल तैल ३०१
नारिकेलोदक २३०, ३११
नारियल २३०
नारीस्तन्य २९७
नालशाक २१५
नासपाती २३५
निकोचक २३८
निमकी २८३
निम्ब २०१
निम्बुक २५१
निर्यासमविकार्ये २९२
निःस्रोत ३२
निष्पाव १८४
नीर ३०९
नील १११
नीलम १११
नीला थोथा १०७
नीलाश्म मरकत ११२
नीवार १५९
नृत्यकुण्डक १६६
नेनुआ २०५
नेवजा २३८
नेत्रोपमफल २३६
नोनी १९६
नौसादर १२७
न्यग्रोधादि पल्लव २०१

प

पंचलवण १२४
पकवान २८२
पकौड़ी २७९
पकवटी २७९
पक्वान्न २८२
पञ्चमुष्टिक यूष २७६
पटुआ १९५
पटोल २०८
पटोलपत्र २००
पटोलिका २०८
पट्टशाक १९५
पत्रगोभी १९८
पत्रनिम्बुक २५१
पत्रशाक १९१
पद्मबीज २४२
पद्मराग ११०
पनस २३१
पनिपाला २५७
पन्ना १११
पपीता २४५
पयस् २९५
परमान्न २८१
परवल २००, २०८
परिग्रह १४३
परुषक २२७
परेवा ५१
परोरा २०८
परोरी २०८
पर्पट २८०
पर्पटपत्र १९९
पलल २८४
पलाक्की १९४
पहाड़ी पेवारा २३५
पांशुलवण १२९
पाचक किण्वतत्त्व ९
पाटलजम्बू २८३
पातगोभी १९८
पानक २८६
पानीयतण्डुलीय १९३
पापड़ २८०
पापनस २४९
पायस २८३
पारद ७७
पारा ७७
पारावत ५१
पार्थिव ७३
पार्वत्य तूद २२८
पालक १९४
पालङ्क्य १९४
पालङ्क्या १९४
पाखल ३११

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पावरोटी २७८
पाषाणगैरिक ९८
पिच्छ ४५
पिट्यूटरीन ३४
पिण्डक २८३
पिण्याक २२१
पित्त ६, ४५
पित्तपापड़ा १९९
पित्तल १०५
पिप्पली २७३
पिस्ता २३७
पिस्ते का फूल २३७
पीतकूष्माण्ड २१४
पीतल १०५
पीयूष २९८
पीलु २६१
पुआ २८३
पुखराज ११०
पुदीना २०१
पुनर्नवा २०१
पुराण मद्य ३१७
पुष्पगोभी २०३
पुष्करबीज २१५
पुष्पराग ११०
पुष्पवटीं २८१
पुष्पशाक २०२
पुष्पाञ्जन १०२
पूतिघास २०
पूतिहा २०१
पूप २८३
पूपलिका २७८
पूरिका २८२
पूरी २८२
पुरीष २३
पृथुक २८४
पेंडा २८३
पेया २७५
पेयारा २४४
पेलुक २४४
पेरोजक ११५
पेरोजा ११५
पैडफिया २८३
पोई १९२
पोतकी १९२
पोलिका २७८
पोषणक ग्रन्थि ३४
पौण्डक २८८
पौंडा २८८
पौत्तिक २९१
पौरुषग्रन्थि ३९
प्रवाल ५८
प्राचीनालमक २५७
प्रास्रवण ३११
प्रियङ्गु १६१
प्रियाल २४१, २७३
प्लीहा ३१

फ

फराश बीन १८३
फलपूरक २५०
फलवर्ग २२२
फलशाक २०४
फलौदन २७०
फल्गु २२९
फाणित २८९
फादजहर हैवानी ४३
फालसा २२७
फिटकरी १३५
फुल्लस्फुत्तिका १३७
फुलौड़ी १८१
फूलगोभी २०४
फेनाश्म ८२

ब

बकरी २६४
बकुल २५९
बगेरा २६५
बजका २७९
बटाटा २१६
बटेर २६५

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बड़हल २३२
बड़ी २८१
बड़े २८१
बण्डा २१८
बथुवा १९१
बदर २२५
बदरसफ़् २२६
बदराश्म १२३
बनस्पति ३०८
बन्दगोभी १९८
बर्फी २८३
बर्रे १६९, ३०६
बहुनेत्र २४४
बहुफली १९५
बाउरा १४९
बाजरा १६७
बाटी २७८
बाटी-दाल २७८
बादाम २३६
बाफली १९५
बालग्रैवेयक ३४
बालुका १२१
बालुकाकाशीश ९७
बालुकामत्स्य ५६
बालू १२१
बिम्बी २०९
बिलिम्बी २५४
बिल्लोर ११६
बिल्लौर ११४
बिल्व २२९
बिस २१६, २१९
बिसकुट २७८
बिही २३४
बीजकोश ३८
बीजपूर २५०
बीरबहूटी ६९
बूट १७५
बृहत् लोणिका १९६
बृहत् श्यामाक १५९
बेंग ७०
बेर २२५
बेरपत्थर १२३
बेल २२९
बैंगन २०९
बैल २६४
बोगहा १४९
बोड़ा १८२, २१३

भ

भक्त २७६
भटवार १८७
भटवाँसु १८७
भण्टाक २०९
भद्रेक्षु २८८
भरिथ २७९
भर्जिता २७९
भर्ता २०९
भल्लातक २२९
भव्य २५२
भसीड २१६
भारतीय मधिका २९२
भिण्डिका २१२
भिण्डी २१२
भिलावा २२९
भिस्साण्ड २१९
भुँजिया २७९
भुट्टा १६८
भूना २८४
भूनाग ६९
भूमिगिरतैल ३०६
भृष्टान्न २८४
भेड़ २६४
भैंसा २६४
भौम ७३
भ्रामर २९१

म

मंगण्यक १७४
मंडल १६५
मकई १६८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मकुष्ठ १८०
मकुष्ठक १८०
मकोय २०१
मक्का १६८
मक्खन ३०३
मक्षिका ४७
मखाना २४२
मखाना २४२
मछली २६७
मज्जा १७
मटर १७७, २०१
मठरी २८३
मडुआ १६५
मणिमन्थ १२६
मण्ठा २०९
मण्ठक २८३
मण्ड २७४
मण्डक २७७
मण्डूक ७०, २६६
मण्डूर ९५
मत्स्य ५३, २६७
मत्स्यण्डी २८९
मदनक २९४
मद्य ३१६
मद्यपान विधि ३१८
मद्ययोनि ३१९
मद्याकर ३१९
मधु २९१, ३१९
मधुकर्कटी २४९
मधुक्रोड २८३
मधुमस्तक २८३
मधुशर्करा २९१
मधुशीर्षक २८३
मधूक २४८, ३०५
मधूकतैल ३०६
मधूच्छिष्ट २९४
मधूलिका १६५
मधूली १५६
मध्वेरण्ड २४५
मध्वालुक २१७
मनःशिला ८६
मन्थ २८६
मयन २९४
मयूर ५२, २६५
मयूरपिच्छ ४५, ५२
मरकत १११
मरसा १९३
मरिच २७३
मर्कट ११६
मल २१, ४५
मलाई २९८
मल्ल ८२
मसालदोसा २७८
मसुरी १७४
मसूर १७३
मसूरादियूष २७६
मस्तिष्क ३९
मस्तु २९९
महाकाय १६८
महाकोशातकी २०५
महागोधूम १५३
महिष २६४
महिषीदुग्ध २९६
महुआ २४८
मांस १२
मांसरस २८७
मांस वर्ग २६२
मांसौदन २७७
माक्षिक १०६, २९१
मादा १६३
माणिक्य ११०
मातुलुंग २५०
मानकन्द २१८
मानिक ११०
मामफल २४६
मारिष १९२
मालपुआ २८३
मालवा १९२
मावा २९८
माष १७१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

माषवटी २८१
मिष्ट नारंग २४८
मिष्टनिम्बुक २४९
मिष्टान्न २८३
मिश्री २८९
मिश्रीकन्द २१७
मीठा नींबू २५०
मुंगौरी २८१
मुक्ता ५६
मुक्ताशुक्ति ५८
मुण्ड ९३
मुद्ग १६९
मुद्गवटक २८१
मुद्गवटी २८१
मुनगा २०९
मुरदासंग १०३
मुर्गा ४९, २६५
मुलतानी मिट्टी १३७
मुश्कबिल्ली २७
मुष्क २५
मूँग १६९, २७९
मूँगफली ३०६
मूँगा ५८
मूलक २७०
मूलकपत्र १९९
मूली २७१
मूषिक २६६
मूत्र २१
मूत्रनवक २२
मूत्राष्टक २२
मृणाल २१६
मृद्दारश्रृङ्ग १०३
मृद्वीका २२३
मेघनाद १९३
मेढक ७०, २६६
मेद १४
मैंगनीज ११४
मैनसिल ८६
मोठ १८०
मोती ५६
मोदक २८३
मोम २९४
मोर २६५
मोरट २९८
मोसम्मी २४८
मौलसिरी २५९

य

यकृत् १०
यव १५४
यवक्षार १३२
यवशाक १९१
यवागू २७४
यवानी २७३
यवानीपत्र १९९
यवासशर्करा २९१
यशद ९२
यावक २७७
यावनाल १६४
यावशूक १३२
यूष २७५

र

रक्त ११
रक्तमारिष १९३
रक्तवृन्ताक २१४
रक्तशालि १४९
रक्तालुक २१७
रक्ताश्म ११७
रजत ८८
रत्न १०९
रत्न-उपरत्न १०९
रतालु २१७
रस-उपरस ७७
रसगुडक २८३
रसगुल्ला २८३
रसम २८०
रसाला २८६
रांगा ९०
राग २८८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

राग़िका १६५
रागी १६५
राजबद्र २२६
राजमा २७९
राजमाष १८२, २१३
राजशिम्बी १८७
राजावर्त्त ११६
राज्यक्ता २८०
राब २८९
रामकुर्थी १८७
रामतरोई २१२
रामदाना १९४
रामदाने की लाई २८४
रामफल २४६
रामबुटान २४७
रायता २८०
रीति १०५
रीतिहेतु ९२
रुचक १२८
रेगमाही ५३
रेत १२१
रोटिका २७७
रोटी २७७
रोपा १४९
रोप्य १४९
रोम ४२
रौप्य ८८
रौप्यमाक्षिक
रौप्यविमल ९६

ल

लकुच २३२
लक्ष्मणफल २४६
लड्डू २८३
लतरी १७९, २७९
लप्सिका २८४
लवण १२४, २७३
लवणकी २८२
लवण-क्षार १२४
लवणी १३३
लवली २५८
लवा २६५
लसोढ़ा २३०
लस्सी २८६
लहसुनिया ११२
लाक्षा ६५
लाख ६५
लाजमण्ड २७५
लाजवर्द ११६
लाजा २८४
लाला १०
लाव २६५
लावणकीन २८३
लाह ६५
लिट्टी २७८
लीची २४७
लेह २८०
लोणिका १९६
लोणी १९६
लोनी १३३
लोबिया १८२, १८६, २१२
लोह ७३
लोहमल ९५
लौआ २०८
लौकी २०४
लौह ७३, ९३

व

वंग ९०
वज्र १०९
वज्राज्ञ १६६
वटक २८१
वटी २८१
वनस्पति ३०५
वन्यकुलत्थ १८९
वरक १६३
वरटा १६९
वरट्टिका १६९
वर्त्तक २६५
वर्तीक २६५
वरदाडिम २२४

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वरसीम १८४
वराटिका ६१
वराह २६४
वस्त्र १८४
वसा १४
व्यञ्जन २७९
व्याघ्रनख ६४
वाव्यमण्ड २७५
वाव्यौदन २०७
वातकुम्भ २४५
वाताद २३६
वाताम २३६
वाप्य १४९, ३११
वारि ३०९
वारुणी ३१९
वार्त्ताकु २०९
वास्तूक १९१
वाष्पक १९३
विकृन्तक ११३
विड १२४, १२७
विडालाच ११२
विमल ९६
विलायती बैंगन २१५
विलेपी २७५
विषकूट २७८
वृत्ताढ्कर २३९
वृन्ताक २०९
वेणुकरीर २१६
वेणुयव १६९
वैकिर ३११
वैक्रान्त ११३
वैक्सीन ४४
वैदूर्य ११२
व्रीहि ३१९
व्रीहिधान्य १४८

शा

शंख ६०, २६७
शंखालुक २१७
शक्कर २८९
शतावरी २१९
शमी २६१
शमीधान्य १४८
शरबत २८६
शरमेह २८८
शरीफा २४६
शर्करा १२१, २८९
शर्करोदक २८६
शश २६६
शष्कुली २८२
शहतूत २२८
शाकवर्ग १९०
शाकश्रेष्ठा २१२
शाकौदन २०७
शालि ३१९
शालिधान्य १४८
शालूक २१९
शाल्मली २०२
शिकञ्जी २८६
शिखरिणी
शिग्रु २०२
शिम्बिर १६६
शिम्बी १८५, २०९
शिम्बीधान्य १४८, १६९,
शिलाजतु ९९
शिलाजीत ९९
शिवाम्बु २२
शीत जल ३१३
शुक्त ३२०
शुक्ति ५७, ५८, २६७
शुक्र १८
शुण्ठी २७३
शुष्क शाक २२१
शूकधान्य १४८
शूल्य २८७
शृङ्ग ४०
शृङ्गातक २१२, २४१
शैवलिका २९२
शोधित वृषपित्त ६
शोभाञ्जन २०९
शोरा १३६

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्यामाक १५८
श्लेष्मातक २३०
श्वेत तूद २२८
श्वेताञ्जन १२०

ष

षष्टिक १४८
षाडव २८०

स

संखालू २१७
संखिया ८२
संगजराहत १२१
संगे यशब ११७
संयाव २८३
संस्वेदज शाक २२१
सकरकन्द २२०
सक्तु २८५
सक्तुगर्भा २७८
सज्जीखार १३३
सज्जी बूटी १३३
सतपुतिया २०६
सतीन १७७, १७८, २०२
सत्तू २८५
सन्तरा २४८
सन्तानिका २९८
सन्तुलित आहार १४३
सप्तपुत्री २०६
सफेद केकड़ा २६६
सफेद सुरमा १२०
सफेदा १०४
समुद्रफेन ६२
समुद्री नमक १२६
सरसों २००
सर्प ५१
सर्पनिर्मोक ५१
सर्वग्रह १४३
सर्षप २७३, ३०५
सर्षपतैल ३०६
सर्षपनाल २१५
सर्षपपत्र २००
सर्षपमधु २९३
सलगम २२०
सलजम २२०
सलाद २७०
सहजन २०९
सहिजन २०३
सौंवा १५८
साजक १६७
सामुद्र १२४, १२६, ३११
सारस ३११
सिंगरफ ७९
सिंघाड़ा २४१, २८३
सिकता १२१
सिक्थक २९४
सिता २८९
सितालुक २२०
सितुहा ५८
सितुही ५८
सितोपला २८९
सिद्धमांस २८७
सिन्दूर १०३
सिम्बितिका २३४
सिम्बितिकाफल २२६
सीताफल २४६
सीधु ३२०
सीप ५७
सीरम ४४
सीस ९१
सीसा ९१
सुथनी २१७
सुधा ११९
सुधा-सिकता ११९
सुनसुनिया १९८
सुनिषण्णकालुक २१७
सुनिषण्णक १९८
सुरा ३१९
सुवर्चिका १३३
सुवर्ण ८७
सुवर्णमाक्षिक १०६
सुषुम्ना ३९
सुसनी आलू २१७

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सुहागा १३३
सूअर २६४
सूप २७९
सूरमा १०४
सूरण २१६
सूर्यकान्त ११४
सूर्यतापी ९९
सेंदुर १०३
सेंधा नमक १२६
सेम १८४, १८६, २०९
सेमल २०२
सेव २३४
सेवई २८४
सेविका २८४
सेहुण्डपत्र १९९
सैन्धव १२४, १२६
सौंचर १२८
सोरवा २८७
सोना ८७
सोनामाखी १०६
सोमालिका २८३
सोहाल २८३
सौभाग्य १३३
सौराष्ट्री १३५
सौवर्चल १२४, १२८
सौवीर २२६
सौवीराञ्जन १०४
स्तन्य १९, २९५
स्तन्यग्रन्थि ३९
स्नायु ४१
स्नेहवर्ग २९५
स्फटिक ११४, ११६
स्फटिकारिका १३५
स्वर्जिकाक्षार १३३
स्वर्ण ८७
स्वर्णगैरिक ९८
स्वर्णमाक्षिक १०६
स्वर्णविमल ९६
स्वेदज ३

ह

हंसोदक ३१२
हज्रल्यहूद १२३
हथकन २१८
हनुमानफल २४६
हरकुच १९८
हरताल ८४
हरफारेवड़ी २५८
हरिण २६४
हरितवर्ग २७०
हरिताल ८४
हरिताश्म ११७
हरिमन्थ १७५
हरेणु १७७
हलवा २८४
हस्तिकर्ण २१८
हस्तिनीदुग्ध २९७
हस्त्यालुक २१७
हिंगु २७३
हिंगुल ७९
हिमाह्वा २८३
हिलमोचिका १९८
हिलमोची १९८
हीरक १०९
हीरा १०९
हीराकसीस ९७
हैयंगवीन ३०२
होरहा २८५
होलक २८५
हौलदिल ११७

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

INDEX OF ENGLISH AND LATIN NAMES

A

A. bilimbi Linn. 254
A. caudatus Linn. 194
Achatina fulica Fer. 63
A. cherimolia Mill 246
Acidum arseniosum 82
Aconite bean 180
Adlay 160
Adrenal gland 36
Adrenaline 36
Aegle marmelos Corr. 229
Agate 117
Agaricus campestris Linn. 221
Alexandrite 112
Alkali 129
Almond 236
Alocasia indica (Roxb.) Schott, 218
Alum 135
Alum shales 135
Amaranthus blitum Var. oleracea Duthie 193
Amaranthus spinosus Linn. 193
Ambergris 54
Ammonium chloride 127
Amorphophallus campanulatus Blume 216
A. muricata Linn. 246
Anacardium occldentale Linn 239
Ananas comosus (Linn.) Merr. 244
Animal kingdom 3
Annona squamosa Linn. 246
Anthocephelus indicus Mig 260
Antuitrin 36
A. paniculatus Linn. 193
Apies florea Fabr 292
Apies indica Fabr.2 92
Apis dorsata Fabr. 299
Apple 234
Apricot 233
Aquamarine 112
Argentum 88
A. reticulata Linn. 246
Arsenic 82
Arsenic rubrum 86
Artocarpus integra (Thunb) Merrill 231
Artocarpus lakoocha Roxb. 232
Asbestos 122
Asparagus or yardlong bean 182
Asparagus racemosus Willd. 219
Aurum 87
Averrhoa carambola Linn. 254

B

Banana 224
Barley 154
Barnyard millet 159
Basella rubra Linn. 192
Beaver 25
Bell metal 106
Bengal Gram 175
Bezoar 43
Bile 6
Biotite 101
Black coral 58
Black gram 171
Blood 11
Blood transfusion 11
Bnchanania lanzan Spreng 241
Bokhara galls 237
Bone 15
Borax 133

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Borassus flabellifer Linn. 230
Broadcast 149
Brain 39
Bran oil 151
Brass 105
Brassica oleracea var. botrytis Linn. 204
Brassica oleracia var. capitata Linn. 198
Brassica oleracea var. gongyolds Linn. 219
Barassica rapa Linn. 220
Brine 124

C

Cajanus cajan (Linn.) Millsp. 172
Calcite 120
Cantharidin 67
Cantharis vesicatoria 67
Capparis decidua Edgew 261
Carica papaya Linn. 245
Carissa carandus Linn. 255
Carissa spinarum Linn. 256
Carrot 272
Carthamus tinctorius Linn. 169
Cashew 239
Cashew apple 239
Castor fiber 25
Castorium 25
Cat's eye 112
C. auranticum Linn. 248
C. capsularis Linn. 195
Chalcopyrite 106
Chalk 119
Chenopodium album Linn. 191
Chenopodium murale Linn. 191
Chilgoza pine 238
Chinese Gooseberry 254
Chloromelenite 117
Chrysoberyl 112
Cicca acida (Linn.) Merr. 258
Cicer arietinum Linn. 175
Cinnabar 79
Cinnamon stone 113
Citron 250
Citrullus vulgaris Schrad 224
Citrullus vulgaris Schrad. var. fistulosus (Stocks) Duthie and Fuller. 211
Citrus aurantifolia (christm) Swingle 251
Citrus limettoides Tanaka 250
Citrus limon (Linn.) Burm. f. 251
Citrus maxima (Burm); Merr. 249
Citrus medica Linn. 250
Citrus paradisi Macf. 249
Citrus reticulata Blanco 248
Civet 27
C. kabulium 175
C, moschata Duchesne ex Poir 214
Coccinia indica W. & A. 209
Cock 49
Cocos nucifera Linn. 230
Cod-liver oil 53
Coix Lacryma-jobi Lin 160
C. olitorius Linn. 195
Colocasia esculenta (Linn.) Schott 217
Colostrum 298
Common guava 244
Common millet 163
Copper 89
Copper Pyrite 106
Copper Sulphate 107
Coral 58
Corallium rubrum 58
Corchorus acutangulus Linn. 195
Cordia dichotoma Forst. f. 230

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Country Sorrel 197
Cow pea 181
Crassostrea madrașensis 58
C. sinensis Linn. 248
Cucumis melo Linn. 243
Cucumis melo var. Utilissimus Duthie & Fuller. 206
Cucumis momordica Roxb. 243
Cucumis sativus Linn. 206, 242
Cucumis species 207
Cucumis utilissimus Linn. 243
Cucurbita maxima Duchesne 214
Cultivated Cowpea 182
Cupri Sulphas 107
Cuprum 89
Custard apple 246
Cuttlefish 62
Cypraea moneta Linn. 61
Cyamopsis tetragonaloba (Linn) Taub. 213
Cydonia oblonga Mill 234
Dammar bees 292
Daucas carota var. sativa Linn 272

D

Diamond 109
Digestive enzymes 9
Dialenia indica Linn. 252
Dioscorea esculenta Burkill. 217
Dolichos lablab Linn. 184
D. pentagyna Roxb. 253
Double bean 186
Dove 51
Drinks 145
Diospyros Peregrina (Gaertn.) Guerke 259

E

Earth worm 69
Echinochloa frumentacea Linn. 158
E. colonum Link 159
E. crus-galli Beauv. 159
E. flagellifra Nees 166
E. indica Gaertn. 166
Elephant apple 256
Eleusine coracana Gaertn. 165
Emblica officinalis Gaertn. 251
Emerald 111
Endocrine glands 32
Enhydra fluctuans Lour. 198
Eruca sativa Mill 188
Euphoria longana Linn. 247

F

Faeces 23
Fat 14
Feronia limonia (Linn.) Swingle 256
Ferrum 93
Ficus carica Linn. 229
Ficus glomerata Roxb. 259
Field Pea 177
Finger millet 165
Flacourtia jangomas Raeusch 257
Flourite 114
Flour spar 114
Food 145
Foxtail millet 161
French bean 183
Frog 70
Fuller's earth 137

G

Galena 91, 105
Garden Pea 177
Gluttinous 150
Glycine max Merrili 187
Gmelina arborea Linn. 229
Gold 87
Great millet 164

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Gram 175
Grass pea 179
Green gram 169
Grewia asiatica Linn 227
Ground nut 306
Guar gum 213
Gypsum 120

H

Halibut-liver oil 53
Hibiscus esculenta Linn. 212
Hirudin 65
Hog-plum 255
Hordeum vulgare Linn. 154
Hydragyrum 77
Hygroryza aristata Nees 160

I

Indian butter bean 184
Indian hive bee 292
Indian spinach 192
Inferior cereals 156
Insulin 31
Ipomoea aquatica forsk. 195
Ipomoea batatas (Linn.) Lam 220
Iron 93
Iron Pyrite 96
Iron Sulphate 97
Isthmus 34
Italian millet 161

J

Job's tears 160
Jade 117
Jadeite 117
Juglans regia Linn. 240
Jujube 225

K

Kodo millet 156

L

Lablab bean 184
Lac 65
Laccifer lacca Kerr 65
Lactus 19
Lady's finger 212
Lagenaria siceraria (Mod.) Standl. 204
Lamb's quarters 191
Lapis Lazuie 116
Lathyrus sativus Linn. 178
Lead 91
Lead Carbonate 104
Lead monoxide 104
Lead Sulphide 105
Leea macrophylla Roxb. 218
Leech 65
Lens culinaris Medic 174
Lepidolite 101
Leptadenia reticulata W. & A.211
Lima bean 186
Lime 119, 251
Litchi chinensis (Gaertn.) 247
Litharge 104
Little bee 292
Liver 30
Loadstone 98
Luffa acutangula (Linn.) Roxb. 205
Luffa cylindrica (Linn.) M. J. Roem. 205
Lycoprslcon esculentum Mill 215

M

Madhuca indica J. F. Gmel. 248
Magnetite 98
Magnetic Iron-Ore 98
Magnifera indica Linn. 223
Maize 168
Malus pumila Mill. 234
Mammary glands 39
Manilkara hexandra Roxb. 260
Marsilea minuta Linn. 198

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Meat 12
Melipona 292
Mercury 77
Metal 73
Mica 101
Milk 19
Mimusops elengi Linn. 259
Momordica dioica Roxb. ex Willd. 211
Momordica charantia Linn. 208
Moon stone 115
Morus alba Linn. 228
Morus laevigata Wall. ex Brandis 228
Morus nigra Linn. 228
Morus serrata Roxb. 228
Moschus moschiferus 28
Moth bean 180
Mulberry 228
Musa paradisiaca Linn. 224
Musk 28
Muskovite 101
Musk melon 243
Mutella occidentalis 69
Mylabris chicorii 67

N

Nelemubo nucifera Gaertn. 215, 242
Nephelium lappaceum Linn. 247
Nephrite 117
Noble Cane 288
Non-gluttinous 150
North Indian Cane 288
Nymphaea nouchali Burm. f. 242

O

Ochre 98
Oestrin 38
Opal 117
Ophite 122
Onyx 113
Orange 248
Ore 73
Orpiment 84
Oryza sativa Linn. 148
Oxalis corniculata Linn. 196
Osbeck 248
Ovary 38
Oyster 57

P

Paddy 148
Pancreas 31
Pancreatin 9
Panicum miliaceum Linn. 163
Panicum sumatrense Roth ex Roem et Schult (little millet) 162
Paspalum scrobiculatum Linn. 156
Paragonite 101
Parathyroid glands 33
P. cattleyanum Sabine 245
P. dactylifera Linn. 224
Pea 177
Peach 232
Pea Oil 178
Pear 235
Pearl 56
Pearl millet 167
Pearl-Oyster 58
Pennisetum typhoides Burm. f. Stap f. & Habbard 167
Pepsin 9
Phaseolus lunatus Linn. 185
Phaseolus mungo Linn. 171
Phaseolus Vulgaris Linn. 183
Phlogopite 101
Phoenix sylvestris Roxb. 224
Pigeon 51
Pigeon pea 172
Pincta davulgaris 58

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Pinus gerardiana Wall. 238
Pistachio 237
Pistacia vera Linn. 237
Pisum Sativum Linn. 177
Pituitarin 34
Pituitary gland 34
Placenta 39
Plantain 224
Plumbi Corbonas 104
Plumbi oxidum rubrum 103, 104
Plumbum 91
P. oleracea Linn. 196
Portulaca quadrifida Linn. 196
Potato 216
Progestin 38
Prosopis cineraria Druce 261
Prostate-glands 39
Prunus amygdalus Batsch 236
Prunus armeniaca Linn. 233
Prunus domestica Linn. 232
Prunus persica Batsch. 232
P. scrobiculatum var. commersonii Stap F. 157
Psidium guajava Linn. 244
Pummello 249
Puneala plum. 257
Purified ox-bile 6
Pyrus communis Linn. 235
P. pyrifolia (Burm. f.) 235

Q

Quartz 114
Quince 235

R

Radish 271
Raphanus sativus Linn. 271
Real gar 86
Red bone-marrow 17
Red gram 172
Red lead 103
Red Oxide of Lead 103
Red oxide of mercury 80
Rice 148
Rock bee 292
Rocket Salad 188
Rock Crystal 116
Rock salt 124, 126
Ruby 110
Rumex Hastatus D. Don. 187
Rumex vesicarius Linn. 197
Saccharum officinarum Linn. 288
Sacred chank 60
Snail 62
Saline efflorescence 124
Saliva 10
Salsola baryosma Dandy 133
Salt 124
Salt petre 136
Salvadora persica Linn. 261
Sand 121
Sapphire 111
Sardonyx 113
S. arundinaceum Retz. 288
Schleichera oleosa (Lour) Oken. 257
Scirpus grossus Linn. f. 219
Sea-water 124
Seilla serrata 48
Semen 18
Serpentine 122
Setaria italica (Linn.) Beauv. 161
S. glauca Beauv. 162
Silk pod 67
Silver 88
S. kali Linn. 133
Snakegourd 208
S. officinarum Linn. 288
Soft Stone 121
Solanum melongena Linn. 209
Solanum tuberosum Linn. 216
Somecarpus anacardium Linn. 229
Sorghum vulgare pers. 164

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

4142

Sour orange 248
Soya bean 187
Spinach 194
Spinacia oleracia Linn. 194
Splean 31
Spondias pinnata (Linn. f.) Kurz. 254
S. Sinense Roxb. 288
S. spontaneum Linn. 288
Stannum 90
Stomach 31
Subsp. unguiculata 182
Sugar Pea 177
Sulphur 10
Sun stone 114
Suprarenal 36
Spinal Cord 39
Swamp-cabbage 195
Sweet Lime 250
Sweet orange 248
Syzygiumcumlni(Linn.)Skeels.259

T

Tamarind 253
Tamarindus indica Linn. 253
Taramira 188
Taro 218
Taro flour 218
Teeth 39
Telini fly 67
Testicle 25
Tin 90
Thyroid gland 32
Tomato 215
Topaz 110
Transplanted 149
Trapa natans Linn. var. bispinosa (Roxb.) Makino 241
Trichosanthus anguina Linn. 207
Trichosanthes dioica Roxb 208
Trigona species 292
Triticum aestivum Linn. 152
Turbinella pyrum 60
Turnip 220
Turquoise 115

U

Urine 21
Umber 118

V

Vigna unguiculata (Linn.) Walp. 213
Vegetable kingdom 3
Vigna aconitifolia (Jacq.) Marechal 180
Vigna mungo (Linn.) Hepper. 171
Vigna radiata (Linn) Wilczek 169
Vigna unguiculata (Linn.) Walp. 182
Vitis vinifera Linn. 223

W

Walnut 240
Water chestnut 241
Water melon 244
Wax 294
Wheat 152
White arsenic 82
White lead 104
Wild Cowpea 182
Wild Mango 255
Wild rice 160
Wood apple 256

Y

Yam 217
Yellow arsenic 84

Z

Zee mays Linn. 168
Zink 92
Zink Oxide 102
Zincum 92
Z. Jujuba Mill 226
Z. mauritiana 226
Z. nummularia (Burm. f.) W. & A. 226
Z. xylopyra Willd. 226
Ziziphus mauritiana Lam. 225

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

शाखा

चौखम्भा भारती अकादमी

खजांची रोड

पटना-८०००४

वितरक :

चौखम्भा ओरियन्टालिया

बंग्लो रोड, ९-यू० बी०

जवाहर नगर

(निकट किरोड़ीमल कालेज)

दिल्ली-११०००७

फोन : २९११६१७, २३८७९०

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection